‘‘इक्कीसवीं सदी का हिंदी संस्मरणात्मक साहित्यः एक अध्ययन’’

"IKKEESVI SADI KA HINDI SANSMARANATMAK SAHITYA : EK ADHYAYAN"

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की

पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

गजानन्द मीणा

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. विवेक शंकर

सह- आचार्य

हिन्दी-विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2021

Certificate

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled **"इक्कीसवीं सदी का हिंदी संस्मरणात्मक साहित्य: एक अध्ययन"** in an original piece of work carried out by Dr. Vivek Shankar, under my supervision for the degree of DOCTOR OF PHILOSOPHY. He has completed the following requirements as per Ph. D. regulations of the University.

(i) Course work as per the University rules.
(ii) Residential requirements of the University (200 Days).
(iii) Regularly submitted annual progress report.
(iv) Presented his work in the departmental committee.
(v) Published/accepted minimum of one research paper in a referred research journal.

I recommend the submission of the thesis.

Place : Kota
Date : 10-07-2021

(Dr. Vivek Shankar)
Research Supervisor
associate professor
Department of Hindi
Government arts collage, Kota

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that PhD thesis entitled **"इक्कीसवीं सदी का हिंदी संस्मरणात्मक साहित्य: एक अध्ययन"** by **Gajanand Meena** has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared to already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentences, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and dully referenced.

b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, result or words of others have been presented as author` own work.

c. There is no fabrication of data or results which have been complied and analyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment or processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented in the research record.

e. The thesis has been checked by using ANTI-PLAGIARISM URKUND software and found within limits as per HEC plagiarism policy and instruction issued from time to time.

(**Gajanand Meena**)

Research Scholar

Place : Kota

Date : 10-07-2021

(Dr. Vivek Shankar)

Research Supervisor

Place : Kota

Date : 10-07-2021

शोध सार

मैंने काशीनाथ सिंह जी का संस्मरण "घर का जोगी जोगड़ा" पढ़ा, जिसमें मैंने नामवर जी के बारे में बहुत कुछ समझा और मेरे अपनों की जिंदगी के करीब गया। मुझे पता चला कि यह विषय एकदम अछूता है। उसी दिन मैंने निर्णय लिया कि मैं संस्मरण पर ही शोध कार्य करूँगा। इस बात को मैंने अपने गुरुजी के सामने रखा। वे बहुत खुश हुये कहा, तुमने बहुत सुन्दर विषय चुना है। मन लगाकर कार्य करना, इसके साथ-साथ ईमानदारी भी जरूरी है। मैंने संस्मरण के बारे में पढ़ना शुरू किया। पता चला संस्मरण हिंदी साहित्य जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। संस्मरण और रेखाचित्र एक-दूसरे से बहुत कम अंतर रखने वाली विधा है। आधुनिक गद्य हिंदी साहित्य में इसका विकास दिखाई देता है। संस्मरण व्यक्ति विशेष के जीवन की कोई घटना जो उसके दिमाग में घर कर जाती है और वह उसे कभी भूल नहीं पाता है। वही अपने शब्दों में उसे संस्मरण विधा के रूप में लिख डालता है। संस्मरण की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें निहित स्मृति वास्तविक हृदय स्पर्शी और सर्वजनसंवेद्य हो। संस्मरण के लिए स्मरणीय व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना के साथ अंतरंगता अनिवार्य है। संबंध की अंतरंगता के कारण अनायास ही संबंधित व्यक्ति, वस्तु या घटना के विषय में हम ऐसी दुर्लभ जानकारी देने की स्थिति में होते हैं जो दूसरे के लिए सर्वथा नवीन सिद्ध हो सकती है। हिंदी संस्मरण साहित्य विकास आधुनिक युग की उपलब्धि है। यह मानना इस दृष्टि से सही है कि साहित्य एक स्वतंत्र विधा के रूप में संस्मरण की प्रतिष्ठा इस युग में हुई है। संस्मरण का एक अनिवार्य तत्त्व अनुभूति है जिसमें स्मृति का योग महत्त्वपूर्ण है। स्मृति पर आधारित वर्णन का चित्रण संस्मरण है। संस्मरण 'सरस्वती हंस' के अतिरिक्त उस युग की अन्य पत्र पत्रिकाओं में भी समय-समय पर साहित्य तथा अन्य क्षेत्रों के महापुरुषों के संस्मरण प्रकाशित हुए। समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में छपे संस्मरणों के अनेक संग्रह उपलब्ध हैं। जिनमें संस्मरण लेखन की विविध शैलियों का दर्शन होता है। इसलिए संस्मरण साहित्य का भंडार बहुत अधिक विस्तृत और समृद्ध हो गया है और संस्मरण लेखन की अनेक शैलियाँ विकसित हो गयी हैं।

संस्मरण पर मेरा शोध का विषय है- "इक्कीसवीं सदी का हिंदी संस्मरणात्मक साहित्य: एक अध्ययन"। इसमें सन् 2000 ई. से सन् 2017 ई. तक के संस्मरणों को

लिया है, जितने भी संस्मरण मुझे प्राप्त हो सके उनको मैंने अपने विषय में शामिल किया है।

मैंने दो वर्ष के अंतर्गत शोध कार्य पूर्ण हेतु अपने कार्य को सुनियोजित ढंग से विभाजित किया है।

प्रथम अध्याय में संस्मरण विधा को परिभाषित कर उसके रूप-स्वरूप, प्रकृति, संस्मरण के तत्त्व एवं विशेषता पर प्रकाश डाला गया है। संस्मरण का अन्य विधाओं के साथ क्या संबंध है, विवेचन किया है। किस प्रकार संस्मरण को घुटनों के बल चल कर खड़ा होना पड़ा, संस्मरण को साहित्य जगत में कैसे अपना स्थान बनाना पड़ा का वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार हैं 1. संस्मरण और कहानी, 2. संस्मरण एवं उपन्यास, 3. संस्मरण एवं आत्मकथा, 4. संस्मरण एवं जीवनी, 5. संस्मरण एवं रेखाचित्र, 6. संस्मरण एवं रिपोर्ताज।

दूसरे अध्याय के अन्तर्गत संस्मरण साहित्य का उद्भव एवं विकास द्विवेदी युग, छायावाद युग, छायावादोत्तर युग में संस्मरण का इतिहास एवं पत्रिकाओं के माध्यम से कैसे विकसित हुआ? इसका विस्तार से उल्लेख किया गया है।

तीसरे अध्याय के अन्तर्गत इक्कीसवीं सदी के संस्मरणात्मक साहित्य की परिस्थितियों, साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। सबसे पहले हम संस्मरण पढ़ते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि वह किस रूप में हमारे समक्ष आया है। अर्थात् संस्मरण के अंतर्गत सबसे अधिक बात या विचार किस पर व्यक्त किये गये हैं, इसे लेकर संस्मरण साहित्य की परिस्थिति का वर्णन किया गया है।

चौथे अध्याय के अंतर्गत साहित्यकारों का साहित्यिक परिचय दिया गया है। जिसमें संस्मरण लेखक जितने मिले उनका जीवन परिचय, साहित्यिक परिचय, उनके दिये गये सम्मानों का उल्लेख किया गया है। रामदरश मिश्र, काशीनाथ सिंह, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, विद्यानिवास मिश्र, मनोहर श्याम जोशी, कांति कुमार जैन, विष्णु प्रभाकर, डॉ. विवेकी राय, विश्वनाथ त्रिपाठी, ओम थानवी, रामशरण जोशी, ममता नालिया, निर्मला जैन, नरेन्द्र कोहली, राजेश जोशी, कृष्णा सोबती, गोविन्द मिश्र, मैत्री पुष्पा, कन्हैयालाल नन्दन, ऋचा नागर आदि है।

पाँचवें अध्याय के अंतर्गत इक्कीसवीं सदी के संस्मरणों का अध्ययन किया है। इसमें 2001 से 2017 तक संस्मरणों का विस्तृत वर्णन किया है। (1) लखनऊ मेरा लखनऊ (2002) मनोहर श्याम जोशी, (2) नेह के नाते अनेक (2002) कृष्ण बिहारी

मिश्र, (3) नंगा तलाई का गाँव (2004) विश्वनाथ त्रिपाठी, (4) पर साथ-साथ चल रही है याद, (2004) विष्णुकांत शास्त्री, (5) सुमिरन को बहाने, (2005) केशवचन्द्र वर्मा, (6) यादें (2005) सूर्यनारायण व्यास, (7) घर का जोगी जोगड़ा (2006) डॉ. काशीनाथ सिंह, (8) वसंत से पतझड़ तक, (2005) रविन्द्रनाथ त्यागी, (9) दर्द आया था दबे पाँव, (2005) जे.एन.कौशल, (10) इन बिन (2006) पदमा सचदेव, (11) परिशिष्ट (2008) पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' , (12) नंदबाब फकीर से वजीर (2010) राजेन्द्र जोशी, (13) अपनों से पास अपनों से दूर (2010)

रामशरण जोशी, (14) दर्द मैंने जाना (2011) उषा महाजन, (15) हम हशमत (2012) कृष्णा सोबती, (16) यह जो है पाकिस्तान (2013) शिवेन्द्र कुमार सिंह, (17) बैकुण्ठपुर में बचपन (2014) डॉ. कांति कुमार जैन, (18) पकी जेठ का गुलमोहर, (19) यादें-यादें और यों (2017) पुष्पा भारती, (20) बुरा वक्त अच्छे लोग (2017) सुधीरचंद आदि संस्मरणों का अध्ययन किया है।

छठे अध्याय के अंतर्गत इक्कीसवीं सदी के संस्मरणात्मक साहित्य में शिल्प-संधान

(1) शब्द-योजना, (2) वाक्य योजना, (3) भाषा शैली उपसंहार, भाषा शैली, शब्द योजना, शिल्प विधान जो सभी अंगों-उपांगों को सुन्दर रूप प्रदान करता है।

शोध का बाह्य रूप-संस्मरण विषय शोधार्थी के लिए तो एक जिज्ञासा की चीज है ही साथ ही पाठकों में भी चरित्र को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न करता है। संस्मरण पर शोध कार्य करते समय न जाने कितने चरित्रों से हमें जीवन जीने की प्रेरणा मिल गयी है। मुझे पूरा विश्वास है कि इस शोध कार्य से हर क्षेत्र के प्रेरक व्यक्तियों की जानकारी प्राप्त होगी जिससे वह अपना जीवन सफल बना सके।

शोध कार्य का उद्देश्य/महत्त्व -

संस्मरण विधा पर शोध कार्य करने का अभिप्राय इतना है कि संस्मरण तो बहुत लिखे गये हैं पर उन पर शोध कार्य नहीं हुआ है। जहाँ तक मैंने देखा मुझे कोई ऐसी शोध प्रति नहीं मिली। लेकिन अन्य विधाओं पर थोड़ा-बहुत शोध कार्य हुआ है। हिंदी में गद्य के विकास के पूर्व काव्य ग्रंथों में संस्मरण का अभाव नहीं है। चरित काव्यों की लंबी परम्परा में संस्मरण की सबसे अधिक परंपरा है। कोई भी प्रबंध काव्य ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें यथा स्थान विविध पात्र संस्मरणाधारित वस्तुवर्णन न प्रस्तुत करते हैं। मुक्तक काव्य में भी शृंगार और भ्रमर गीत जैसी रचनाओं में संस्मरण एक ऐसी विधा है

जो दूसरों के साथ-साथ हम लेखक से भी परिचित हो जाते हैं। इसलिए संस्मरण लेखन का उद्देश्य महत्त्वपूर्ण है। यह कहा जा सकता है कि बिना किसी उद्देश्य के कुछ भी नहीं लिखा जाता क्योंकि निष्प्रयोजन साहित्य रचना नहीं होती। जिस तरह काव्य रचना का प्रयोजन यश, अर्थ, लोक व्यवहार और आत्मकल्याण आदि है उसी तरह संस्मरण लिखने का उद्देश्य संस्मरण रचनाकार की जीवन कथा का एक अंश होता है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि साहित्य विधा जनकल्याण के भाव से सृजित की जाती है। हिंदी में संस्मरण साहित्य का विकास आधुनिक युग की एक उपलब्धि है। यह मानना इस दृष्टि से सही है कि संस्मरण साहित्य एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हुआ है।

CANDIDATE`S DECLARATION

I, hereby, certify that the work, which is being presented in the thesis, entitled **"इक्कीसवीं सदी का हिंदी संस्मरणात्मक साहित्य: एक अध्ययन"** in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy, carried out under the supervision of Dr. Vivek shankar, Associate Professor, Department of Hindi government arts collage kota and submitted to the University of Kota, Kota represents my ideas in my own words and where others ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any institutions.

I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have no misrepresented or fabricated or falsified any idea/data/fact/source in my submission. I understand that any violation of the above will cause from disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

Date : 10-07-2021 (Gananand Meena)

Place : Kota Research Scholar

This is to certify that the above statement made by Gananand Meena (Registration No. RS/ 1469/ 18) is correct to the best of my knowledge.

Date : 10-07-2021 (Dr. Vivek Shankar)

Place : Kota Research Supervisor

प्राक्कथन एवं आभार

एम.ए. की डिग्री लेने के पश्चात् मेरे मन में हिन्दी में पी-एच.डी. करने की भावना जागी और तब मैंने अपने गुरु डॉ.विवेक शंकर से शोध-कार्य के बारे में चर्चा की। उन्होंने मुझे बताया कि पी-एच.डी. के विषय पर पहले गम्भीरता से विचार करना चाहिए और बाद में रजिस्ट्रेशन की बात सोचनी चाहिए। करीब-करीब छः महीने बाद मैंने पुस्तकें पढ़कर विधा को चुनने में समय लगाया और अंत में मैंने अपने गुरुजी को बताया कि पढ़ाई करते समय काशीनाथ सिंह जी के संस्मरण ने मुझे बहुत प्रभावित किया। साथ ही महादेवी वर्मा जी के संस्मरण ने भी मुझे विचार करने पर मजबूर कर दिया। जब मैंने यह बात गुरुजी से कही तो उन्होंने भी इस बात का समर्थन किया कि यह विषय अछूता है, इस पर कार्य होगा तो हिंदी साहित्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होगा। जब राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा/नेट हिंदी विषय की तैयारी करते हुए मैंने फिर से अनेक विधाओं और संस्मरण की ओर झुकाव किया। अब मैंने निश्चय किया है कि संस्मरण विषय पर शोध किया जाए। अक्सर देखा गया है कि लेखक संवेदनशील होते हैं और यह संवेदना उन्हें प्रकृति से जोड़ने का कार्य करती है। मित्रों और रिश्तेदारों से संबंध बनाने पर मजबूर करती है तथा साथ ही समाज और विश्व से जुड़ने के लिए प्रेरित करती है जब एक पाठक किसी संस्मरण को पढ़ता है उस वक्त उसका उद्देश्य होता है कि समय काटने के लिए कुछ अच्छा पढ़ना लेकिन जैसे ही लेखक स्मृति के बिम्बों पर विचार करना आरंभ करता है तो उसमें उसे अपना जीवन दिखाई देने लगता है तब वह धीरे-धीरे बाह्य तंत्र से आरंभिक रूप से जुड़ना आरंभ कर देता है जिसके आधार पर पाठक इतना जुड़ जाये कि उसे बिना समाप्त किये रुक ना सके। संस्मरण में लिखने वाले का और पढ़ने वाले का भाव एक हो जाता है। यही कारण है कि यह विधा साहित्येतर होते हुए भी अत्यंत प्रिय विधा बन गयी। यहीं से हमारी खोज शुरू हो गई और मैंने अपने शोध कार्य का विषय "इक्कीसवीं सदी का हिंदी संस्मरणात्मक साहित्यः एक अध्ययन रखा। हिंदी संस्मरणों को खोजते समय मुझे एक और कठिनाई आयी वह यह थी कि मैं कोटा रहता हूँ और यहाँ हिंदी की सभी पुस्तकों का मिल पाना उतना आसान नहीं है जितना एक दिल्ली निवासी को है, फिर भी मैंने भरसक प्रयत्न किया है कि अधिक से अधिक संस्मरण मैं अपने शोध कार्य में सन् 2000 से सन् 2017 तक के संस्मरणों को प्राप्त कर सकूँ। मैंने अपना कार्य बड़ी ईमानदारी से कड़ी मेहनत से किया है।

इस शोध-प्रबंध को सम्पन्न करने और उत्कृष्ट दिशा निर्देशन का सारा श्रेय आदरणीय गुरुवर डॉ. विवेक शंकर जी को जाता है जिन्होंने न केवल शोध-कार्य के दौरान उठने वाली शंकाओं एवं समस्याओं का समाधान किया, बल्कि हतोत्साहित हो जाने पर स्नेहसिक्त प्रेरणा

भी दी है। अपने आपको सौभाग्यशाली मानता हूँ जो मुझे उनके निर्देशन में काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। उनके उत्साहवर्धन व सुझावों के द्वारा ही मेरा शोध कार्य अंतिम रूप तक पहुँच पाया है।

वस्तुतः शोध का वर्तमान परिवर्तित और सम्वर्द्धित स्वरूप उन्हीं के प्रोत्साहन, आशीर्वाद और अनुग्रह का प्रतिफल है। गोस्वामी तुलसीदास की कथोक्ति यथार्थ प्रतीत होती है कि

बिन गुरु भवनिधितरइ न कोई।
ज्यों विरंचि संकर सम होई।।

भाग्यवश पूज्य गुरु का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उनकी प्रेरणा, दिशा-निर्देशन प्रस्तुत शोध प्रबंध कार्य की सायिका शिला है। इस महान प्रेरणा स्रोत गुरु ज्ञान के अभाव में शोध प्रबंध का एक पृष्ठ भी लिखना सम्भव नहीं था। उपयुक्त शब्दाभाव में प्रेरणा स्रोत गुरु के प्रति अति विनम्र कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. कंचना सक्सैना का मातृतुल्य सहज स्नेह एवं आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा, इसके लिए मैं श्रद्धावनत हूँ साथ ही मैं हिन्दी-विभाग के प्रो. डॉ. शशि प्रकाश चौधरी, डॉ. विवेक कुमार मिश्रा, डॉ. अनिता वर्मा, डॉ. आदित्य कुमार गुप्ता, डॉ. रामावतार मेघवाल, डॉ. लड्डूलाल मीणा, डॉ. शशि प्रभा शर्मा तथा अन्य सभी गुरुजनों का भी आभारी हूँ. जिन्होंने उचित मार्ग दर्शाया और आवश्यक सहायता करके मुझे कृतार्थ किया।

परम आदरणीय पिता श्री बद्रीलाल मीणा एवं माता श्रीमती फोरी बाई के असीम स्नेह और परिस्थितियों से लड़ते रहने की निरंतर प्रेरणा मुझे प्रोत्साहित करती रही है, पिता के तकाजों ने सदैव मेरी शिथिलता को गति प्रदान की। उनकी ममता, उनका स्नेह, उनका आशीर्वाद, उनकी दीर्घ आयु की कामना के साथ यह शोध प्रबंध उन्हें समर्पित करता हूँ।

पारिवारिक सदस्यों में बड़ी बहन जनता बाई, बाबूदी बाई, छोटी बहिन मीरा बाई, निरमा बाई तथा भाई दशरथ का सहयोग मुझे मिलता रहा, जिन्होंने हृदय से मेरी

सफलता की कामना की। जिन्होंने कदम-कदम पर मेरा हौसला बढ़ाया। जिनका विशेष रूप से आभार व्यक्त करता हूँ।

शोध सम्बन्धित पुस्तकें उपलब्ध कराने तथा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से महत्त्वपूर्ण सुझावों, गहन अन्वेषण, गम्भीर अध्ययन करने के लिए पुस्तकालयाध्यक्ष राजकीय कला महाविद्यालय कोटा के प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

मैं आदरणीय डॉ. नरेश सिहाग, संपादक बोहल शोध मंजूषा पत्रिका के जिसमें मेरे रिसर्च पेपर पब्लिश हुये हैं जिन्होंने मेरा संस्मरण लेख पढ़कर फोन के द्वारा मेरा हौसला बढ़ाया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे पत्रिका में सदस्यता ही नहीं दी, बल्कि मेरे लेखों को समयसमय पर प्रकाशित कर अपनी पत्रिका में उसे - स्थान दिया। सोशल रिसर्च फाउण्डेशन कानपुर का भी आभार मानता हूँ, जिन्होंने मेरे शोध आलेख को स्थान दिया और मेरे आलेख को पढ़कर फोन के द्वारा हौसला बढ़ाया और सदस्यता के साथ मेरे आलेख को भी प्रकाशित किया।

माँ भारती एवं प्रभु श्री हनुमान जी की असीम अनुकम्पा तथा आदरणीय गुरुजनों के आशीष का ही फल है कि मैं इस कठिन कार्य को विनम्रता से सम्पन्न कर सका।

अंततः मैं आशा करता हूँ कि मेरा यह शोधकार्य आने वाले समय में हिंदी शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

शोधार्थी

गजानन्द मीणा

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण		पृष्ठ संख्या
1.	प्रथम अध्याय		1-26
	1)	संस्मरण शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ, परिभाषाएँ	1
	2)	संस्मरण का रूप, स्वरूप एवं प्रकृति	2
	3)	संस्मरण की विशेषताएँ	18
	4)	संस्मरण के तत्त्व	19
2.	द्वितीय अध्याय - संस्मरण साहित्य का उद्भव और विकास		27-58
	1)	द्विवेदी-युग	28
	2)	छायावाद-युग	32
	3)	छायावादोत्तर-युग	42
3.	तृतीय अध्याय - इक्कीसवीं सदी के संस्मरणात्मक साहित्य की परिस्थितियाँ		59-73
	1)	साहित्यिक परिस्थिति	59
	2)	सामाजिक परिस्थिति	66
	3)	सांस्कृतिक परिस्थिति	70
	4)	राजनीतिक परिस्थिति	71
4-	चतुर्थ अध्याय - इक्कीसवीं सदी के हिंदी संस्मरणात्मक साहित्य के प्रमुख संस्मरणकारों का परिचय		74-121
	1)	रामदरश मिश्र	74
	2)	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	77
	3)	विद्यानिवास मिश्र	79
	4)	मनोहर श्याम जोशी	81
	5)	कांति कुमार जैन	82
	6)	विष्णु प्रभाकर	84
	7)	डॉ.विवेकी राय	86
	8)	विश्वनाथ त्रिपाठी	88
	9)	ओम थानवी	92
	10)	रामशरण जोशी	94
	11)	काशीनाथ सिंह	96
	12)	ममता कालिया	98
	13)	निर्मला जैन	100
	14)	नरेन्द्र कोहली	101

क्र.सं.	विवरण		पृष्ठ संख्या
	15)	राजेश जोशी	105
	16)	कृष्णा सोबती	106
	17)	गोविन्द मिश्र	108
	18)	मैत्रेयी पुष्पा	111
	19)	कन्हैयालाल नन्दन	113
	20)	ऋचा नागर	115
5-	पंचम अध्याय - इक्कीसवीं सदी के हिंदी संस्मरण साहित्य का अध्ययन		122-209
	1)	लखनऊ मेरा लखनऊ (2002) - मनोहर श्याम जोशी	122
	2)	नेह के नाते अनेक (2002) - कृष्ण बिहारी मिश्र	125
	3)	नंगा तलाई का गाँव (2004) - विश्वनाथ त्रिपाठी	131
	4)	पर साथ-साथ चल रही है याद (2004) - विष्णुकांत शास्त्री	136
	5)	सुमिरन के बहाने (2005) - केशवचंद वर्मा	142
	6)	यादें (2005) - पंडित सूर्यनारायण व्यास	147
	7)	घर का जोगी जोगड़ा (2006) - डॉ.काशीनाथ सिंह	150
	8)	बसंत से पतझर तक (2005) - रविन्द्रनाथ त्यागी	154
	9)	दर्द आया था दबे पाँव (2005) - जे.एन.कौशल (जितेन्द्र नाथ कौशल)	158
	10)	इन बिन (2006) - पद्मा सचदेव	162
	11)	परिशिष्ट (2008) - पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	167
	12)	नंद बाबा फकीर से वजीर (2010) - राजेन्द्र जोशी	169
	13)	अपनों से पास अपनों से दूर (2010) - रामशरण जोशी	173
	14)	दर्द मैंने जाना (2011) - उषा महाजन	179
	15)	हम हशमत (2012) - कृष्णा सोबती	183
	16)	यह जो है पाकिस्तान (2013) - शिवेन्द्र कुमार सिंह	187
	17)	बैकुण्ठपुर में बचपन (2014) - डॉ.कांति कुमार जैन	191
	18)	पकी जेठ का गुलमोहर (2016) - भगवान दास मोरवाल	196
	19)	यादें यादें और यादें (2017) - पुष्पा भारती	199
	20)	बुरा वक्त अच्छे लोग (2017) - सुधीर चंद	203
6-	षष्ठम् अध्याय - इक्कीसवीं सदी के संस्मरणात्मक साहित्य में शिल्प-संधान		210-257
	1)	शब्द-योजना	223

क्र.सं.	विवरण		पृष्ठ संख्या
	2)	वाक्य-योजना	225
	3)	भाषा-शैली	237
	4)	उपसंहार	252
7-	**निष्कर्ष**		258
8-	**शोध सारांश**		264
9-	**संदर्भ-ग्रंथ सूची**		269
10-	**प्रकाशित शोध पत्र**		-

प्रथम अध्याय

1) संस्मरण शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ, परिभाषाएँ

2) संस्मरण का रूप, स्वरूप एवं प्रकृति

3) संस्मरण की विशेषताएँ

4) संस्मरण के तत्त्व

प्रथम अध्याय

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य में संस्मरण एक नवीनतम विधा है। जीवनी परक साहित्य का यह अत्यन्त ललित एवं लघु कलात्मक अंग है। जीवन अभिव्यक्ति का यह रूप संस्मरण पर आधारित है। साहित्यकार पुरातनता का परित्याग कर नवीनता को धारण करने लगा। उसकी इस चिन्तन धारा ने साहित्य में अनेक नई विधाओं को जन्म दिया। उसमें एक महत्त्वपूर्ण विधा 'संस्मरण' है।

कुछ विद्वानों की राय में इसका आगमन पश्चिम से हुआ, किन्तु हमारे यहाँ इसका बीज रूप बहुत पहले से मिलता है। भारतीय काव्य शास्त्र में संस्मरण अलंकार रूप में चिरकाल से प्रयुक्त होता रहा है।[१]

1. संस्मरण शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ, परिभाषाएँ -

सम्+स्मृ+ल्युट(अण) = संस्मरण जिसका अर्थ है 'सम्यक संस्मरण' ।[२]

संस्मरण शब्द 'स्मृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग 'ल्युट' प्रत्यय लगाने से बनता है, जिसका अर्थ है 'स्मरण करना', 'स्मृति में लाना'। स्मृति के आधार पर किसी विषय पर अथवा किसी व्यक्ति पर लिखित आलेख 'संस्मरण' कहलाता है। [३]

मानक हिन्दी कोश में संस्मरण शब्द का अर्थ दिया है 'सम्-स्मृ-ल्युट' (अण) से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'भली प्रकार से स्मृति ।[४] इस प्रकार स्मृति करने के कार्य के फल को संस्मरण कहते हैं।

हिन्दी विश्वकोश में कहा है सम्+स्मृ+ल्युट(अण) = संस्मरण जिसका अर्थ दिया है, पूर्ण स्मरण, खूब याद कर अच्छी तरह से नाम लेना या सुमिरन करना। दूसरा अर्थ 'संस्कारजन्य ज्ञान'।[५] 'संस्मरण' के लिए दो अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग होता है, एक 'मेमॉयर' (Memoir) तथा दूसरा 'रेमिनिसेंसेज' (Reminisenses)। संस्मरण साहित्य विधा पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से भारतीय साहित्य में रूढ़ हुई है। दोनों में सूक्ष्म भेद है। 'मेमॉयर' अपेक्षाकृत अधिक वस्तुपरक संस्मरण होते हैं, जिनमें घटनाओं का अधिकाधिक विवरण होता है। हिन्दी में इन दिनों 'मेमॉयर' के लिए संस्मरण शब्द ही पर्यायवाची बना हुआ है। संस्मरण का अर्थ -'सम्यक

स्मरण' रेमिनिसेंसेज लेखक के व्यक्तित्व एवं व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों को कहीं अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है।[६]

परिभाषा -

(1) **डॉ - चन्द्रभानु सोनवणे** ."संस्मरण भाषा के माध्यम द्वारा अतीत, घटना, व्यक्ति आदि में किसी एक की संवेदनामय संस्मरण से पुनः अभिव्यक्ति की जाती है।" [७]

(2) **डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत** - संस्मरण में व्यक्तित्व को अधिक महत्त्व देते हुए उनका कथन है "भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना में अनुरंजित कर व्यंजना मूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट बनाकर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त करता है तब उसे संस्मरण कहते हैं।" [८]

(3) **महादेवी वर्मा** - 'अतीत के चलचित्र' में एक स्थान पर वे लिखती हैं, "शैशव की स्मृतियों में एक विचित्रता है, जब हमारी भाव प्रवणता गंभीर और प्रशांत होती है तब अतीत की रेखायें कुहरे में से स्पष्ट होती हुई वस्तुओं के समान अनायास ही स्पष्ट से स्पष्टतर होने लगती हैं।" [९]

(4) **श्री राजेन्द्र अवस्थी** के अनुसार -"संस्मरण एक समूचा जीवनदर्शन है-, वह व्यक्ति के समूचे व्यक्तित्व को भी प्रभावित करता है, तो उसके एक छोटे से अंग को भी। संस्मरण एक बहुत व्यापक शैली है, क्योंकि इसमें व्यक्ति से लेकर स्थान, काल तक का समावेश होता है।" [१०]

(5) **अमृता प्रीतम** के अनुसार -"हम जो कुछ भी लिखते हैं वह अप्रत्यक्ष रूप से संस्मरण ही है, क्योंकि हम जो भी कहानी लिखते हैं, वह अप्रत्यक्ष संस्मरण ही है।" [११]

(6) **डॉ. जगदीश गुप्त** ने 'संस्मरण की व्याख्या इस तरह से दी है - "जो तरंगाघात मन पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं वही संस्मरण बन जाते हैं। तरंगाघात प्रकृति में अमिट दृश्यों के हो सकते हैं या सम्पर्क में आये हुए उन महामना से जो सामान्य व्यक्ति तक किसी के भी हो सकते हैं, फिर वे संस्मरण हुआ करते हैं।" [१२]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि संस्मरण में स्मृति मूल तत्त्व है। व्यतीत होते ही सबकुछ स्मृति का अंग बन जाता है और दृष्टि वहीं से उपलब्ध होती है।

2. संस्मरण का रूप, स्वरूप एवं प्रकृति -

संस्मरण सहृदय के स्मृतिकोष की अमूल्य आनंद दायिनी निधि है-, अनुभव से इसका प्रत्यक्ष संबंध है। स्वभावतः अनुभव जगत की अपारता के अनुरूप संस्मरण विषय का असीम विस्तार है, कोई भी अनुभव शाब्दिक अभिव्यक्ति पाकर रोचक प्रसंग के रूप में संस्मरण का स्वरूप धारण कर सकता है। व्यापक अर्थ में सृष्टि मात्र के किसी अंश अथवा संपूर्ण स्वरूप से संबद्ध अपने अनुभव की प्रस्तुति या अभिव्यक्ति ही संस्मरण है। तात्विक दृष्टि में संस्मरण स्मृति की अभिव्यक्ति है। स्मरणीयता इसकी पहली शर्त है। स्मरण शब्द से ही संस्मरण बना है। स्मरण अर्थात् सम्यक स्मृति अमिट छाप बनकर जो रह गयी और जिसे अभिव्यक्त किया गया।[१३] आत्मीयता इस प्रकार की अभिव्यक्ति का प्रधान गुण है, क्योंकि स्मरणीय की प्रतिक्रिया तथा भोक्ता के रूप में आत्मीय ढंग से उसकी ग्रहणशीलता संस्मरण में आवश्यक है। यह प्रतिक्रियात्मक प्रत्युत्तर संस्मरण का एक प्रेरक और अनिवार्य देन है।[१४]

स्मरण करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है और कभीकभी जीवन में - ती है। संस्मरइसकी अनिवार्यता स्पष्ट दिखण समस्त साहित्य रचना का उपादन कारण है। अनुभूति तत्व की साहित्य में अनिवार्यता उसकी सार्वत्रिक उपादेयता का प्रमाण है, चिंतनमनन जैसी शक्ति है-, वैसे ही संस्मरण भी है।[१५] रचना प्रक्रिया के इस रहस्य से अवगत नरेश मेहता का कहना है कि -"संस्मरण और अनुभूति दोनों इतने पैरेलल हैं कि साहित्य को स्वअनुभूति से काटा नहीं जा सकता है-, जब वह वैयक्तिक होगा तो संस्मरण नहीं होगा, सार्वकालिक होकर वही मूल्यवान बन जायेगा।[१६] युगानुरूप प्रवृत्तियों में अंतर के कारण रचनाओं में संस्मरण के प्रति आग्रह का अनुपात कम या अधिक हो सकता है अथवा किसी अन्य तत्व की प्रमुखता से इसका रूप परिवर्तन भी संभव है।[१७]

इसी बिन्दु पर संस्मरणेत्तर साहित्यिक विधाओं की परस्पर पृथक तथा स्वतंत्र सत्ता का विकास होता है और यह लक्षण उपलक्षण धारण करती है। -

संस्मरण की विधा अपना साहित्यिक अस्तित्व प्रमाणित करने केलिए स्वतंत्र रूप से विकसित होती है और अभिव्यक्ति अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए स्वतंत्र साहित्य विधा है और अभिव्यक्ति की भिन्नविधाओं भिन्न भंगिमाओं और इतर- की अनुकूल विशेषताओं का वरण करती रहती है।

संस्मरण भी कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक निबंधादि की भाँति एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा है। जैसे गद्य की और विशेषता है वैसे ही संस्मरण भी है।[१८] साहित्य की आधुनिक विधा होने के बावजूद इसके बीजांकुर प्राचीन साहित्य में कम से कम भारतीय साहित्य में ढूँढ निकालना भी संभव है। कतिपय विद्वानों का विचार है कि जातक कथाओं, जैन कथाओं तथा वृहत्कथा और उससे निकले साहित्य के साथ ही बौद्ध साहित्य की धोरी गाथा में जो खुदक निकाय के आठवें और नौवें अध्याय में संकलित हैं, संस्मरण के तत्त्व प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। उनके अनुसार बाणभट्टकृत 'हर्षचरित'[१९] और दण्डी रचित 'दशकुमार चरित'[२०] जैसे ग्रन्थों में संस्मरण का उत्स देखा जा सकता है। इस संबंध में शंभूनाथ सिंह का विचार है कि इनेक्डॉट्स को हम संस्मरण लेखन का स्रोत मान सकते हैं।

(क) हिन्दी गद्य की उत्पत्ति -

आज हिंदी लगभग पचास करोड़ लोगों की भाषा है, दुनिया के सन्दर्भ में देखें तो हिंदी तीसरे पायदान पर है। पहले चीनी और ताइवान की भाषा 'मंदारिन', दूसरे स्थान पर अंग्रेजी और इसके बाद हिन्दी है, इतने अधिक लोगों के द्वारा बोला जाना ही हिन्दी की सबसे बड़ी प्रासंगिकता है। इस भाषा का गद्य साहित्य एक विशाल भौगोलिक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। राजस्थान और पंजाब राज्य की पश्चिमी सीमा से लेकर बिहार के पूर्वी सीमान्त तक तथा उत्तरांचल के उत्तरी सीमान्त से लेकर मध्यप्रदेश के मध्य तक के अनेक राज्यों की साहित्यिक भाषा को हिन्दी कहते आये हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी भाषाभाषी क्षेत्र के लिए एक शब्-द 'मध्यदेश' सुझाया है। लगभग हजार सालों से मध्यदेश में साहित्य प्रयत्नों के लिए एक प्रकार की केन्द्रीय भाषा का व्यवहार होता आया है। देशकाल भेद से साहित्य-भाषा के रूपों में भेद अवश्य पाया जाता है परन्तु प्रयत्न बराबर यही रहा है कि हिंदी भाषा केन्द्रीय भाषाके निकट रहे। हिंदी की एकता इस प्रयत्न में ही है। यह परम्परा आज भी ज्यों की त्यों ही है। यद्यपि इस भाग में अनेक उपभाषाओं का

प्रयोग होता है, किन्तु समाचार पत्र, सभा, समितियों की कार्यवाहियों, पाठ्यपुस्तकें, व्याख्यान और विचार विमर्श आदि कार्य केन्द्रीय भाषा-में ही किये जाते हैं। हिंदी शब्द का व्यवहार इसी केन्द्रोन्मुख भाषा के अर्थ में होता है।

भारत के आधे लोग जिस भाषा का अपने लिए उपयोग करते हैं, उसके गद्य साहित्य की प्रासंगिकता अपने आप में एक अस्मिता का प्रश्न है। हम जो भाषा बोलते हैं, उसके द्वारा हम वह संसार चुन लेते हैं, जिसमें हम रहते हैं या बात को उलटकर यों कहें कि हम जो भाषा बोलते हैं, उसके निमित्त से हम उस जीवन व्यवस्था के द्वारा, जिसके हम अंग हैं, चुन लिए जाते हैं, एक निर्दिष्ट स्थान और धर्म पा लेते हैं। उसे निभाहने को स्वतंत्र हो जाते हैं।

भाषा का व्यवहार समृद्धि देने वाला तभी होता है जब उसके साथ लगाव होता है। ऐसी ही भाषा, अनुभव की भाषा संस्कृति का और अस्मिता का उपकरण होती है। इस परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा और उसका गद्य साहित्य प्रासंगिक है। हजारों वर्षों का सफर अपने आप में ही महान् उपलब्धि है। हिंदी साहित्य ने अनेक विषय और सब परिस्थितियों से टकराते, गिरते और फिर एक नये उन्मेष के साथ अपनी पहचान कायम की है। इसके अध्ययन मात्र से ही हमें एक जीवंत इतिहास, बदलते भूगोल और इन सबसे बढ़कर एक गतिशील सामाजिक व्यवहार की अनुभूति होती है।

इसके स्पर्श की ऊर्जा क्रमशः व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को वो सब सुलभ करा देती है, जो सर्वथा दुर्लभ है। सभी आशाओं, सहयोग और प्रेरणा के स्त्रोत जब सूख जाते हैं तो गद्य साहित्य कालेले घने बादलों को चीरकर बिजली की तरह का-चमकता है। विशेषकर अतीत को, जो कुछ कर रहा है उसके खिलाफ एक बगावत की शक्ति साहित्य ही उपलब्ध कराती है। फिर अपने अनुभवों से हमें सन्दर्भ कराती है। हिन्दी गद्य साहित्य अपने सामाजिक और राजनैतिक परिवेश के प्रति कितना संवेदनशील रहा है इसकी थोड़ी पड़ताल यहाँ प्रासंगिक है। महाभारत एक युग की समाप्ति और ऐसे भयावह शून्य का चीत्कार है, हाहाकार है, व्यास का कथन है कि मैं हाथ उठाकर कह रहा हूँ कोई नहीं सुन रहा है।

जायसी की दो गुरुओं की परम्परा में एक गुरु ऐसे थे जो मेंहदी की परम्परा से आते थे। सोलहवीं सदी का जो विशाल मजीद साहित्य है, उसके सतही सामाजिक कारणों की बहुत विवेचना की गई, लेकिन वो कबीर हो, जायसी हो,

तुलसी हो, सूर हो, इन सबके काव्य में निश्चित रूप से गहरे नैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक उत्तर के रूप में भक्ति प्रकट हुई। यदि गहराई से उसका विवेचन किया जाए तब पता चलेगा कि सोलहवीं सदी के उस परिवर्तन, उस संक्रमण को इन महान कवियों ने किस रूप में देखा।

यकीनन वो संकट बोध नहीं होता तो 'रामचरित मानस' और 'विनय पत्रिका' ही नहीं, 'कवितावली' के उत्तरकांड की भी रचना नहीं हो सकती थी। स्वयं जायसी ने अपने 'पद्मावत' में जिस ट्रेजडी का वर्णन किया है, उस ऐतिहासिकता का एहसास एक ओर कायनात और मेंहदी के रूप में प्रकट होता है। और दूसरी ओर गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस में कलियुग वर्णन में। यह आकस्मिक नहीं है कि रामराज के विस्तृत वर्णन और स्थापना के ठीक पूर्व उत्तरकांड में विस्तार से कलियुग का वर्णन है। साहित्य के विचारक यह कहते हैं कि कलियुग वर्णन एक समय है और पहले भी संस्कृत के कवि कलियुग का वर्णन करते रहे हैं।

निर्मल वर्मा ने उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों में हिन्दी के संकट काल की चर्चा की है, लेकिन नामवर सिंह इससे असहमत हैं, "मुझे ठीकठीक भारतेन्दु युग - में वही संकटबोध नहीं मिलता है। अगर सचमुच संकटबोध और गहराहोता तो कायदे से हिंदी की उन्नीसवीं शताब्दी में सर्जनात्मक साहित्य को बहुत महत्त्वपूर्ण होना चाहिए था। संकटबोध संवेदना के स्तर पर कहाँ है, कितना है, उसमें कितनी गहराई है। इसकी एक व्यावहारिक कसौटी है कि उस काल में लिखे साहित्य का गुणात्मक मूल्य क्या है। कहने के लिए कह दिया जाए कि राजनैतिक चिंता भी थी, गुलामी का एहसास भी था, स्वदेशी की भावना भी थी, यह तमाम चीजें थीं, लेकिन एक विचित्र बात है कि उस संकट का मूर्त, ठोस और सर्जनात्मक रूप जो पश्चिमी सभ्यता के आघात के कारण भारतीय मनीषी में पैदा हुआ था, वह बीसवीं सदी के तीसरे दशक में दिखाई पड़ता है और उसके लेखक सर्जक दो कवि हैं - जयशंकर प्रसाद। पंत की परिवर्तन कविता जन्म और सुमित्रा नंदन पंत और दूसरे मृत्यु के दर्शन की व्याख्या तो करती है लेकिन एक कवि के नितान्त वैयक्तिक अनुभव अपनी आत्मकथा के माध्यम से।

इन कुछ उदाहरणों से साफ होता है, एक युग की समाप्ति का बोध हिन्दी साहित्य में उन्नीसवीं सदी में व्याप्त नहीं हुआ है। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों

में नहीं बल्कि उसका अधिक संवेदनशील रूप और अधिक गहरे स्तर पर वस्तुतः बीसवीं सदी के दूसरेतीसरे दशक में दिखाई पड़ता है।-

इन कुछ उदाहरणों से साफ है कि हिन्दी गद्य साहित्य की प्रासंगिकता केवल वर्तमान का ही पर्याय नहीं है। बल्कि अतीत का विस्तार है। इसमें वैसे वर्तमान का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है, जिसमें भविष्य की संभावना छिपी होती है। लेकिन अतीत की मुकम्मल समझ से भला इनकार कैसे किया जा सकता है।

साहित्य मूल्यों का कोई अरण्य नहीं है। वह एक ऐसी जगह है जो सबकुछ के बीच में है। बस्तियों, चौक बाजार के पास वह एकान्त साधना है और संग साथ भी। उसे भरापूरा स्पन्दित समाज चाहिए पर वह व्यक्ति गरिमा और निजता का - आग्रह करता है। सौभाग्य सेविचारधाराओं और व्यवस्थाओं की तरह गद्य साहित्य दो टूक न होकर उभयभावी है। वह एक कोमल पर अकारण नहीं मान लेता। वह संभवतः मनुष्य का सबसे स्थायी प्रजातंत्र है, जिसमें स्वतंत्रता है, समता है और सबके लिए जगह है, वह समय देखता है और पीरपार भी।[२१]

(ख) हिन्दी गद्य विधाएँ और संस्मरण -

संस्मरण गद्य साहित्य की एक स्वतन्त्र एवं आकर्षक विधा है। अन्य गद्य विधाएँ जैसे जीवनी, आत्मकथा, निबन्ध, रेखाचित्र, कहानी आदि के कई रूपों में साम्य होते हुए भी इसका पृथक अस्तित्व और महत्त्व है। अतः अन्य विधाओं से इसके साम्य एवं वैषम्य का विवेचन करना अपेक्षित है।

संस्मरण और आत्मकथा -

व्यापक रूप में संस्मरण आत्मकथा के अन्तर्गत आ जाता है अथवा हम यह कह सकते हैं, यह आत्मचरित का एक आवश्यक अंग है, किन्तु इन दोनों में मौलिक भेद है। यद्यपि डॉरामअवध द्विवेदी इन दोनों में कोई भेद नहीं मानते हैं . तथापि हमारे विचार में संस्मरण आधुनिक युग की एक पृथक कलात्मक विधा के रूप में विकसित हो रहा है।

अतीत की अविस्मरणीय घटनाओं को लेखक जब अपने कवित्वमय अनुभूतिपूर्ण व्यक्तित्व से मण्डित करता है तो संस्मरण की रचना होती है। इसमें अन्य व्यक्तियों, घटनाओं, वस्तुओं और स्थानों का भी अत्यन्त महत्त्व रहता है तथापि स्थूल परक दृष्टिकोण से इसका उद्देश्य नितांत भिन्न होता है।

इन दोनों में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि आत्मकथा में लेखक अपने जीवन की आद्योपांत कथा लिखता है, जबकि संस्मरण में केवल उन घटनाओं या व्यक्तियों की स्मृति की जाती है, जिन्हें लेखक भुला नहीं सका, क्योंकि वह उसी की मानसिक चेतना के अभिन्न अंग बन जाते हैं। इसमें केवल उल्लेखनीय विशिष्ट क्षणों का लेखाजोखा लिखा जाता है।-[२२]

संस्मरण लेखन का कार्य आत्मकथा लेखन से सरल है। आत्मकथा में अपने जीवन से सम्बन्ध रखने वाले अनेक व्यक्ति जीवित रहते हैं, उनके साथ सभी प्रकार का प्रियसबसे बचते अप्रिय व्यवहार समयानुकूल करना पड़ता है। अतः इन-द्वेष से पृथक होकर अपनी जीवनी लिखना अत्यन्त दुष्कर कार्य हो जाता -हुए राग संस्मरण में उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करना पड़ता है-है। किन्तु आत्म, जिनको आसानी के साथ सबके सामने रखा जा सकता है।[२३] संस्मरण व्यक्तिगत अनुभवों से रंजित इतिवृत्त होता है। लेखक अपने जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का ही वर्णन करता है। किन्तु इसमें पूर्णता के प्रति वैसा आग्रह नहीं होता है जैसा आत्मकथा में।[२४]

इस प्रकार संस्मरण आत्मकथा का अंग बन कर आ सकता है, किन्तु एक-दूसरे का स्थान नहीं ले सकते हैं। अतः आत्मकथा का अंग होते हुए भी संस्मरण का अपना पृथक अस्तित्व है एवं महत्त्व है।

संस्मरण और जीवनी -

जीवनीकार अपने नायक के गुणदोषों का समन्वित रूप में वर्णन करता है। - परन्तु वह दोषों से अधिक गुणोंके महत्त्व को ही प्रतिपादित करता है, वह दोषों को गुणों के आलोक में छिपा देता है, जैसे कलंक तो सूर्य में भी होता है[२५] लेकिन यह किसी में नहीं दिख पाता है, क्योंकि उसका प्रकाश अत्यन्त तेज होता है। किन्तु संस्मरणकार अपने पात्र को यथार्थ की कसौटी पर कसकर वास्तविक एवं स्वाभाविक रूप में प्रकट करता है। वह श्रद्धा भाव से प्रेरित नहीं होता है, वस्तुतः वह व्यक्ति के साथ सहानुभूतिपूर्ण आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, किन्तु उसकी सहानुभूति अन्धदोष का सम्यक -सहानुभूति न होकर गुण-विवेचन करने वाली होती है। जीवनीकार और संस्मरणकार की कला में अन्तर होता है। जीवनीकार इतिहासकार पहले होता है, किन्तु संस्मरणकार साहित्यकार पहले और इतिहासकार बाद में होता है। एक में कलाकार के व्यक्तित्व के भावमय

चित्रों की प्रधानता होती है, किंतु दूसरे में तटस्थ वर्णनों की।[२६] इससे स्पष्ट ही एकदूसरे से प्रभावित होते हुए भी दोनों विधाएँ पृथक हैं।-

हिंदी में हर तरह की जीवनियाँ उपलब्ध हैं क व्यक्तियों की जीवनियाँधार्मि -, राजनीतिक नेताओं की जीवनियाँ, ऐतिहासिक महापुरुषों के चरित्र, साहित्यकारों की जीवनियाँ और विदेशी महापुरुषों के परिचय, जैसे धार्मिक महापुरुषों में गौतम बुद्ध से लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती तक अनेक महापुरुषों, संतों तथा समाज सुधारकों की जीवनियाँ हिंदी साहित्य में पढ़ने को मिलती हैं। ऐतिहासिक तथा राजनैतिक नेताओं की जीवनियाँ प्रायः अधिक परिश्रम के साथ लिखी गयी हैं और इनकी संख्या भी अधिक है।[२७]

जीवनियाँ बहुत सारी पर्याप्त मात्रा में पायी जाती हैं। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में जीवनी को इस प्रकार बताया गया है -

"जीवन चरित्र साहित्य की शाखा के रूप में व्यक्तियों की जीवनियों का इतिहास।"

जीवनी कथा और संस्मरण दोनों में इस बात पर हमें ध्यान देना होगा कि जीवनीकार व्यक्ति से भिन्न होता है, परन्तु संस्मरण रचना में लेखक स्वयं होता है। विद्वानों ने माना है कि संस्मरण आत्मपरक होता है, जीवनी वस्तुपरक होती है, जीवनी में वर्णन की तटस्थता होती है। साफ और बेबाक बात कही जाती है, उसका जो सत्य होता है वह अतीत का सत्य होता है। परन्तु संस्मरण में बीते हुए सत्य का वर्तमान में समावेश होता है। उसकी आसक्ति वर्तमान में बनी रहती है। जीवनी लेखक तथ्य व्यौहार वर्णन कला के कारण इतिहासकार के समक्ष बैठता है और संस्मरण लेखक कथाकार के समीप आ जाता है। जीवनी और संस्मरण में रचना विधि का स्पष्ट भेद है। इस तरह दोनों विधाएँ एक-दूसरे के समान होते हुए भी अलग-अलग हैं।[२८]

संस्मरण और रेखाचित्र -

कभीकभी रेखाचित्र और संस्मरण इतने गुंथे हुए रहते हैं कि उनको पृथक - करना सम्भव नहीं होता, बल्कि अधिकांशतः ये दोनों साहित्यिक विधाएँ एकदूसरे - के साथ ही लिपटीदूसरे के पूरक रूप में पाई जाती हैं।-चिपटी और एक-[२९]

इससे स्पष्ट है कि रेखाचित्र और संस्मरण दोनों समकक्ष विधाएँ हैं तथापि इनमें मौलिक भेद है, यह भेद इतना सूक्ष्म होता है कि बड़े कुशल आलोचक भी धोखा खा जाते हैं। लेखन रेखाचित्र में संस्मरणात्मक शैली का प्रयोग कर सकता है। उसी तरह संस्मरण में भी साहित्यकार रेखाचित्रात्मक शैली का प्रयोग कर सकता है, तब उसे रेखाचित्रात्मक संस्मरण कहा जा सकता है। किन्तु दोनों का एक भेदक तत्व है कि रेखाचित्र में विषय के साथ लेखक का हार्दिक लगाव नहीं होता है।

जीवनी संस्मरण में विषय के साथ ऐसा हार्दिक लगाव होता है कि लेखक स्वयं उसका पात्र बन जाता है।[३०] जिस प्रकार चित्रकार रेखाओं के माध्यम से भावभंगिमाओं का चित्र प्रस्तुत करता है। उसी तरह लेखक साहित्यिक रेखाचित्र - में शब्दों के द्वारा सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। संस्मरण में भी लेखक वर्ण्य-विषय का चित्रोपम चित्रण करता है। यह विषय का निकटतम चित्रण है।[३१]

बहुत कुछ साम्य रहने पर भी इन दोनों में कई भेद हैं, सर्वप्रथम तो रेखाचित्रकार और संस्मरणकार का प्रमुख भेद है कि संस्मरण लेखक पर शब्द-योजना और वाक्य विन्यास सम्बन्धी विशेष नियंत्रण नहीं रहताहै, किन्तु रेखाचित्रकार की तत्सम्बन्धी सीमाएँ निश्चित रहती हैं। उसे तो कम शब्दों में सजीव से सजीव और छोटे से छोटे वाक्य में अधिक से अधिक तीव्र एवं मर्मस्पर्शी व्यंजना करनी पड़ती है। अपने इस कार्य में वही कलाकार सफल हो सकता है, जिसका हृदय अधिक संवेदनशील और दृष्टि सूक्ष्म पर्यवेक्षण निपुण एवं मर्मभेदिनी होती है।[३२]

वस्तुतः रेखाचित्र चारित्रिक होता है, किन्तु संस्मरण केवल बाह्य एवं आन्तरिक चरित्र का विश्लेषण एवं संश्लेषण प्रस्तुत करता है। संस्मरण रेखाचित्र की धुंधली एवं अस्पष्ट रेखाओं में रंग भरकर उन्हें स्पष्ट एवं उज्ज्वल रूप में प्रस्तुत करता है। इससे स्पष्ट है परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहते हुए भी विषय और शैली की दृष्टि से दोनों विधाओं को परस्पर भेद हैं तथापि दोनों विधाओं को स्वतंत्र मानना ही समीचीन है।

संस्मरण और कहानी -

कहानी और संस्मरण आधुनिक गद्य साहित्य की दो विभिन्न विधाएँ हैं, दोनों का उद्भव समान परिस्थितियों में हुआ है। दोनों विधाओं में परस्पर बड़ा साम्यसा -

प्रतीत होता है, किन्तु दोनों में बड़ा मौलिक अन्तर है। कहानी और संस्मरण दोनों में ही संक्षिप्तता के प्रति आग्रह प्रतीत होता है।

बाबू गुलाब राय ने कहानी की परिभाषा में संक्षिप्तता का भी उल्लेख किया है। छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है, जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति केन्द्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक किन्तु कुछ अप्रत्याशित ढंग से उत्थान पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश-डालने वाला कौतुहलपूर्ण वर्णन है।[३३]

कहानी में कथानकगत संघर्ष, कथा के मोड़ और चरमावस्था के साथसाथ - एक निश्चित उद्देश्य रहता है, जिसकी ओर कहानी तेजी से बढ़ती है। किन्तु संस्मरण पर ऐसा कोई बन्धन नहीं होता है।[३४] यद्यपि संक्षिप्तता, रोचकता तथा प्रभाव की एकता इत्यादि गुण उसमें भी रहने चाहिए।

संस्मरण की अपेक्षा कहानी का रूप अधिक व्यापक होता है। कहानियों के अनेक प्रकार हो सकते हैं। कई शैलियों में कहानी लिखी जा सकती है। इन शैलियों में एक वर्ग संस्मरणात्मक कहानियों का भी हो सकता है, किन्तु संस्मरण केवल अतीत की महत्त्वपूर्ण एवं मनोरंजक घटनाओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने की एक कला है। उसका प्रवाह कहानी की अपेक्षा शिथिल होता है।[३५]

कहानी में लेखक अपनी रंगीन कल्पना के तानेबाने बुनकर विषय को - बहुरंगा एवं रुचिकर बना देता है। जबकि संस्मरण में सत्य, यथार्थ एवं स्वाभाविकता के प्रति अत्यधिक आग्रह रहता है। निष्कर्षतः संस्मरण और कहानी समान नहीं कहे जा सकते हैं।

संस्मरण तथा निबन्ध -

निबन्ध एक ऐसी सीमित गद्य रचना है जिसमें कार्यकारण की श्रृंखला के - साथ विचार निबद्ध होते हैं और उन विचारों में व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट होती है।[३६] इस परिभाषा से तो निबन्ध और संस्मरण में कोई भेद प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि निबन्ध के लिए आवश्यक गुण है रोचकता, संक्षिप्तता, भावों में तारतम्य तथा स्वतः पूर्णता, जो व्यक्तित्व की आत्मा से मण्डित हो।

इसके विपरीत निबन्ध लेखन किसी वस्तु या व्यक्ति को कल्पना में स्वीकार नहीं कर लेता है, वरन् उस विषय या वस्तु का बौद्धिक दृष्टि से विश्लेषण कर उसको

आलोचनात्मक एवं तर्कसंगत रूप में प्रस्तुत करता है। संस्मरण में जहाँ भाव प्राधान्य है, वहाँ निबन्ध में वैज्ञानिक सूझबूझ अपेक्षित होती है। निबन्ध में - व्यक्तित्व का स्स्पष्ट व्यक्तित्व रस झलकता है, जबकि संस्मरण में व्यक्तित्व का आभास होता है। निबन्ध में जहाँ बुद्धि एवं तर्क की प्रधानता रहती है, वहाँ संस्मरण में बुद्धि की अपेक्षा हृदय का सम्बन्ध एवं समावेश अधिक रहता है।

संस्मरण और रिपोर्ताज -

रिपोर्ताज शब्द फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। हिन्दी में इसे वृत्तनिर्देशन अथवा - खी गई घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी की सूचनिका नाम दिया गया है। इसमें लेखक दे भाँति ही वर्णन करता है।

संस्मरणकार भी आँखों देखी या स्वानुभूत घटना का ही वर्णन करता है किन्तु सूचनिन्दा और संस्मरण में यही भेद है। सूचनिन्दा में व्यक्तित्व का वैसा समावेश नहीं होता है जैसा कि संस्मरण में होता है।[३७]

संस्मरण तथा दैनिकी लेखन -

संस्मरण दैनिनीलेखन से भी बहुत वैषम्य रखता है। दैनिनी में व्यक्ति घटना- के प्रति अपनी प्रतिक्रिया अपनी सूचनाभर के लिए व्यक्त करता है। उसमें न तो पूर्णता का ध्यान रहता है और न ही भूमिका का ।[३८]

संस्मरण और मेमायर -

मेमाय अंग्रेजी का शब्द है। इसका भाव संस्मरण के निकट होता है। इसलिए संस्मरण और मेमायर को प्रायः एक समझा जाता है। किन्तु इन दोनों में वैधानिक अन्तर यह होता है कि मेमायर में संस्मरण की चेतना तो रहती है, किन्तु ऐतिहासिकता उसका मूल तत्व है, जबकि संस्मरण के लिए इतिहास किसी यथा श्रेयता आवश्यक नहीं होती। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्मरण निबन्ध, कहानी, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा, मेमायर आदि साहित्यिक विधाओं से कई दृष्टि से साम्य रहते हुए भी साहित्य जगत में अपनी निजी विशिष्टताओं के कारण अपना स्वतंत्र अस्तित्व एवं महत्त्व रखता है।[३९]

(ग) संस्मरण की प्रकृति -

हिन्दी संस्मरणसाहित्य गद्य की नवीनतम उपलब्धि है। इसकी आशातीत - प्रगति हुई है, तथापि भविष्य में इसके और अधिक विकास की अपेक्षा की जा

सकती है। जीवन का यथार्थ चित्रण होने से साहित्य में इसके विभिन्न रूप मिलते हैं - जिनका अनुशीलन निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत है-

1) संस्मरण-लेखक के आधार पर-

हिन्दी संस्मरणसाहित्य के विकास से स्पष्ट है कि केवल साहित्यिक - व्यक्तियों ने ही संस्मरण नहीं लिखे, अपितु राजनैतिक एवं क्रांतिकारी व्यक्तियों ने भी इस विधा के विकास में योगदान दिया है। साहित्यिक व्यक्तियों से अभिप्राय उन व्यक्तियों से है जिन्होंने अपनी विद्वता का परिचय अनेक कृतियों द्वारा दिया है। ऐसी श्रेणी में आलोचक, कवि एवं कथालेखक आते हैं। संस्मरण - लेखक का जैसा भी व्यक्तित्व होगा, उसका वैसा ही संस्पर्श उसके संस्मरणों में आना स्वाभाविक है।

कवि-:संस्मरण लेखक :

हिन्दी साहित्य में कुछ संस्मरण ऐसे मिलते हैं जो प्रसिद्ध कवियों द्वारा लिखित हैं। उनमें हरिवंशराय बच्चन, महादेवी वर्मा, पंत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके संस्मरणों में इन कवियों के भावुक हृदय तथा भावों की कोमल-उपलब्ध होते हैं। कवियों में महादेवी वर्मा हिन्दी की दर्शन-कमनीयता के साक्षात् हृदय की कोमलता-सर्वोत्तम संस्मरण लेखिका हैं। उनके संस्मरणों में उनके कवि, कल्पनाशीलता, भावुकता एवं मधुरता छलक पड़ती है। महादेवी कृत 'निराला' सम्बन्धी एक संस्मरण उल्लेखनीय है -

एक युग बीत जाने पर भी मेरी स्मृति से एक भी घटा भरी अश्रुमुखी सावनी पूर्णिमा की रेखाएँ नहीं मिट सकी हैं। उन रेखाओं के उजले रंग न जाने किस व्यथा से मिले हैं कि अब तक सूख नहीं पाए हैं, उड़ना तो दूर की बात है। उस दिन मैं बिना कुछ सोचे हुए ही भाई निराला जी से पूछ बैठी थी, 'आपको किसी ने राखी नहीं बाँधी?' अवश्य ही उस समय मेरे सामने उनकी बन्धन शून्य कलाई और पीले कच्चे सूत की ढेरों राखियाँ लेकर घूमने वाले यजमान खोजियों का चित्र था। पर अपने प्रश्न के उत्तर ने मुझे क्षण भर के लिए चौंका दिया। 'कौन बहन हम जैसे भुक्खड़ को भाई बनाएगी' - उनकी दृष्टि में दर्प और विश्वास की धूपछाँही - आभा थी।[४०]

'बच्चन' ने भी कवि होने के नाते एक कवि के हृदय, स्वभाव एवं व्यक्तित्व को जानने में कुशलता का परिचय दिया है। इनकी भाषा शैली ही उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचय देती है। 'नवीन' जी के व्यक्तित्व को उन्होंने कुछ ही पंक्तियों में समेट लिया है। इनकी हर कविता का एक इतिहास है, एक घटना है, चलतेफिरते व्यक्ति हैं-, भावों का ऊहापोह है और एक भावुक कवि का हृदय जिसे सबसे लपटतेझपटते-, उलझते हुए और मरते खपते हुए गुनगुनाते हुए भी जीना पड़ा है। 'नवीन' जी ने अपनी कविताएँ विवेक से नहीं लिखीं, उन्होंने अपने अश्रु-रक्त में अपनी लेखनी डुबाकर लिखा है-स्वेद, जिसमें जग का बहुत सा गर्दगुबार - भी आकर पड़ गया है।[४१]

कथा लेखक संस्मरणकार-:

यदि संस्मरण लेखक कथाकार हो तो उसके संस्मरणों में अधिकतर वर्णनात्मक शैली को अपनाया गया होता है। कथारों में लेखक संस्मरणका-उपेन्द्रनाथ अश्क, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, वृन्दावनलाल वर्मा तथा यशपाल आदि आते हैं। इनमें अश्क जी ने तो कथा लेखकों की सी वर्णनात्मक शैली में ही अपने संस्मरण लिखे हैं। 'मंटो मेरा दुश्मन' में उस महान् लेखक के साथ बिताए गए दिनों की दर्दीली और दिलचस्प कहानी संस्मरणों के रूप में कही गई है। अश्क जी ने उसे असीम प्यार किया था और की थी बेहद नफरत। इन्हीं बातों के अनूठे संस्मरण का एक उद्धरण उल्लेखनीय है-:

"मंटो जब गाली देने पर माफी माँग लेता था इतना माद्दा उसमें था तब - र खिंचाव ही रहे और हम लड़ते रहेफिर क्या कारण है कि हममें परस्प? इस बात पर गौर किया है और मैं हमेशा इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जिन्दगी की बिसात पर हमें एक दूसरे के सामने रख दिया गया और हम लड़ने पर मजबूर रहे।" [४२]

जैनेन्द्र के सभी संस्मरण 'ये और वे' नामक संग्रह में संकलित हैं। इन्होंने अपनी वीर माता का अत्यन्त सुन्दर चित्र खींचा है, "सन् तीस में मैं जेल गया। उन्हें मालूम हो गया कि आज कैदी यहाँ से बाहर भेजे जा रहे हैं और अमुक स्टेशन से उन्हें सवार किया जाएगा। देखा, माता जी वहाँ मौजूद हैं। मौजूद ही नहीं पूरी व्यवस्था के साथ हैं। उन्होंने आगे बढ़कर पुलिस सब इन्सपेक्टर से बात की और जाने वाले हम सब कैदियों का सत्कार किया। सबको खूब मिठाई, फल दिए।

रेल आई और चलने लगी तो उन्होंने राष्ट्रगान आरम्भ किया। उस समय की उनकी मुद्रा भूलती नहीं है। कण्ठ उनका रुकता था, वाणी अवरुद्ध होती थी, आँखों में पानी था। लेकिन उनके होंठों पर राष्ट्रगान और बधाई थी। रेल के साथ वह धीरेधीरे बढ़ रही थीं और आँख मुझ पर टिकी थी। वह आँखों से रोती और मुँह - से हँसती हुई मुद्रा मैं कैसे भूल सकता हूँ।[४३]

इन कथा लेखकों ने अपने संस्मरण प्रभावपूर्ण एवं सजीव शैली में लिखे हैं। व्यक्तित्व की आभा से मण्डित होने के कारण इस प्रकार के संस्मरण रोचक एवं प्रभावोत्पादक बन गये हैं।

आलोचक संस्मरणकार-:

कवि और कथा लेखकों के अतिरिक्त आलोचकगण भी संस्मरण लेखन में पीछे नहीं रहे हैं। डॉश्यामसुन्दर ., बाबू गुलाबराय, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, शिवदान सिंह चौहान और

डॉ पद्मसिंह शर्मा .'कमलेश' द्वारा लिखित संस्मरण प्राप्त होते हैं। आलोचक संस्मरणकार की भाषा में स्वतः ही सहज प्रवाह एवं रोचकता का समावेश हो जाता है। आलोचक होने के नाते वह स्वयं अपने चरित्र को भी स्पष्ट रूप से निस्संकोच होकर प्रस्तुत करता है। बाबू गुलाबराय इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'मेरी असफलताएँ' में जीवन की घटनाओं का निस्संकोच वर्णन करते हुए बाबू गुलाबराय जी लिखते हैं-:

"याद है कि मैं एक बार चाट के लिए मचला था। तिवारी को पड़ोसी धर्म और मैत्री का उपदेश दिया था, भाई बाँट कर खाया करो। ऐसी ममता भरी शिक्षा उसे दी थी जब वह सब 'कामी वचन सती तन जैसे' बेकार गए तब माता से पैसे के लिए अनुनयविनय की और फिर कहीं अपनी रुचि की तृप्ति कर सका था। - अच्छे खाने की कमजोरी सारे बाल प्रायः सफेद हो जाने पर भी बनी हुई है।" [४४]

लेखक की प्रत्येक कृति पर उसके व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य रहता है। बाबू श्यामसुन्दर दास के लाला भगवानदीन विषयक संस्मरण में स्वयं इनके व्यक्तित्व का आभास मिलता है -

कविवर दीन का स्वभाव बड़ा ही सरल था। वह जब अपने शिष्यों से वार्तालाप करते थे जो जान पड़ता था मानो वे उनके मित्र और बराबरी के हों।

सदैव हँसनाहँसाना उनके स्वभाव का सबसे बड़ा गुण था-। उनके स्वभाव का तीसरा गुण उनकी स्पष्टवादिता थी। वस्तुतः आलोचक संस्मरणों में भी अपने संस्मर्ण्य की आलोचना किए बिना नहीं रह सकता। शिवदान सिंह चौहान ने पंत के व्यक्तित्व को इन शब्दों में अंकित किया है।[४५]

(घ) संस्मरण का स्वरूप -

मनुष्य का सबसे बड़ा आकर्षण केन्द्र मनुष्य ही है। मनुष्य होने के नाते साहित्यकार का लक्ष्य भी जनजीवन का ही अध्ययन करता रहता है। जन जीवन - की इकाई भी मनुष्य है। अतः उसी का अध्ययन साहित्य में किया जाता है। - विषय में लिखते हैं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी इसी "साहित्य में उसी के आवेगों, उद्वेगों और उल्लासों का स्पन्दन आपने देखा होगा।" [४६]

संस्मरण शब्द की व्युत्पत्ति सम + स्मृ + ल्युट् (अण) से हुई है, जिसका अर्थ है सम्यक् स्मरण। सम्यक् का तात्पर्य है आत्मीयतापूर्वक तथा अधिक गम्भीरतापूर्वक। इससे स्पष्ट है कि स्मरण शब्द अधिक आत्मपरकता का सूचक है।

डॉ. चन्द्रावती सिंह संस्मरण के विषय में लिखती हैं - "जीवन की बहुत सी बातों में, संसार की हलचलों में, दफ्तर की किसी कार्यवाही में या किसी सभा में जो समय समय पर बातें घटी हैं, उनका अलग-अलग वर्णन संस्मरण कहा जा सकता है। इसमें आत्म-चरित्र की एकता नहीं हो सकती।" [४७]

डॉ. गोविंद त्रिगुणायत संस्मरण को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अतिरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने उद्गार व्यक्त कर देता है, तब उसे संस्मरण कहते हैं।' '

डॉ. प्रतिभा साथ तथा डॉ. ओमप्रकाश शास्त्री संस्मरण में व्यक्तित्व के साथ-साथ प्रतिभा तथा यथार्थता को भी अनिवार्य मानते हैं - अतीत की अनन्त घटनाओं में से जब कलाकार किसी अधिक स्मरणीय तथा अविस्मरणीय घटना को अपने व्यक्तित्व में रंगकर रोचक शैली में यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है तो उसे संस्मरण कहते हैं।

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार संस्मरणों में केवल कुछ चुने हुए लोगों के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन होता है। ये घटनाएँ वे ही होती हैं जिनसे लेखक प्रभावित होता है।[४८]

डॉ. नित्यानन्द भी संस्मरण में आत्मानुभूति का महत्त्व स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि "इसमें लेखक निजी अनुभूतियों को व्यंजनामूलक कल्पना से रंग कर रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है।" [४९]

डॉ. नित्यानन्द भी संस्मरण में आत्मानुभूति का महत्त्व स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि "इसमें लेखक निजी अनुभूतियों को व्यंजनामूलक कल्पना से रंग कर रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है।[५०]

डॉ. पद्मसिंह शर्मा कमलेश संस्मरण का स्वरूप निर्धारित करते हुए कहते हैं कि तथ्यात्मक या इतिवृत्तात्मक पद्धति को छोड़कर किसी व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करने वाली रोचक घटनाओं या परिस्थितियों का वैयक्तिक सम्पर्क के आधार पर जिन रचना में लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है, वह संस्मरण होता है। श्री सत्यप्रकाश मिलिंद संस्मरण में विशिष्ट एवं कौतूहलवर्धक घटना का होना आवश्यक मानते हैं - "संस्मरण में चरित्र के किसी विशिष्ट अंग का या घटना का ही उल्लेख और विवेचन रहता है, जो भी घटना विशिष्ट कौतूहल-वर्धक या असाधारण होती है, उसी का विवेचन संस्मरण में रहता है।" [५१]

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त संस्मरण में स्मृति को पूर्णतः मूलभूत मानते हुए कहते हैं कि "संस्मरण से हमारा तात्पर्य किसी व्यक्ति विशेष अथवा परिस्थिति को स्मृति के आधार पर प्रस्तुत करने से है ।"[५२] वृहद् हिन्दी कोश में भी संस्मरण में स्मृति तत्व को विशेष तत्व माना गया है स्मृति के आधार पर किसी विषय या व् -यक्ति के सम्बन्ध में लिखित लेख या ग्रंथ संस्मरण है।[५३]

यही संस्मरण शब्द अंग्रेजी में दो रूपों में प्रयुक्त हुआ है -'मेमायर्स' और 'रेमिनिसेंसिज'। ये दोनों शब्द क्रमशः आत्मकथा और संस्मरण के पर्याय बैठते हैं। संस्मरण लेखक यदि अपने विषय में लिखे तो उसकी रचना आत्मकथा के निकट होगी और यदि अन्य व्यक्तियों के विषय में लिखे तो जीवनी के निकट। इस दृष्टि से स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखित लेख या ग्रन्थ को संस्मरण कह सकते हैं।[५४]

संस्मरण अंग्रेजी के 'मेमायर्स' के समानांतर हिंदी में प्रयुक्त होता है। 'मेमायर्स' में लेखक किसी महान एवं प्रसिद्ध व्यक्ति के साथ की गई यात्रा अथवा उसके साथ कुछ दिन रहने पर उस समय के बीच होने वाली घटनाओं और अनुभवों की कटुमधुर स्मृतियों का वर्णन करता है और इस प्रकार उस व्यक्ति के - का भी चित्रण हो साथ लेखक के निजी हृदय की भावनाओं और अनुभूतियों-साथ जाता है।[१५]

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संस्मरण जीवनीपरक साहित्य - का एक अत्यंत लघु, कौशल युक्त एवं मार्मिक तथा मनोरंजक रूप है।

3. संस्मरण की विशेषताएँ -

उक्त आधार पर संस्मरण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

(1) संस्मरण लेखक के जीवन के अनुभूत सत्यों पर आधारित है।

(2) संस्मरण में किसी स्मरणीय व्यक्ति, पशुपक्षी-, वस्तु, दृश्य या घटना का भावात्मक एवं कथात्मक वर्णन होता है, जिससे उसमें कहानी का गुण दिखाई पड़ता है।

(3) संस्मरण में लेखक वर्ण्यसाथ अपने विषय में या अपनी -वस्तु के साथ-ने ऊपर पड़े प्रभाव का भी वर्णन करता है।मनोदशा और अप

(4) संस्मरण में संस्मर्ण्य व्यक्ति या वस्तु का स्वरूप वर्णन या चित्रांकन भी होता है। किन्तु यह चित्रांकन रेखाचित्र से भिन्न होता है।[१६]

संस्मरण साहित्य अपनी भाव-प्रवणता तथा कला कोमलता के कारण हिंदी साहित्य में अन्यतम स्थान रखता है। सद्यः उपलब्ध सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि इस विधा का निकट भविष्य में और अधिक विकास होगा। अपनी मौलिक एवं उत्कृष्ट विशेषताओं के कारण अब यह विधा-समाज में अत्यंत प्रिय एवं समादृत है। यही कारण है कि कलात्मक रूप का द्रुत गति से विकास हो रहा है, जिसे देखकर अनेक रूपों के इस क्षेत्र में आने की आशा की जाती है। मनुष्य जीवन की जटिलताओं, प्रसाद व्यापकता के साथ-साथ साहित्य का भी विषय क्षेत्र एवं विस्तार को प्राप्त कर रहा है। स्वभावतः ही संस्मरण विधा का विषय स्वतः विस्तृत एवं व्यापक आयाम को प्राप्त कर रहा है। भविष्यम्भावी विकास का यह एक स्वर्णिम संकेत है।[१७]

(5) संस्मरण वर्णन प्रधान जीवनीपरक कथेतर नव विधा है।

(6) संस्मरण का आधार स्मृति है।

(7) इसमें सजीव पक्षों के बाहरी रूप के साथसाथ आन्तरिक जीवन चरित्र का - भी वर्णन रहता है।

(8) यह कल्पना पर नहीं वास्तविकता पर आधारित होते हैं।

(9) संस्मरण लेखक, संस्मरण में अपने निजी अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का लक्ष्य सामने रखता है और अभिव्यक्ति का माध्यम विशिष्ट व्यक्तियों, वस्तुओं तथा क्रियाकलापों को बनाता है।

(10) प्रायः संस्मरण किया जा रहा व्यक्ति, दोनों प्रसिद्ध होते हैं।

(11) संस्मरण में यथार्थ का चित्रण होता है, पर वह भावनाओं के रंग में रंगा होता है, इसलिए उसमें इतिहास की धार रही होती है या इतिहास की तरह तटस्थपरता।

(12) संवेगात्मक चित्रण संस्मरण के लिए आवश्यक है, यह दो लोगों के बीच आत्मनिष्ठ हिस्से या अंतरंगता से पैदा होता है। इस आधार पर हम संस्मरण को एक विधा के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।

संस्मरण जीवनीपरक कथेतर गद्य विधा है, जिसमें कोई लेखक किसी विशिष्ट व्यक्ति के जीवन से जुड़ी मार्मिक आत्मीय स्मृतियों की रोचक और तथ्यपरक ढंग से वर्णित करता है। इस वर्णन में लेखक की अंतरंगता की झलक भी दिखाई देती है।

4. संस्मरण के तत्व -

संस्मरण की ऊपर वर्णित परिभाषा के आधार पर संस्मरण के तत्व निर्धारित किये जा सकते हैं। हमने देखा है कि संस्मरण का आधार स्मृति है। यह स्मृति किसी व्यक्ति से संबंधित होती है, जिसके साथ लेखक की गहरी आत्मीयता जुड़ी रहती है। लेखक इस व्यक्तित्व के किसी पक्ष का या उसके साथ बिताये हुए क्षणों का पूरी तरह से आत्मीयता के साथ वर्णन करता है, हालांकि वह अपने वर्णन में पूरी तरह तटस्थ नहीं होता है, लेकिन तथ्यों से छेड़छाड़ की इजाजत - - र पर संस्मरण में आठ प्रमुख तत्व माने जा सकते हैं।नहीं होती है। इस आधा

(1) स्मृति (2) व्यक्तित्व का चित्रण (3) आत्मीयता

(4) तथ्यात्मकता (5) पात्र एवं चरित्र चित्रण (6) परिवेशावन

(7) वर्ण्य विषय (8) उद्देश्य

(1) स्मृति

अतीत की स्मृति संस्करण का प्राथमिक तत्व है। संस्मरण का आधार ही स्मृति है। इस विधा में किसी व्यक्ति या स्थान से जुडी स्मृतियों का लेखक कागज पर उकेरता है। ये स्मृतियाँ विशिष्ट होती हैं, ऐसी स्मृतियाँ जो किसी स्मृति में आ रहे व्यक्ति के चरित्र पहलू को बताती हैं या लेखक के जीवन से जुडी होती हैं। इस मामले में यह स्मृतियों के जंजाल में से विशेष स्मृतियाँ चुनने का लेखकीय उपक्रम कहा जा सकता है।[५८]

(2) व्यक्तित्व का चित्रण

संस्मरण प्रायः किसी व्यक्ति के बारे में लिखा जाता है, हालांकि संस्मरण जगहों और घटनाओं के बारे में भी लिखे जाते हैं, लेकिन इन संस्मरणों का आधार भी मुख्यतः व्यक्तियों से जुडी स्मृतियाँ होती हैं, क्योंकि बिना लोगों के स्थान और घटनाओं का कोई महत्त्व नहीं होता है। कोई जगह खुद को लोगों के माध्यम से ही साकार करता है, जिसके सम्पर्क में लेखक आता है, संस्मरण की विशेषता यह ही होती है। यह किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को भले न दिखाता है लेकिन उसके व्यक्तित्व के किसी विशिष्ट पहलू को जरूर देखता है। इसी तरह संस्मरणकार अपने संस्मरण के द्वारा किसी शहर को जीवंत करता है। जैसे मनोहर श्याम जोशी ने 'लखनऊ मेरा लखनऊ' में किया है। यह काम भी लेखक लोगों के माध्यम से करता है।[५९]

(3) आत्मीयता

आत्मीयता संस्मरण की अनिवार्य शर्त है। लेखक उसी के बारे में लिखता है, जिसके साथ उसकी आत्मीयता हो। यह आत्मीयता संस्मरण से भी झलकनी चाहिए। अगर लेखक आत्मीय होकर और पूरी अंतरंगता के साथ किसी व्यक्ति के बारे में लिखेगा तो संस्मरण शुद्धता का शिकार हो जायेगा। इसके द्वारा ही संस्मरण विधा विश्वसनीय और पठनीय हो पाती है।[६०]

(4) तथ्यात्मकता

जब किसी व्यक्ति, घटना या स्थान के बारे में स्मृति के सहारे लिखा जाता है तब वह जरूरी होता है कि जो भी लिखा जा रहा है वह तथ्यपूर्ण हो। कुछ ऐसा न लिखा जाये, जो व्यक्ति को जानबूझकर गलत रोशनी दिखाए-, उसके बारे में गलत जानकारी दे। इसी तरह से किसी ऐतिहासिक घटना पर लिखते वक्त भी ऐतिहासिक सत्यता का ध्यान दिया जाना चाहिए।[६१]

(5) पात्र एवं चरित्र चित्रण

पात्र एवं चरित्रचित्रण हिंदी संस्मरण साहित्य की महत्त्वपूर्ण इकाई है। - में संस्मर्ण्य के व्यक्तित्व एवं उसके चरित्र को लेकर अथवा किसी घटना संस्मरण को लेकर उसके व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देना ही संस्मरणकार का प्रमुख लक्ष्य रहता है। संस्मर्ण्य के व्यक्तित्व की रोचक एवं स्पष्ट अभिव्यक्ति में ही उसकी सफलता निहित है। नाटक उपन्यास तथा गद्य की अन्य विधाओं के समान ही संस्मरण में भी चरित्रचित्रण अपेक्षित रहता है। संस्मरणकार किसी विशिष्ट घटना - या विशेष उल्लेखनीय क्षणों को आधार बनाकर, समग्र व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देने का प्रयास करता है।[६२]

हिन्दी संस्मरण साहित्य में ऐसे बहुत कम लेखक हैं, जिन्होंने अपने जीवन को आत्मकथात्मक शैली में अभूतपूर्व लिखा हो। छुटकर संस्मरणों का तो इस शैली में अभूतपूर्व भंडार है, सम्पूर्ण जीवन की भावी संस्मरणों के रूप में सिर्फ शांतिप्रिय द्विवेदी के 'परि प्राजक की प्रज्ञा' में ही विद्यमान है। इसमें वर्णित संस्मरणों में लेखक ने लेखक की स्पष्टवादिता एवं भावुकता का स्पष्ट निर्देशन किया है।[६३]

सम्पूर्ण रूप से संस्मरण के पात्रांकन में इस लेखक के निजी व्यक्तित्व का हल्कासा सम्पर्क रहता- है, जिससे संस्मरणात्मक वर्णित विषय पाठक के लिए विश्वसनीय एवं सहज ग्राह्य बन जाता है। संस्मरण लेखक यदि आलोचक है, वह अपने चरित्रनायक की आलोचना किये बिना नहीं रहेगा। वह किसी न किसी ढंग - टिप्पणी कर ही बैठता है। यही नहीं-से टीका, यदि कोई लेखक अंतर्मुखी छवि का है या मनोविश्लेषणवादी है तो वह अपने नायक का मनोवैज्ञानिक ढंग से चरित्रांकन करता है तथा उसके रहस्यमय झीने पर्दे को अपने यथार्थ रूप में समाहित कर पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है।[६४]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लेखक अपने चरित्रनायक के जीवन को - किसी एक प्रभावशाली घटना को लेकर विद्वतापूर्ण एवं स्मरणीय रमणीय शैली में उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का स्पष्टीकरण करता है। इसी में उसकी विशिष्टता एवं कुशलता निहित होती है। इसके अतिरिक्त संस्मरणकार अपने स्वभाव एवं चरित्र का विश्लेषण कर सकता है। संस्मरणों में प्रायः चरित्रांकन वर्णनात्मक होता है। स्वयं लेखक ही उसके चरित्र को आकर्षक एवं स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करता है।

(6) परिवेशावन

संस्मरण साहित्य में वास्तविकता का पुट देने में परिवेश का भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। परिवेश उन परिस्थितियों का लघु रूप रहता है, जिनमें पात्रों को संघर्ष में विलीन होना पड़ता है। विषयवस्तु विकासोन्मुखी होती है। संस्मरण में वर्ण्य विषय चरित्र किसी देश या काल में ही अपना जीवन व्यतीत करता है, अतः उसके जीवन की घटनाएँ देश काल से सम्बद्ध रहती हैं। देश काल की पृष्ठभूमि के बिना पात्रों का एवं लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता है। संस्मरण में परिवेश चित्रण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यात्रा सम्बन्धी संस्मरण इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रहता है। इसके अतिरिक्त परिवेशावन में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा आर्थिक युगीन परिस्थितियों का समावेश रहता है। वस्तुतः परिवेशावन के बिना घटनाक्रम ग्राह्य नहीं बन पाता, लेकिन इसका प्रयोग साधन के रूप में होना चाहिए।[६५]

वस्तुतः संस्मरण लेखक का उद्देश्य परिस्थितियों का चित्रण करना नहीं होता, इसका चित्रण अनायास ही हो जाता है। लेकिन संस्मरण के विषय को वास्तविकता का पुट देने के लिए संकेत अवश्य देना पड़ता है। प्रत्येक कलाकार पर युग प्रभाव की अमिट छाप अवश्य होती है। अल्पकालिक परिस्थितियों का वर्णन होना स्वाभाविक है। स्पष्ट ही संस्मरणात्मक परिवेशावन कलाकार के कलात्मक अभिव्यक्ति परिचयन तथा उसके सूक्ष्म निरीक्षण का द्योतक है।

(7) वर्ण्य विषय

वर्ण्य विषय किसी भी रचना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व है। कथाश्रित साहित्य विधाओं की अनिवार्यता होती है कि लेखन कला के साथ रचनात्मक स्तर पर रागात्मक भाव से सम्बन्ध हो। संस्मरण की वस्तु चाहे जितनी भी क्षीण

कथाओं को लेकर चले, लेखक के रचनात्मक राग के साथउसके व्यक्तिगत साथ-जीवन से अवश्य सम्बद्ध होती है। संस्मरण प्रायः किसी ख्याति प्राप्त व्यक्ति के जीवन की किसी महत्त्वपूर्ण घटना की स्मृति पर आधृत होता है। आजकल जनवादी संस्मरण लेखक राजनीतिक नेताओं, साहित्यकारों के व्यक्तित्व आदि को ही वर्ण्य विषय नहीं बनाता है, अपितु निम्न, दलित, सर्वहारा वर्ग सम्बन्धित किन्तु मानवीय गुणों से अलंकृत सामान्य मानव को भी संस्मरण का विषय बना सकता है। संस्मरण में रोचकता का समावेश भी होना चाहिए।[६६]

(8) उद्देश्य

साहित्य की अनेक विधाओं की भाँति संस्मरण भी सोद्देश्य रचना होती है। उद्देश्यरहित कलाकृति प्रयोजनहीन सिद्ध होती है। किन्तु संस्मरण लेखन का उद्देश्य अन्य लेखकों से पृथक रहता है। इसमें लेखक समय के इतिहास को लिखना चाहता है। इसका लेखक जो स्वयं अनुभव करता है एवं देखता है, उसी का वर्णन करता है। उसके वर्णन में उसकी अनुभूमियाँ और संवेदनाएँ निहित होती हैं। वह वास्तव में अपने चतुर्दिक जीवन का सृजन करता है। सम्पूर्ण भावनाओं के साथ इतिहासकारों की तरह वह विवरण प्रस्तुत नहीं करता। इस तरह प्रकारांतर से उसकी रचना में उसके जीवन सम्बन्धी मान्यताओं, विचारों, विश्वासों एवं नैतिक धारणाओं को ग्रहण किया जाता है जो संस्मरण का उद्देश्य को ही स्पष्ट कर देते हैं।[६७] किसी का उद्देश्य आत्मबोध की उपलब्धि करना रहता है तो कोई युगीन परिस्थितियों की झाँकी प्रस्तुत करना चाहता है, प्रत्येक व्यक्ति जीवन के अर्थात् अनुभवों से दूसरों को लाभान्वित करने को अत्यन्त उत्सुक रहता है, यही संस्मरण का उद्देश्य है।

संस्मरण का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं होता। इस सम्बन्ध में महादेवी वर्मा का निम्न प्रसंग दृष्टव्य है -

"यदि इन अधूरी रेखाओं में और धुंधले रंगों में किसी को अपनी छाया की एक रेखा भी मिल जाये तो वह सफल है।"

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (प्रथम अध्याय)

[१] डॉ. रघुवंश और अजीत कुमार, संस्मरण (हिन्दी साहित्य कोश), पृ.सं. 809

[२] डॉ. जयकिशन, हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ.सं. 727

[३] डॉ .चन्द्रावति सिंह, हिन्दी साहित्य में जीवन चरित्र का विकास, पृ.सं .20

[४] सं. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, पृ.सं. 245

[५] नगेन्द्र बसु, हिंदी विश्वकोश, पृ.सं .443

[६] डॉ. हरवंश लाल शर्मा, हिंदी रेखाचित्र, पृ.सं. 18

[७] डॉ .चन्द्रभानु सोनवणे, साहित्य शास्त्र, पृ.सं .260

[८] डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, पृ.सं. 497

[९] महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ.सं. 9

[१०] सं. वेदप्रकाश अरोड़ा, आजकल, पृ.सं. 6

[११] सं. वेदप्रकाश अरोड़ा, आजकल, पृ.सं. 6

[१२] डॉ. जगदीश गुप्त, साक्षात्कार, पृ.सं. 20

[१३] डॉ. रघुवंश और अजीत कुमार, संस्मरण (हिन्दी साहित्यकोश प्रथम संस्मरण) पृ.सं. 803

[१४] सद्गुरु शरण अवस्थी, साक्षात्कार, पृ.सं .12

[१५] डॉ. शिवप्रसाद सिंह, साक्षात्कार, पृ.सं. 20

[१६] नरेश मेहता, साक्षात्कार, पृ.सं. 17

[१७] नरेश मेहता, साक्षात्कार, पृ.सं. 17

[१८] शिवप्रसाद सिंह, साक्षात्कार, पृ.सं .22

[१९] सद्गुरु शरण अवस्थी, डॉ .देशराज, ठाकुर शिवप्रसाद सिंह, साक्षात्कार, पृ.सं .23

[२०] ठाकुर प्रसाद सिंह, साक्षात्कार, पृ.सं .20

[२१] डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, हिन्दी भाषा और साहित्य एक समग्र अध्ययन, पृ.सं. 137-139

[२२] डॉ. रामअवध द्विवेदी, साहित्य रूप, पृ.सं. 32

[२३] दशरथ ओझा, समीक्षा शास्त्र, पृ.सं .202, 203

[२४] डॉ. नगेन्द्र, मानविकी परिभाषिक शब्द कोश (साहित्य खण्ड), पृ.सं. 165

[२५] नित्यानन्द शर्मा, वाङ्गमय विवेक, पृ.सं. 230

[२६] डॉ .गोविन्द त्रिगुणायत, शास्त्रात्य समीक्षा के सिद्धान्त) द्वितीय भाग(, पृ.सं .504

[27] डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, शास्त्रात्य समीक्षा के सिद्धान्त (द्वितीय भाग), पृ.सं. 504

[28] बाबू गुलाबराय, काव्य के रूप, पृ.सं. 236

[29] बाबू गुलाबराय, साहित्य संदेश, जुलाई 62, पृ.सं. 2

[30] बाबू गुलाबराय, साहित्य संदेश, जुलाई 62, पृ.सं. 2

[31] रामगोपाल सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य, पृ.सं. 31

[32] रामगोपाल सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य, पृ.सं. 317

[33] गोविन्द त्रिगुणायत, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त द्वितीय भाग, पृ.सं. 490

[34] बाबू गुलाबराय, काव्य के रूप, पृ.सं. 203

[35] नित्यानन्द शर्मा, वाङ्गमय विवेक, पृ.सं .231

[36] सं.लक्ष्मीनारायण, हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास, पृ.सं. 57

[37] कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' , क्षण बोले कण मुस्कराएँ, पृ.सं. 20

[38] सत्यकाम वर्मा, हिन्दी साहित्यानुशीलन, पृ.सं. 547

[39] डॉ. हरवंशलाल शर्मा, हिन्दी रेखाचित्र, पृ.सं. 25

[40] महादेवी वर्मा, पथ के साथी, पृ.सं. 66

[41] हरिवंश राय बच्चन, नये पुराने झरोखे, पृ.सं. 25

[42] उपेन्द्रनाथ अश्क, मण्टो मेरा दुश्मन, पृ.सं .72

[43] जैनेन्द्र, ये और वे, पृ.सं. 146

[44] बाबू गुलाबराय, मेरी असफलताएँ, पृ.सं. 55

[45] सं. ज्योतिलाल भार्गव, साहित्यिकों के संस्मरण, पृ.सं. 36

[46] हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ.सं. 192

[47] चन्द्रावती सिंह, हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, पृ.सं. 19, 20

[48] डॉ. सत्येन्द्र सिंह, आलोचना शास्त्र, पृ.सं. 172

[49] डॉ. नित्यानंद शर्मा, समालोचना तत्व, पृ.सं. 116

[50] बाबू गुलाबराय, साहित्य सन्देश पत्रिका, जुलाई 1962, पृ.सं. 23

[51] सत्यप्रकाश मिलिंद, साहित्य समालोचन, पृ.सं. 117

[52] प्रो. सुरेशचन्द्र गुप्त, एम.ए., साहित्य का स्वरूप, पृ.सं. 1538

[53] सं .कालिका प्रसाद, वृहत हिंदी कोश, पृ.सं .1414

[54] डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृ.सं. 870

[55] बाबू गुलाबराय, साहित्य सन्देश पत्रिका, दिसम्बर 1966, पृ.सं. 215

[५६] सं.कैलाशनाथ सिंह, डॉ. आद्याप्रसाद द्विवेदी हिन्दी गद्य विविधा ग्रीन, पृ.सं. 25

[५७] राजरानी शर्मा, हिंदी का संस्मरण साहित्य, पृ.सं. 149-150

[५८] डॉ. हरिमोहन, समीक्षा और साहित्य की विधाएँ, पृ.सं. 45

[५९] डॉ. मनोरमा शर्मा, संस्मरण और संस्मरणकार, पृ.सं. 30

[६०] राजमणि शर्मा, साहित्य के रूप, पृ.सं .52

[६१] अरुण प्रकाश, गद्य की पहचान, पृ.सं. 17

[६२] शांति खन्ना, आधुनिक हिन्दी का जीवनपरक, पृ.सं. 264

[६३] रामचंद्र तिवारी, हिंदी ग़द्य साहित्य, पृ.सं. 70

[६४] रामचंद्र तिवारी, हिंदी ग़द्य साहित्य, पृ.सं. 70

[६५] यशपाल, झूठा सच, पृ.सं. 87

[६६] चन्द्रवति, हिंदी साहित्य में जीवन चरित का विकास, पृ.सं .25-26

[६७] महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ.सं. 8

द्वितीय अध्याय

संस्मरण साहित्य का उद्भव और विकास

1) द्विवेदी-युग

2) छायावाद-युग

3) छायावादोत्तर-युग

द्वितीय अध्याय

संस्मरण साहित्य का उद्भव एवं विकास

संस्मरण हिन्दी गद्य की नवीनतम उपलब्धियों में से है। यह गद्य विधा भी अन्य कतिपय विधाओं के समान यूरोप की देन है। इसका आगमन वर्तमान काल के तीसरे दशक में हुआ है, अथवा यों कहा जा सकता है कि हिन्दी में संस्मरण कला का आरम्भ 1920 के बाद से हुआ है। सर्वप्रथम द्विवेदी युग में द्विवेदी जी की प्रेरणा सेसंस्मरण:' में बहुत से लेखकों के संस्मरणात्मक परिचय प्रकट हुए थे, क्योंकि वे कोरे जीवनवृत्त मनोहर आत्मानुभूति से अनुप्राणित थे, अतः उन्हें जीवन न कहकर संस्मरण कहना अधिक उपयुक्त होगा।

गद्य में यद्यपि संस्मरण का प्रचलन वर्तमान युग एवं परिस्थितियों की देन है, किन्तु हिन्दी गद्य में भी हमें संस्मरण कला का पर्याप्त प्राचीन रूप मिलता है। गद्य में हमें सर्वप्रथम बनारसीदास जैन के 'अर्द्ध कथानक' में इस विधा के तत्व दिखाई पड़ते हैं। बनारसी दास चतुर्वेदी ने इसे हिन्दी का प्रथम आत्मचरित[१] कह कर सम्मानित किया है। रामधारी सिंह दिनकर ने भी इस बात को स्वीकार किया है।[२] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को भी हिन्दी साहित्य में यही एक आत्मचरित्र मिला है।[३]

हिन्दी संस्मरण साहित्य को बंगला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू, अंग्रेजी आदि में अनूदित अनेक रचनाओं ने भी समृद्ध किया है, बंगला से अनूदित रचनाओं में हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा अनूदित रविन्द्रनाथ ठाकुर की रचना 'मेरा बचपन' , गुजराती से अनूदित रचनाओं में मनु बहन गाँधी की रचनाएँ 'बा - मेरी माँ' (अनुवादित कुरंगी बहन देसाई) तथा 'बा और बापू की शीतल छाया में' (1954, अनुवादन रामनारायण चैधरी), पंजाबी से अनूदित रचनाओं में अमृता प्रीतम की रचना 'अतीत की परछाइयाँ' (1962), उर्दू से अनूदित रचनाओं में उपेन्द्र नाथ 'अश्क' द्वारा संपादित 'उर्दू बेहतरीन संस्मरण' (1962) तथा नयनतारा सहगल

द्वारा अंग्रेजी में लिखित पुस्तक 'प्रिजन एण्ड चाक्लेट केक' का मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव द्वारा हिन्दी में अनुवाद 'मेरा बचपन' कतिपय उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

संस्मरण साहित्य की सबसे अनमोल निधि वे पत्र-पत्रिकाएँ हैं, जिनमें ये नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे हैं। 'सरस्वती' में 'मनोरंजक संस्मरण' , 'नई धारा' में 'मुझे याद है' , धर्मयुग में 'एक दिन की बात' अविस्मरणीय है। 'जब मैं सोलह साल की थी' आदि शीर्षकों में अन्तहीन बेहिसाब संस्मरण प्रकाशित हुए हैं। सारिका ने तो पूरे के पूरे अंक ही संस्मरण पर निकाल दिये हैं। संस्मरणों का यह भण्डार परिमाण की दृष्टि से ही नहीं विषय-वैविद्य की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि ये जीवन के विविध क्षेत्रों यथा - चिकित्सा क्षेत्र, फिल्म जगत, संगीत, नृत्य आदि से जुड़े लोगों के साथ सम्बद्ध है। इनमें डाकुओं के संस्मरण भी हैं तथा समाज सुधारकों के भी। इनमें अहिन्दी प्रदेशों में रहते हुए हिन्दी सेवियों के संस्मरण भी हैं, हिन्दी सेवा में जुटे विदेशी विद्वानों के संस्मरण भी। इस दृष्टि से रूस के प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान डॉ. ये पे चेलीशैव का संस्मरण 'निरालारू जीवन और संघर्ष के मूर्तिमान रूप' (प्रकाशन समाचार, जनवरी 1983) विशेष रूपेण उल्लेखनीय है। वस्तुतः संस्मरणों का ऐसा संगम अन्यत्र अप्राप्य नहीं तो दुर्लभ अवश्य है।[४]

1. द्विवेदी युग में संस्मरण साहित्य का उद्भव और विकास -

संस्मरण हिन्दी गद्य की नवीनतम विधा है, अतः मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में, यहाँ तक कि भारतेन्दु साहित्य में भी संस्मरण का प्रचलन नहीं हुआ था। वास्तव में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से ही हिंदी संस्मरण लिखे गये। अंग्रेजी संस्मरण के दो रूप मिलते हैं - जब लेखक अपने जीवन को केन्द्र में रखकर संस्मरण लिखता है तो उसे अंग्रेजी में 'रेमेनेसेन्स' और जब दूसरे व्यक्ति को केन्द्र में रखकर संस्मरण लिखता है तो उसे अंग्रेजी में 'मेमायर्स' कहा जाता है। किन्तु हिन्दी में दोनों के लिए एक ही शब्द 'संस्मरण' का प्रयोग मिलता है। इस तरह की रचनाओं का प्रारम्भ द्विवेदी युग के लेखकों ने किया था।

द्विवेदी युग में सर्वप्रथम पदमसिंह शर्मा ने 'पद्मपुराण-' नाम से अपने संस्मरण का संग्रह प्रकाशित किया। शर्मा जी ने अपने समय के कई लेखकों के सम्बन्ध में संस्मरण लिखे थे। उसके बाद में पंबनारसी दास चतुर्वेदी ने .

संस्मरण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया।'विशाल भारत' और 'मधुकर' का सम्पादन करते समय उन्होंने अनेक लेखकों के संस्मरण प्रकाशित किये थे। इसके अतिरिक्त चतुर्वेदी जी के लिखे संस्मरणों के कई संकलन प्रकाशित हुए जैसे 'संस्मरण' (1952 ई.), 'हमारे आराध्य' (1952 ई.)। इनके सम्बन्ध में डॉ. ताराचन्द शर्मा तथा डॉ. श्रीराम शर्मा ने लिखा है, "श्रीयुत् चतुर्वेदी जी के संस्मरण नामक संग्रह में विजेन्द्र नाथ ठाकुर, दीनबन्धु ऐन्ड्रयूज , आजाद की माताजी, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी आदि पर सशक्त रेखारित्र शैली में संस्मरण लिखे, संस्मरण उल्लेखनीय है।"

चतुर्वेदी जी के बाद संस्मरण लेखकों में श्रीराम शर्मा का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है। शर्मा जी के निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हुए, जिनमें अधिकांश संस्मरण तथा कुछ संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं। ग्रन्थों के नाम हैं -'जंगल के बीच' (1949), 'वे कैसे जीते हैं' (1957)।

संस्मरण साहित्य के क्षेत्र में बाबू शिवपूजन सहाय का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है।

शिवपूजन सहाय बीसवीं शताब्दी के मूर्धन्य पत्रकार और संस्मरण लेखक हैं। उन्होंने बीसवीं सदी के तीसरे दशक से लेकर छठे दशक तक के अपने सम्पर्क में आने वाले साहित्यकारों और पत्रकारों के संस्मरण समयसमय पर लिखे-, जो उनके मरणोपरान्त 'मेरा जीवन' नामक ग्रन्थ में संकलित होकर प्रकाशित हुए। यद्यपि इन संस्मरणों में अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में विशेष रूप से लिखा गया है, किन्तु उनमें लेखकों का जीवनवृत्त भी अपने आप वर्णित हो गया।-

अपने गुरुजनों एवं पूर्ववर्ती साहित्यकारों में से उन्होंने स्व. श्री दीनदयाल शर्मा, बाबू शिवनन्दन सहाय, महामहोपाध्याय, पं. सकलनारायण शर्मा, पं. ईश्वरी प्रसाद शर्मा, बद्रीनाथ भट्ट, माधव शुक्ल, पं. जगन्नाथ प्रसाद, पं. अमृत लाल चक्रवर्ती, आचार्य श्यामसुन्दर दास आदि संस्मरण लिखे। अपने समकालिक लेखकों और पत्रकारों में उन्होंने सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, आचार्य चन्द्र शेखर शास्त्री, बाबू महादेव प्रसाद सेठ, मुंशी नवजादिक लाल पत्रकार श्री मूलचन्द जी, आचार्य गुलाबराय जी, प्रेमशंकर, जयशंकर प्रसाद आदि के बारे में रोचक संस्मरण लिखे हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने समय की पत्र-पत्रिकाओं, साहित्य संस्थाओं तथा अपनी यात्राओं का भी संस्मरणात्मक वर्णन किया है। [१]

संस्मरण कला गद्य में अधिक विकसित हुई है। गद्य में इसका आविर्भाव द्विवेदी युग से ही कहा जा सकता है। इस युग में सरस्वती पत्रिका के अतिरिक्त 'सुधा' , 'विशाल भारत' आदि तत्कालीन पत्रिकाओं में भी इस विधा का प्रारम्भिक रूप एवं विकास लक्षित होता है। उपलब्ध पत्र-पत्रिकाओं एवं संस्मरण ग्रन्थों के आधार पर संस्मरण का विकास इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

हिंदी संस्मरण साहित्य के सर्वप्रथम लेखक के रूप में बालमुकुन्द गुप्त का नामोल्लेख किया जाता है। 1907 ई में इन्होंने .'प्रताप नारायण' सम्बन्धी वृत्त लिखा है। इसमें गुप्त जी के स्वभाव एवं जीवन सम्बन्धी सामग्री को संस्मरणात्मक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसका आरम्भ अत्यन्त रोचक है।

हिंदी साहित्य के आकाश में हरिश्चन्द के थोड़े दिन पश्चात् एक ऐसा चमकता हुआ तारा उदय हुआ था, जिसकी चमकदमक देखकर लोग उसे दूसरा चन्द्र कहने - लगे थे। उस चन्द्र के अस्त होने पर इस तारे की ज्योति और बढ़ी। बड़े हर्ष के मुख यह ध्वनि निकलने लगी कि यह उस चन्द्र की जगह लेगा साथ कितनों ही, पर दुःख की बात है कि वैसा होने से पहले ही कुछ दिन बाद ही उज्ज्वल नक्षत्र भी अस्त हो गया।[६]

इस पुस्तक में मुकुन्द जी ने हरिऔध जी के जीवन स्वभाव एवं विशेषताओं पर प्रकाश डालने वाले पन्द्रह छोटेरण लिखे। यह संस्मरण व्यक्तिगत छोटे संस्म- अनुभवों पर आधारित है।

गुप्त जी के पश्चात् डॉश्याम सुन्दर दास का नाम .ोल्लेख किया जाता है। इन्होंने 'लाला भगवान दीन' विषयक संस्मरण लिखा है। इन्होंने अपने इस एक ही संस्मरण में लाला भगवान दीन के जीवन की सम्पूर्ण झाँकी को प्रस्तुत किया है। प्रत्येक कृति पर लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य रहता है। डॉसाहिब भी . इस बात के अपवाद नहीं हैं, आलोचक होने के नाते उन्होंने संस्मरण की आलोचना की है। कविवर दीन का स्वभाव बड़ा ही सरल तथा आकर्षक था। वह अपने शिष्यों से वार्तालाप करते तो जान पड़ता था मानो वह उनके मित्र तथा बराबरी के हों। सदैव हँसनाहँसाना उनके स्वभाव का सबसे बड़ा गुण था। उनके स्वभ-ाव का तीसरा गुण स्पष्टवादिता थी।[७]

सन् 1928 में श्री रामदास गौड़ का नाम संस्मरण लेखन के नाते लिया जा सकता है। इन्होंने श्रीधर पाठक, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' सम्बन्धी संस्मरण लिखे। पाठक जी से संबंधित संस्मरण अत्यंत रोचक है। इसमें लेखक के संपूर्ण व्यक्तित्व की झाँकी प्रस्तुत की है। इसके पश्चात् श्री अमृत लाल चक्रवर्ती के बालमुकुन्द सम्बन्धी संस्मरण 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुए हैं। इन संस्मरणों में चक्रवर्ती जी ने गुप्त जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के साथसाथ निजी अनुभवों पर आधृत - गुप्त जी के जीवन पर प्रकाश डाला है। इलाहचन्द्र जोशी ने भी अपने जीवन की कुछ घटनाओं को संस्मरणात्मक शैली में इसी वर्ष 'सुधा' पत्रिका में छपवाया। इन्होंने अपने बचपन की घटनाओं को 'मेरे प्राथमिक जीवन की स्मृतियाँ' शीर्षक के अन्तर्गत रोचक एवं आलोचनात्मक शैली में लिखा है। वृन्दावन लाल वर्मा ने भी इतिहास लेखन की शैली के 'कुछ स्मरण' शीर्षक से अपने जीवन सम्बन्धी घटनाओं एवं अनुभवों का वर्णन इसी पत्रिका में किया है।

सन् 1930 ई. में श्रीनिवास शास्त्री ने अपने जीवन पर अमिट प्रभाव छोड़ने वाली घटनाओं एवं सम्पर्क में आने वाले महान् व्यक्तियों का संस्मरणात्मक शैली में उल्लेख किया है। 1932 ई. में बनारसी दास चतुर्वेदी ने श्रीधर पाठक विषयक संस्मरण 'विशाल भारत' में प्रकाशित करवाया, जो अब उनके संस्मरण नामक संग्रह में संकलित है। सन् 1933 में श्रीयुत रामनारायण तथा श्रीयुत रूपनारायण पांडेय के संस्मरण प्रकाशित करवाये, जिनमें द्विवेदी जी के जीवन से सम्बन्धित कुछ घटनाओं का वर्णन है।

सन् 1934 में प्रो. चावलानी के सम्बन्ध में श्रीयुत धर्मवीर भारती एम.ए. के संस्मरण प्राप्त होते हैं। 1935 ई. में मोहन लाल महतो के डॉ. गंगानाथ झा विषयक संस्मरण 'माधुरी' में प्रकाशित हुए। सन् 1936 ई. में गोपाल राम गहमरी के साहित्यिक संस्मरण तथा मुंशी नवजादिक लाल के स्वर्गीय महादेव प्रसाद के कुछ संस्मरण सरस्वती में प्रकाशित हुए हैं।

सन् 1937 में गोपाल राम गहमरी ने मेरे संस्मरण नाम से अपने जीवन की कुछ घटनाओं को सरस्वती में प्रकाशित कराया है। ये संस्मरण गहमरी जी के साहित्यिक जीवन की घटनाओं के प्रकाशन हैं। सन् 1937 में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से सम्बन्धित कुछ घटनाओं एवं साहित्यिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। हिंदी साहित्य में तुलनात्मक समालोचना के आदि प्रवर्तक परम सिंह शर्मा ही

संस्मरण के भी आदि जनक माने जाते हैं। इन्होंने संस्मरण उद्यान को अपने सरस व्यक्तित्व का पुट देकर सजीव एवं मनोमुग्धकारी रूप प्रदान कर परवर्ती संस्करण लेखकों के लिए इस विधा की एक अक्षुण्ण एवं अखण्ड परम्परा का आरम्भ किया और आज यह संस्मरण वाटिका पुष्पित एवं पल्लवित हो रही है। इससे पूर्व यथार्थ संस्मरण लिखे जाते थे किन्तु उनमें वास्तविक संस्मरण की विशिष्टताओं का अभाव ही था। 1937 ईके लगभग श्रीराम शर्मा के संस्मरण . । इनके तीन संस्मरण संग्रह उपलब्ध होते हैं।उपलब्ध होते हैं'बोलती प्रतिभा' में इनके संस्मरण संग्रहित हुए हैं। यह पुस्तक 1937 में प्रकाशित हुई। इनके राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित संस्मरण सन् बयालीस के संस्मरण नामक पुस्तक में संग्रहित हैं।

स्वर्गीय परम सिंह शर्मा के पश्चात् संस्मरण साहित्य के प्रणेताओं एवं उन्नायकों में चतुर्वेदी जी का नाम उल्लेखनीय है। उनके दो संस्मरण संग्रह हैं - 'संस्मरण' एवं 'हमारे आराध्य'। कालक्रम की दृष्टि से यद्यपि ये काफी पीछे आते हैं, किन्तु महत्त्व की दृष्टि से वे हिंदी के प्रौढ़ और मंजे हुए संस्मरण लेखक हैं। इनके संस्मरण अत्यन्त कलात्मक एवं सजीव बन पड़े हैं। 'संस्मरण' में इन्होंने 21 व्यक्तियों के संस्मरण 251 पृष्ठों में जीवन के विविध क्षेत्रों में व्यक्तियों के साथ अपने संग-प्रसंग की कटु-मधुर स्मृतियों का अनुभूति चित्रण किया है। इनमें अधिकतर साहित्यकार हैं। इनके रेखाचित्रों में भी रेखाचित्रों के साथ-साथ संस्मरण विद्यमान हैं। इनके संस्मरणों में सभी अपेक्षित गुण उपलब्ध हैं । इसके साथ द्विवेदी युग में जगत बिहारी सेठ 'मेरी बढ़ी छुट्टियों का प्रथम सप्ताह' (1913), 'पाण्डुरंग' 'खान', 'वाशिंगटन', 'महाविद्यालय का संस्थापना दिनोत्सव' (1913), प्यारेलाल मिश्र, 'लन्दन का फॉग या कुहरा' (1905), काशी प्रसाद जायसवाल 'इंग्लैण्ड के देहात में महाराज बनारस का कुआँ' (1907) में महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सभा की सभ्यता' (1907) आदि द्विवेदी युग में लिखे संस्मरण साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

2. छायावाद युग में संस्मरण साहित्य का उद्भव और विकास -

छायावाद युग में संस्मरण लेखन में रामनाथ सुमन का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। उनके संस्मरणों का एक संकलन प्रकाशित है जिसका नाम है 'मैंने

स्मृति के दीप जलाये'। संकलन के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें लेखक ने अपने सम्पर्क के व्यक्तियों के सम्बन्ध में संस्मरण लिखे। इस संकलन में कुल 14 व्यक्तियों के संस्मरण हैं, जिनमें पुरुषों रामदास टण्डन, वृन्दावन लाल वर्मा, चतुरसेन यशस्वी, हनुमान पोद्दार, शिवपूजन सहाय, कृष्णदेव प्रसाद गोंड, सेठ गोविन्द दास पाण्डेय, बेचैन शर्मा 'उग्र', रामरथ बेनीपुरी, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' और विनाशंकर व्यास का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये संस्मरण भाषा एवं साहित्य के कारण आकर्षक बन पड़े हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा हिंदी संस्मरण लेखनों में अग्रणी हैं। उनके संस्मरणों के संकलन का नाम 'पथ के साथी' इस संकलन में कुल सात व्यक्तियों के संकलन हैं। कविन्द्र रविन्द्र, जयशंकर प्रसाद, मैथलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, सुभद्रा कुमारी चौहान, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और सियारामशरण गुप्त है।[८]

महादेवी वर्मा हिन्दी की सर्वोत्तम संस्मरण लेखिका हैं। हिंदी गद्य की ये अप्रतिम कलाकृति हैं। पद्य के साथसाथ गद्य के क्षेत्र में भी उनकी अनूठी देन है।- वे कवयित्री हैं और आलोचिका भी हैं एवं सफल संस्मरण लेखिका भी, इनके तीन संस्मरणात्मक गद्य संग्रह हैं 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' तथा 'पथ के साथी' क्षणदा में दो यात्रा संकलित है। 'स्वर्ग का एक कोना', 'सुई दो रानी' महादेवी के गद्य का शुद्ध रूप जीवन का स्पंदन, आत्मा का वृहत्कम्पन उनके संस्मरणों में ही देखा जा सकता है।

'अतीत के चलचित्र' इनका सर्वप्रथम संस्मरण संग्रह है। यह संग्रह 1941 में भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। कुछ आलोचकों ने इनके संस्मरणों को रेखाचित्र मानने का आग्रह किया है, किन्तु रेखाचित्र के आरम्भ में ही महादेवी लिखती हैं "समय पर जिन व्यक्तियों के सम्पर्क से मेरे चिन्तन को दिशा और संवेदना मिली है उनके संस्मरणों का श्रेय जिसे मिलना चाहिए उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं बता सकती।"[९]

'अतीत के चलचित्र' में महादेवी ने अनेक अनछुए चित्रों को उभारा है किंतु इनकी विशेषता यह है कि इन संस्मरणों के इन पात्रों में से सम्भवतः कम ही ऐसे पात्र हैं जो हमारे नित्यप्रति के जीवन में न आए हों। इन संस्मरणों में महादेवी की भावधारा जीवन के प्रति ममता, आस्था एवं सरलता से युक्त है।[१०]

इन संस्मरणों की विशेषता यह है कि इनमें समाज में उपेक्षित अप्रतिष्ठित हीन किंतु अपने मानवीय गुणों के कारण महान लोगों के व्यक्तित्व को संस्मरण का विषय बनाया गया है। इनका प्रत्येक पात्र इस तथ्य की मुँह की बोलती तस्वीर है।

इनका दूसरा संस्मरण संग्रह भारती 'स्मृति की रेखाएँ' 1943 में भारती भंडार इलाहाबाद में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में सात संस्मरण संग्रह है।

सेवा धर्म में हनुमान जी से स्पर्धा करने वाली भक्तिन, चीनी फेरीवाला, पर्वत पुत्र जगिया और धनिया, मेधावी बालक मन्नू और उसकी परिश्रमशीला माई, भाटवंशात्तीर्ण ठुकरी बाबा, स्वाभिमानिनी विविधा तथा वात्सल्यमयी गुंगिया। ये संस्मरण 'अतीत के चलचित्र' की भाँति प्रताड़ित एवं उपेक्षित मानवता के प्रति सहानुभूति का सन्देश है।

प्रत्येक पात्र का चित्र लेखिका ने अत्यन्त सहजता एवं मार्मिकता से अंकित किया है। पात्रों के चरित्रांकन की बाह्य-रेखाएँ स्पष्ट करने के साथसाथ उनके गुणों - तथा स्वभाव आदि का भी अंकन किया है। पहाड़ी कुली धनसिंह के बाह्य व्यक्तित्व एवं सजीव चित्रण है जिसे पढ़कर आँखों के सामने वह चित्र का ऐसा स्पष्ट मटोल कुछ पुष्ट शरीर वाले धनिया की आकृति भी -रूपाकार हो जाता है। गोल उसके स्वभाव के अनुरूप थी। विरल भूरी भौंहों की सरलरेखा और छोटी नाक की - कुछ नुकीली नोक उसकी सरलता का परिचय देती है और तेजस्विता का भी। का दाहिना कोना कुछ ऊपर की ओर खिंचा सा रहता है ओठों, जिससे उसके मुख पर मुल्काने का भाव स्थायी हो गया था। रंग की स्वच्छता और त्वचा की चिकनाहट से प्रकट होता था कि कुली जीवन की सारी कठोरता उसने अभी नहीं झेली है।[११]

पात्रों के व्यक्तित्व एवं चरित्र के अंकन के साथथ लेखिका ने उसकी सा-आर्थिक, सामाजिक तथा मार्मिक स्थितियों तथा विचारों का अंकन किया है। कुलियों का अंकन करते हुए लेखिका ने उसके दारिद्र्य का अत्यन्त मार्मिक अंकन किया है। कोई टाट का सिला विचित्र पैमाने पैजामा और फटे काले खुरदरे कम्बल का गिलाफ जैसा कुरता, गले में लटकाए, भालू के समान घूम रहा है। कोई कोपिनधारी तारतार फटा सूती कोटा पहने-, कमर के बोझ बाँधने की मोटी रस्सी लपेटे रूखे बालों को खुजलाता हुआ ही जैसा कांटेदार जन्तु जान पड़ता है। किसी

की कठिन एड़ी और ऐंठी फैली उंगलियों वाले पैर सड़क कूटने के दुर्मट से स्पर्श करते और किसी के स्वर रचित गूँज की खुरदरी घट्टी में सिकुड़ बंधकर पंजे की भाँति उत्पन्न करते हैं। ये मनुष्य है ऐसा हम अभ्यासवश ही समझते हैं, इनमें मनुष्य रूप पाकर नहीं।[१२]

'पथ के साथी' नामक इनका तृतीय संस्मरण संग्रह सन्-1956 में भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है। इनमें साहित्यिक जीवन के पथ के साथियों पन्त, निराला, गुप्त जी, सुभद्रा कुमारी चैहान एवं सियारामशरण गुप्त के संस्मरण से रचित है। लेखिका ने इन संस्मरणों में इन साहित्यिकों के साथ अपने निजी जीवन के संग-साथ की मधुर स्मृतियों को संजोया है। इनमें विभिन्न लेखकों के विभिन्न एंगलों, विभिन्न पोजों और मूडों में क्लोजअप हैं, जिनमें एक-एक रेखा बोल उठी है।[१३] प्रारम्भिक पृष्ठों में 'प्रणाम' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया।

लेखिका का इन व्यक्तियों से सम्बन्ध भी इन संस्मरणों में प्रत्यक्षतः स्पष्ट हो जाता है। सुभद्रा कुमारी चौहान से लेखिका अपने प्रारम्भिक जीवन में प्रभावित हुई हैं, उनके साथ अपने घनिष्ठ सम्बन्ध की स्मृति लेखिका ने इन शब्दों में संजोयी है -

शैशव की चित्रकला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक सम्बन्ध गहरा होता है, उनकी रेखाएँ और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं, पर जिनसे ऐसा सम्बन्ध नहीं होता वे फीके होते होते इस प्रकार की स्मृति से धुल जाते हैं। दूसरों के संस्मरण दिलाने पर भी उनका संस्मरण कठिन हो जाता है। मेरे अतीत की चित्रशाला में बहिन सुभद्रा से ही मेरे रूप-स्वरूप का चित्र पहली कोटि में ही रखा जा सकता है। क्योंकि इतने वर्षों के उपरांत भी उसकी सब रंग-रेखाएँ अपनी सजीवता में स्पष्ट है ।[१४]

लेखिका को बहिन सुभद्रा, जिसकी भावना की दीप्ति ''संचारिणी दीप शिखेव'' की भाँति असाधारण है, इसका चित्र बनाना कुछ सहज नहीं जान पड़ता, फिर भी जो रेखांकन लेखिका ने किया है, वह अपने आप में कितना मार्मिक एवं सजीव है। 'मझोले कद' तथा उस समय ही देहयिष्टी में ऐसा कुछ उग्र या रौद्र नहीं था, जिसको हम वीर गीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्वांत आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमाकर गढ़े हुए से होंठ और दृढ़ता सूचक ठुड्डी, सब कुल मिलाकर एक अत्यन्त

निश्चल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे। पर उस व्यक्तित्व के भीतर जो बिजली का छन्द था, उसका पता तो तब मिलता था जब उनके और उनके निश्चित लक्ष्य के बीच में कोई बाधा आ उपस्थित होती थी।[१५]

मैथिली शरण ने भी उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया है। सियारामशरण गुप्त से लेखिका का भाईबहिन का सम्बन्ध है। छायावाद के कवियों पन्त-, निराला और प्रसाद से लेखिका विशेषतः प्रभावित है। प्रसाद के व्यक्तित्व को लेखिका ने स्वयं कवि के ही शब्दों में 'हिमाद्री तुंग श्रृंग' में अभिव्यक्त किया है। पंत के स्वभाव में लेखिका कोमलता एवं सौकुमार्य के निर्झर के दर्शन करती है और इनसे परिचय की कहानी सचमुच विचित्र है, जिसे स्मरण कर लेखिका को यदि हँसी आ जाती है, तो पाठक भी इसे पढ़कर हँसे बिना नहीं रह सकता।[१६]

इन संस्मरणों में स्वयं लेखिका का व्यक्तित्व भी यत्रतत्र सन्नि-हित है। निराला सम्बन्धी संस्मरण में लेखिका का उस महान साहित्य साधन के प्रति करुण एवं निस्सीम स्नेह स्पष्ट है। लेखिका के हृदय की कोमलता एवं निश्चलता निराला सम्बन्धी संस्मरण की आरम्भिक पंक्तियों में स्पष्ट हो उठी है, जब वे कहती हैं एक युग बीत जाने पर भी मे -री स्मृति से एक घटा भरी अश्रुमुखी सावनी पूर्णिमा की रेखाएँ नहीं मिट सकी हैं। उन रेखाओं के उजले रंग न जाने किस व्यथा से गीले हैं कि अब तक सूख नहीं पाये। उड़ना तो दूर की बात है, उस दिन मैं बिना कुछ सोचे भाई निराला जी से पूछ बैठी थी आपको किसी ने राखी नहीं - बाँधी? अवश्य ही उस समय मेरे सामने उनकी बन्धन शून्य कलाई और पीले कच्चे सूत की ढेरों राखियाँ लेकर आने वाले यजमान खोजियों का चित्र था। पर अपने प्रश्न के उत्तर ने मुझे क्षणभर के लिए चौंका दिया कौन बहिन ऐसे भुक्खड़ को - भाई बनायेगी?[१७]

इन पंक्तियों में अकिंचनता एवं अगली पंक्तियों में लेखिका के उनके साथ निश्छल सम्बन्ध की स्थापना एवं उसके निर्वाह की अत्यन्त सजीव एवं आकर्षक स्मृति है। पंक्तियाँ लेखिका की करुणा, ममता एवं निश्छलता के समावेश से अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी हैं एवं लेखिका के करुण कोमल व्यक्तित्व की परिचायक हैं।

संस्मृत व्यक्तियों के इन चित्रों के अंकन में लेखिका ने यत्रतत्र यथा बजट - त किये हैं। इसके अतिरिक्त देशकाल युग एवं परिस्थितियों के भी संकेत प्रस्तु

किसी स्थल के सम्बन्ध में लेखिका ने अपनी प्रतिक्रिया -वर्णन के अन्तर्गत किसी भी प्रस्तुत की है।

आकाश को नीले कपड़े की चीरों में विभाजित कर देने वाली काशी की गलियों में प्रवेश कर मुझे सदा ऐसा लगता है, मानो मैं किसी विशालकाय अजगर के उदर में घूम रही हूँ, जिसने अपनी साँसों से मुझे ही नहीं कुछ दुकानों को भी अपने भीतर खींच लिया है।[१८]

रामवृक्ष बेनीपुरी हिंदी के अनुपम संस्मरण लेखक हैं। संस्मरण विधा को विकसित करने वाले गणमान्य लेखकों में इनका नाम गणनीय है। इनके कई संस्मरण संग्रह हैं, 'माटी की मूरतें', 'मील का पत्थर', 'जंजीरें', 'लाल तारा'। 'गेहूँ और गुलाब' इनके व्यंग्यात्मक संस्मरणों का संग्रह है, 'पैरों में पंख लगाकर' में आपके यात्रा संस्मरणों का संकलन है। ये संस्मरण कलात्मक एवं मार्मिक बन पड़े हैं।

'गेहूँ और गुलाब' इनके व्यंग्यात्मक संस्मरणों का संग्रह है। यह 1957 में प्रकाशित हुआ था। इसमें 20 संस्मरण हैं। बचपन, पनिहारिन, नींव की ईंट, पुरुष और परमेश्वर, छब्बीस साल बाद अत्यंत हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक संस्मरण है। सभी संस्मरण जीवन्त एवं लघु होते हुए भी रोचक एवं स्वाभाविक हैं। हास्य एवं व्यंग्य की छटा ने इस संग्रह को और भी सफल एवं रोचक बना दिया है।

इन संस्मरणों में 'छब्बीस वर्ष बाद' में तो पुनः स्मृति का चित्रण कुछ इतना व्यापक एवं मार्मिक है कि प्रायः सभी पाठकों के हृदय में कुछ स्मृतियाँ जागृत हो उठें। भाषा प्रायः सरस एवं प्रवाहमय है। कहीं-कहीं भावुक कवि की कवित्वमय भाषा के दर्शन होते हैं। कतिपय स्थलों पर लेखक ने देशज शब्दों को साहित्यिक रंग देने का प्रयास किया है। चिकने दुरदुर पत्तों पर[१९] हिलारे हहास है[२०] , इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

इस संकलन के संस्मरणों में अत्यन्त भाव-संकुलता लाने का प्रयास किया है। यत्र-तत्र प्रतीक शैली का प्रयोग किया है। गेहूँ बनाम गुलाब दोनों ही क्रमशः शारीरिक आवश्यकता के प्रतीक हैं। लेखक ने अनावश्यक दृश्यों या वर्णनों से बचने का पूरा ध्यान रखा है। शैली यद्यपि वर्णनात्मक ही है।

'माटी की मूरतें' नामक संस्मरण संग्रह में केवल ग्यारह संस्मरण थे। किंतु बाद के दूसरे संस्मरण (1953) में रजिया का एक और संस्मरण जोड़ दिया गया है, जिससे संस्मरण 12 हो गये हैं। 'माटी की मूरतें' में बेनीपुरी जी ने ग्रामरत्नों -

को संस्मर्ण्य विषय बनाया है। ये रत्न हैं रजिया, बलदेव सिंह, सरजू भैया, मंगर, रूपा की आजी, देव, बाल गोविन्द, भौजी, परमेसर, बैजू मामा, सुभान खाँ और बुधिया। इन सभी पात्रों का अंकन लेखक ने इस कलात्मकता के साथ किया है कि यह मूरतें सहज ही सजीव रूप धारण कर आँखों के सम्मुख आ खड़ी होती हैं, मानो यह अपनी कहानी आप कहती हैं।

सचमुच ये मूरतें जिन्दगी के नजदीक ही नहीं हैं, जिन्दगी में समाई हुई हैं। इसलिए जिन्दगी के हर पुजारी का सिर इनके नजदीक आप ही आप झुका है। बौद्ध और रोमन की मूर्तियाँ दर्शनीय हैं, वन्दनीय हैं, तो माटी की ये मूरतें भी उपेक्षणीय नहीं।

सचमुच ये मूरतें जिन्दगी के नजदीक ही नहीं हैं, जिन्दगी में समाई हुई हैं। इसलिए जिन्दगी के हर पुजारी का सिर इनके नजदीक आप ही आप झुका है। बौद्ध और रोमन की मूर्तियाँ दर्शनीय हैं, वन्दनीय हैं, तो माटी की ये मूरतें भी उपेक्षणीय नहीं।[२१]

भाषा में बीच-बीच में उर्दू के शब्दों का सुन्दर ढंग से प्रयोग किया है, मिलनसार[२२] , जिन्दादिल[२३] , दरियादिली[२४] इत्यादि शब्द इसका उदाहरण हैं। संक्षेप में 'माटी मी मूरतें के संस्मरणों में संस्मरण के सभी अपेक्षित गुण विद्यमान हैं। माटी की इन मूरतों में ग्रामीण जीवन की सरलता, अल्हड़ता, अखण्डता, ममता, करुणा आदि की सुन्दर झाँकियाँ समाहित हैं। यह सत्य और वास्तविकता के इस सौन्दर्य की पराकाष्ठा का आधार है। गुप्त जी के शब्दों में 'माटी की मूरतें' लेखनी के स्पर्श से ही सोने की हो गई।[२५] इनकी कला में यौवन है और भाषा में ओज है।

'जंजीरें और दीवारें' में भी इनके 30 संस्मरण संकलित हैं। इनमें लेखक के जेल जीवन का संस्मरण भी संकलित है। यह संस्मरण अत्यन्त मार्मिक बन पड़े हैं। वस्तुतः बेनीपुरी जी हिन्दी संस्मरण साहित्य के अमर आधार-स्तम्भ हैं। आपके संस्मरण व्यक्तित्व की आभा से मण्डित हैं। लेखन में अपने संस्मरणों के माध्यम से पाठकों का संस्मृत व्यक्तियों से परिचय करा दिया है। इन संस्मरणों में लेखन की अनुभूतियों की मार्मिक और सजीव अभिव्यक्ति मिलती है, जो पाठक के मन को आह्लादित करती है, इनमें कहीं विभोर हो पाठक झूमने लगता है तो कभी हर्षाप्लावित हो उठता है। कभी पात्रों के दुःख देख पाठक वितृष्ण हो उठता है, कहीं किसी के प्रति कटुता से तो कहीं सहानुभूति से भर उठता है। इसके अतिरिक्त इनके संस्मरणों को उद्देश्यहीन भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ये पाठक को

अपनी संस्कृति, इतिहास एवं परम्पराओं का ज्ञान कराते हैं एवं उनके साथ व्यंग्यात्मक भी हैं।

सन् 1960 में उग्र जी ने अपने संस्मरण 'अपनी खबर' शीर्षकान्तर्गत प्रकाशित करवाए। उनके संस्मरण आत्मकथात्मक हैं। लेखक ने अपने जीवन के प्रारम्भिक 22 वर्ष का संस्मरणात्मक शैली में वर्णन किया है। भाषा सजीव होने से वर्णन रोचक बन पड़े हैं। किसी घटना, स्थल या व्यक्ति इत्यादि का वर्णन करने के बाद वे अन्त में अपनी राय देते हैं, यह उनकी विशेषता है। उन्होंने अपनी जन्मभूमि के वर्णन में इस शैली को अपनाया है।

रामचन्द्र भगवान अयोध्या नगरी में पैदा हुए थे, जो पवित्र तीर्थ मानी जाती है। मैं चुनार में पैदा हुआ, जो काशी के कलेजे और गंगातट पर होकर भी त्रिशंकु की साया में होने से तीर्थ नहीं है, इतना ही नहीं तीर्थ का पुण्यहरण करने वाला भी है। फिर भी चुनार मुझे तीर्थ और अयोध्या और साकेत से भी अधिक प्रिय है।[२६]

इसके अतिरिक्त जिनजिन व्यक्तियों से इनका निकट संपर्क स्थापित हुआ है-, उनका भी इन्होंने सजीव एवं सशक्त भाषा में रोचक चित्रण प्रस्तुत किया है।

स्वाधीनता अंक में ही वृंदावन लाल वर्मा ने कुंडार के जंगल में डाकू शेरसिंह ने मुझे मिलने बुलवाया, शीर्षक संस्मरण लिखा है, जो उनके उपन्यास 'गढ़ कुंडार' के ऐतिहासिक पात्र सागर सिंह के पौत्र से संबंधित है। वर्मा जी ने उस आमंत्रण और अपनी स्थिति का रोचक वर्णन किया है। [२७]

सेठ गोविन्द दास का आत्मनिरीक्षण अपने विषय का (एक आत्मकथा) महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। कृति के नाम के अनुरूप ही उन्होंने अपना जीवनवृत्त ही नहीं लिखा है, अपने अन्तर्बाह्य जीवन की स्पष्ट झाँकी भी प्रस्तुत की है। अपने गुण-दोष, जीवन के समतल तथा ऊबड़खाबड़ प्रसंगों और उपलब्धियों का उन्होंने - जमकर विवेचन किया है। सन्1948 में प्रकाशित यह आत्मकथा प्रयास, प्रत्याशा और नियताप्ति शीर्षक तीन भागों में लिखी है और लगभग हजार पृष्ठों की है। लेखक के सम्पूर्ण सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक जीवन का विस्तार इसमें समाहित हो गया है। गोविन्द दास जी का अन्य एतद् विषयक ग्रंथ 'स्मृतिकण' सन् 1949 में प्रकाशित हुआ, जिसमें अपने जीवनक्रम को प्रभावित करने वाले क्षणों या सम्पर्क में आये हुए प्रभावपूर्ण व्यक्तियों और अपने अनुभवों का संस्मरण

प्रस्तुत किया गया है। 'स्मृतिकण' के प्रसंग मार्मिक एवं वर्णन की विदग्धता से युक्त है। [२८]

पं. विनोद शंकर व्यास कृत 'दिन और रात' का प्रकाशन वर्ष है सन् 1940 ई.। इसमें प्रसाद, प्रेमचन्द, उग्र, निराला, जिगर, बदरीनाथ भट्ट और रामलाल दास के अन्तर्गत संस्मरण लिखे हैं। राखालदास संबंधी संस्मरण 'हंस' जनवरी 1931 के विशेषांक में पहले-पहल छपा था। व्यास जी के व्यापक संपर्क एवं अनुभवों पर आधारित और उनकी लेखन शैली की सहज उन्मुक्तता तथा निःसंकोच स्पष्टवादिता से सम्बद्ध संस्मरण अलबेले बन पड़े हैं। प्रसाद और उनके समकालीन (1960) में प्रसाद जी और उनके समसामयिकी प्रतिष्ठित साहित्यकारों के रोचक संस्मरण उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में प्रस्तुत किये हैं।

राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त की आत्मकथा में अनेक व उनकी विशिष्ट शैली में अनोखे नमूने देखने को मिले हैं। पूर्वार्द्ध के कुछ प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने अपने जन्म आदि का वृत्तान्त प्रस्तुत किया है।[२९] इनमें उनके सुदीर्घ साहित्यिक जीवन का सविस्तार वर्णन और महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का समावेश या ऐतिहासिक दृष्टि का सुन्दर मेल मिलता है। उत्तरार्द्ध में उन्होंने अतीत को स्मृति में सहेजते हुए संकेत किया है पचास वर्ष से ऊपर हो गये जब मैंने हिंदी के साहित्य क्षेत्र में प्रवेश - किया था। तब तक पद्य में अधिकतर ब्रजभाषा का ही प्रचार था। और तब से बीतेबदलते युग जीवन का स्वानुभूत इतिवृत्त इन्होंने आत्मकथा में अंकित किया - है।[३०]

'साठ वर्षएक रेखांकन :' सुमित्रानंदन पंत की इस वर्ष प्रकाशित श्रेष्ठ आत्मकथात्मक कृति है। इसमें आकाशवाणी से प्रकाशित उनकी चार वार्ताएँ संग्रहित हैं। पंत जी ने इन्हें निबन्ध की संज्ञा देकर भी स्पष्ट लिखा है कि इन निबंधों में मैंने अत्यल्प रूप में अपने साहित्यिक जीवन के क्रम-विकास की रूपरेखा भर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मेरे साहित्य को हृदयंगम करने में मेरे मानसिक जीवन प्रवाह के ये पथ-संकेत संभवतः सहायक हो सकें।[३१] स्पष्ट ही कविवर पंत की साहित्यिक साधना का जीवन विकास के सन्दर्भ में अध्ययन और कवि के काव्यमय जीवन की कथा-प्रस्तुति इस पुस्तक की उपलब्धि है।

पंत जी उल्लेख में आत्मिका में अपने जीवन के इतिवृत्त तथा कूर्मांचल में कौसानी की स्मृति की प्रस्तुति को संस्मरणात्मक यथा तथ्यता प्रमाणित होती है। इस प्रकार आत्मकथा अथवा संस्मरण साहित्येतिहास में उल्लेखनीय इन रचनाओं का महत्त्व प्रतिष्ठापित हो जाता है। विकाससूत्र और अंतः संघर्ष के एक महत्त्वपूर्ण - शिक्षण के क्षणों का चित्रण किया है। -मोड़ पर खड़े कवि के अंतर्द्वन्द्व और आत्म

सन्1921 के आन्दोलन में अपने मँझले भाई के कहने पर मैंने कॉलेज छोड़ दिया था। सवेरे का समय था, पुराने आनंद भवन अब स्वराज्य भवन में स्कूल कॉलेज के छात्रों की अपार भीड़ थी, भाई ने मुझे ले जाकर पहली पंक्ति में खड़ा कर दिया।[३२]

सन् 1921 से 1931 तक के इस समय को स्वयं पंत जी ने आत्मशिक्षण - का युग कहा है और इसी संदर्भ में उन्होंने उस युग के संबंध में रची'आत्मिका' नामक संस्मरणात्मक रचना का उल्लेख करते हुए उससे कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की हैं।

वह पहिला ही असहयोग था, बापू के शब्दों से प्रेरित,
विदा छात्रक्षित।जीवन को दे मैं करने लगा स्वयं को शि-
बाहर था नवयुग संघर्षण; भीतर अंतरमन का मंथन,
पथदर्शन का केवल ईश्वर पदनत करता था आरोहण।-

अज्ञेय जी 'आत्मनेपद' 1960 ई. में अनुभूति और चिंतन की झलक मिलती है, जो आत्माभिव्यक्ति परक और आत्मकथात्मक हैं। बुद्धिजीवी की जीवनानुभूतियों के अनुरूप ही इसके संस्मरण प्रसंग चिंतन प्रधान हैं।

निर्द्वंध का संस्मरण निराला जी के गाँव गठ कोला में हिंदू फरवरी .सा) 1963) एक उल्लेखनीय रचना है।

त्रिपथगा मार्च 1963 में प्रकाशित संथाली वनस्थली की एक शाम में ठाकुर प्रसाद सिंह ने मार्मिक संस्मरण प्रस्तुत किया है। इसमें एक साथ दृश्य काव्य का आनंद संस्मरण की आत्मीयता तथा यात्रा विवरण का विस्तृत दृष्टि, विस्तार पूर्ण गतिशीलता समाविष्ट है। संपूर्ण संस्मरण लेखक की अपनी अनुभूति के अनुरूप ही रंगीन रेखाओं में अंकित है।

'हंस' के फरवरी और मार्च 1935 के अंकों में मुंशी प्रेमचन्द ने 'दक्षिण भारत में हमारी हिंदी प्रचार यात्रा' शीर्षक संस्मरण लिखा, जो यात्रा विवरणात्मक है।

शीर्षक निर्दिष्ट उद्देश्य से ही सम्पन्न यह यात्रा विस्तृत एवं विविध अनुभवों से सम्पन्न सिद्ध हुई, जिसका विशद वर्णन दो किश्तों में प्रकाशित हुआ। [33]

महाप्राण निराला 'सरोज स्मृति' में अपनी पुत्री के प्रति शोकांजलि अर्पित करते हुए न केवल उसे स्मरण किया है, बल्कि अपने दुःखमय जीवन की कहानी कही है। 'सरोज स्मृति' एक श्रेष्ठ गीत ही नहीं बल्कि एक मार्मिक संस्मरण भी है। इसके साथ ही छायावाद युग में श्री राम शर्मा, 'शिकार' (1936), महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'विज्ञानाचार्य वसु का विज्ञान मंदिर' (1926), शिवप्रसाद गुप्त)1934), स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, 'मेरी जर्मन यात्रा' (1926), 'यात्री मित्र' (1936), गणेश नारायण सोमानी, 'मेरी यूरोप यात्रा' (1932), राहुल सांकृत्यायन, 'तिब्बत में सवा वर्ष' (1933), 'मेरी यूरोप यात्रा' (1935), प्रो0 मनोरंजन, 'उत्तराखण्ड के पथ पर' (1936), 'हमारी विलायत यात्रा' (1926) [34] आदि छायावाद युग में लिखे गये संस्मरण साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

3. छायावादोत्तर युग में संस्मरण साहित्य का उद्भव व विकास -

छायावादोत्तर काल में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' संस्मरण लेखन के सिद्धहस्त कलाकार हैं। 'जिन्दगी मुस्कराई', 'बाजे पायलिया के घुँघरू', 'महके आँगन चहके द्वार' इनके प्रमुख संस्मरण संग्रह हैं। 'जिन्दगी मुस्कराई' 1954 ई0 की संस्मरणों की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक घोषित हुई थी। इसमें 39 विशिष्ट संस्मरण संकलित हैं। रामधारी सिंह दिनकर की 'लोकदेव नेहरू' तथा संस्मरण 'चेतना के बिम्ब' नाम से प्रकाशित हैं। जैनेन्द्र कुमार 'ये और वो' पुस्तक में संस्मरण हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'ज्यादा अपनी कम पराई' में तीनचार अच्छे संस्मरण लिखे हैं।-

इनके अतिरिक्त पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सियारामशरण गुप्त, विष्णु प्रभाकर, आचार्य विनयमोहन शर्मा आदि लेखकों ने भी संस्मरण लिखे हैं। देवेन्द्र सत्यार्थी, विष्णु प्रभाकर, चतुरसेन शास्त्री, शान्तिप्रिय द्विवेदी, सेठ गोविन्ददास, ओंकार शरद, विनोदशंकर व्यास, रघुवीर सहाय ने भी अपने सम्पर्क में रहने वाले साहित्यकारों और महान् व्यक्तियों के विषय में संस्मरण लिखे हैं।

प्रभाकर जी का नाम उच्चकोटि के संस्मरण लेखकों में लिया जाता है। इन्होंने अनेक सुन्दर संस्मरणों की रचना की है। इनके कई संस्मरण संग्रह मिलते

हैं -'भूले हुए चेहरे', 'जिन्दगी मुस्कराई', 'बाजे पायलिया के घुंघरू', 'माटी बन गई सोना' तथा 'दीप जले शंख बजे'। इनके संस्मरणों के शीर्षक बड़े विचित्र रहे हैं - 'उस बेवकूफ ने मुझे दाद दी', 'झाड़ देना भी कला है'।

'भूले हुए चेहरे' में उनके रेखाचित्रात्मक संस्मरण संकलित हैं।

'जिन्दगी मुस्कराई' में 39 संस्मरण संकलित हैं। यह संस्मरण छोटेछोटे - सजीव एवं स्फूर्तिदायक हैं। सभी संस्मरण एक से एक बढ़कर प्रेरणादायक एवं सुरुचिपूर्ण हैं। इनका यह संग्रह 1954 की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानी गई है।[३५] आपके संस्मरणों में वर्णित व्यक्ति के रूप और स्वभाव तथा लेखक के साथ उसके निजी संसर्ग की अनुभूतियाँ साकार हो उठती हैं। इन सभी संस्मरणों में संस्मृत व्यक्ति को अन्तः एवं बाह्य व्यक्तित्व के सभी पहलुओं पर भी झलक मिल जाती है।

इनका 'बाजे पायलिया के घुंघरू' नामक संस्मरण संग्रह 1957 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में 38 संस्मरण संगृहित हैं। संस्मरणों के शीर्षक अत्यन्त विचित्र, रोचक एवं हास्य-व्यंग्यपूर्ण हैं - 'झेंपो मतरू रस लो' , 'छोटा सा पान दान' , 'नन्हा सा नाला' , 'जी वे घर में नहीं हैं' , जैसे छोटे-छोटे किंतु व्यंग्यपूर्ण शीर्षक उनके विनोदी स्वभाव के परिचायक हैं। ये छोटे-छोटे प्रेरणादायक संस्मरण अत्यन्त ललित हैं।

भाषाशैली सरस-, प्रवाहमय एवं प्रभावोत्पादक है। सभी संस्मरण विषय एवं भाषाशैली दोनों दृष्टियों से सफल एवं सरस हैं।-

उद्देश्य की दृष्टि से भी इन संस्मरणों को सफलता प्राप्त है प्रायः सभी - संस्मरणों में लेखक का कुछ न कुछ उद्देश्य है, किसी न किसी समस्या को उठा कर उसके लिए कुछ समाधान अथवा सुझाव प्रस्तुत किया गया है। [३६]

दिनकर जहाँ राष्ट्रकवि हैं, वहीं सफल गद्यलेखक भी हैं। संस्मरण साहित्य में - आपका पदार्पण सन्1995 में 'लोकदेव नेहरू' ग्रंथ से हुआ और सफलतापूर्वक एक अन्य रचना 'संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ' भेंट की।

'लोकदेव नेहरू' में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू से लेखक के सम्बन्धों का वर्णन है। घटनाओं का चित्रण आलोचनात्मक दृष्टि से हुआ है। 'संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ' में अधिकांश साहित्यिकों के संस्मरण हैं और अन्त में श्री लालबहादुर शास्त्री और डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। इस पुस्तक के संस्मरण डायरी शैली में हैं।

भाषा पर दिनकर जी का अप्रतिम अधिकार है। कवि हृदय के संस्मरणों में भावात्मकता को प्रश्रय दिया है। फलतः इनके संस्मरण सजीव और प्रभावपूर्ण बने हैं। [३७]

हिन्दी संस्मरण साहित्य में जैनेन्द्र का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने 1954 में 'ये और वे' शीर्षक से अपने संस्मरण प्रकाशित करवाए। इस पुस्तक में 12 संस्मरण हैं, इनमें मैथिलीशरण गुप्त तथा प्रेमचन्द विषयक संस्मरण तो अत्यन्त कलापूर्ण एवं रोचक बन पड़े हैं।

इनके संस्मरणों की मुख्य विशेषता यह है कि इन्होंने अपने संस्मरण नायकों के अन्तर और बाह्य व्यक्तित्व को साथसाथ अंकित किया है। महात्मा भगवानदीन--विषयक संस्मरण का उद्धरण उल्लेखनीय है

''उनका जीवन स्फूर्ति से और कर्म से भरा रहा है। आडम्बर और आकांक्षा जैसी वस्तु उनमें नहीं। परिणाम यह है कि ऊँचीनीची नाना परिस्थितियों में -रहकर भी वह अपनेपन से दूर नहीं गए हैं। सदा अतिशय सहज सरल बने रहे हैं। दुनियादारी एक क्षण भी उन पर ठहर नहीं सकी है, उनसे एकदम अलग उतरी दिखाई देती है। [३८]

अश्क जी का नाम उच्चकोटि के संस्मरण लेखकों की श्रेणी में आता है। इनके तीन संस्मरण संग्रह में 'रेखाएँ और चित्र', 'मण्टो मेरा दुश्मन' तथा 'ज्यादा अपनी कम पराई' संस्मरण उपलब्ध है।

अश्क जी एक लब्धख्यात उपन्यासकार एवं कथाकार हैं। अतः इनके संस्मरणों में कथात्मक शैली के दर्शन होते हैं -

''बातें करते हम एक किसान की झोंपड़ी के पास से गुजरे। करते-वह झोंपड़ी पगडंडी के तनिक नीचे, खेतों के इस छोर पर बनी थी। किसान मटर या सेम की छीमियाँ टोकरी में भर रहा था। होमवती जी ने तनिक रुककर उससे भाव पूछा, 'क्यों भइये कै सेर दी है?' वहाँ टोकरी पर झुकेझुके-, बिना हमारी ओर देखे उसने पत्थरसा उत्तर फेंका-, ग्यारह आने।'' [३९]

भाषा सरल है, यद्यपि कहीं कहीं रवायतों-, [४०] मुन्तकिल [४१], आरजुओं, तरजुमानी, अदीव जैसे उर्दूव्यंग्यात्मक है और -फारसी शब्दों का प्रयोग किया है। शैली हास्य-दो संस्मरणों में कथात्मक।

कहीं अपने लेखों में उन्होंने एक तटस्थ आलोचक की भाँति समस्यात्मक विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं तो कहीं संस्मरणों में कथाकार की सी शैली में बातें करते हुए चले हैं, तो दूसरी ओर 'कलम घसीट' पहाड़ी का प्रेममय संगीत में अपने अनुभवों को, आँखों देखे विवरणों को उन्होंने अत्यन्त मार्मिक एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है समीक्षा करते हुए भी उन्होंने अत्यन्त - व्यंग्य का -बीच में अनुस्यूत हास्य-बीच - सहृदयतापूर्ण एवं रोचक ढंग अपनाया है पुट भाषा एवं शैली को सशक्त तथा रचना को अत्यन्त प्रभावोत्पादक, रोचक, सरस एवं कलात्मक बना देता है। हर दृष्टि से विवेच्य कृति कलापूर्ण एवं मार्मिक बन पड़ी है। 'मण्टो मेरा दुश्मन' इनकी एक अन्य संस्मरणात्मक कृति है। यह पुस्तक 1956 में प्रकाशित हुई थी। [४२]

हिंदी के संस्मरण लेखकों में द्विवेदी का नाम अत्यन्त श्रद्धा से लिया जा सकता है। इनके संस्मरण हिंदी संस्मरण साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इनकी दो संस्मरणात्मक रचनाएँ उपलब्ध हैं -'पथ चिह्न' एवं 'परिव्राजक की प्रजा'।

'परिव्राजक की प्रजा' को द्विवेदी जी ने स्वयं 'आपबीती' बताया है, जिसमें जग बीती का समावेश स्वतः ही हो गया है। इस पुस्तक के छोटेछोटे संस्मरणों में - की आत्मकथा संजोयी हुई मिलती है। द्विवेदी जी के हमें द्विवेदी जीपिता संन्यासी हो गये थे। उन्हीं परिव्राजक की प्रजा अर्थात् संतान की कथा इन संस्मरणों का विषय है।

इस पुस्तक में दो ही व्यक्ति प्रमुख हैं स्वयं शांतिप्रिय द्विवेदी तथा दूसरी - हिन कलावती करुणा की सजल मूर्ति उनकी बाल विधवा बड़ी बहिन। यह बड़ी ब एवं मूर्तिमयी तपस्या है। उस बाल विधवा ने बचपन से ही दुःखों को झेला, अपनी आँखों के सामने और वह भी अत्यंत अल्पायु में माँबाप-, छोटी बहिन और दो भाइयों की मृत्यु का कष्ट देखा, माँ की मृत्यु पर तो बालक मुच्छन की (शंतिप्रिय) उसने शिशुवत बालक मुच्छन - एकमात्र संरक्षिका हो जाती हैका पालनपोषण - अतः कहीं वे उसे - किया। उस बहिन के प्रति द्विवेदी जी की अत्यन्त श्रद्धा है - मूर्तिमती श्रद्धा कहकर स्मरण करते हैं तो कहीं उसे मीरा से उपमित करते हैं तो कहीं साक्षात् अन्नपूर्णा सी मान लता से उसकी तुलना करते हैं-कहीं कल्प उसकी अर्चना करते हैं। लेखक ने उसे एक परिश्रमी, सुरुचिपूर्ण आचारविचार का - अत्यंत ध्यान रखने वाली तथा धर्मभीरू स्त्री के रूप में चित्रित किया है।[४३]

सन् 1946 में प्रो इन्द्र विद्यावाचस्पति कृत .'जीवन की झाँकियाँ' तीन खंडों में प्रकाशित हुईं। इसमें उन्होंने अपने संस्मरण ही लिखे हैं, जो आत्मकथात्मक भी हैं। विस्तृत जीवन के बहुविध जीवनानुभव और व्यापक संपर्कों का प्रत्यक्ष दृश्य वर्णन इसमें अनुपम है। लेखक की प्रौढ़ भाषा शैली से ग्रंथ की साहित्यिकता निखर उठी है।

देशरत्न डॉ प्रसाद कीराजेन्द्र .'आत्मकथा' का प्रथम संस्करण स्वतंत्रता प्राप्ति के वर्ष सन् 1947 के जनवरी महीने में प्रकाशित हुआ। इसका प्राक्कथन वल्लभभाई पटेल ने लिखा है। आत्मकथा पहले ही लिखी जा चुकी थी, लेकिन प्रकाशन के समय तक की घटनाओं का समावेश मूल पुस्तक कथा परिशिष्ट में कर दिया गया है। सन् 1947 में प्रकाशित इसके दूसरे संस्करण में भूमिका आदि के प्रारंभिक अंश और मूल आत्मकथा को मिलाकर कुल 16+748 पृष्ठ थे और 1962 में प्रकाशित तीसरे संस्मरण तक इस ग्रंथ की पृष्ठ संख्या बढ़कर 16+853 हो गयी। [४४]

देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा प्रस्तुत 'धरती गाती है (अध्ययन - एक लोकगीत)' के अंतर्गत लोकांचलों में व्यतीत जीवन की मार्मिक अनुभूतियाँ अंकित हुई हैं। 'विशाल भारत', 'माडर्न रिव्यू', 'एशिया' आदि में पूर्वतः प्रकाशित लेखों के आधार पर या उन्हीं के संकलन के रूप में यह पुस्तक पहली बार 1948 में प्रकाशित हुई। वस्तुतः इसमें लोकगीतों के संचयन के संस्मरण हैं, जो आत्मानुभूत हैं और इसीलिए आत्मकथात्मक हैं। [४५]

सत्यार्थी जी की 'रेखाएँ बाल उठीं' सन् 1941 में प्रकाशित हुई। इसमें विविध विषयों की सामग्री का समावेश दृष्टिगत होता है, किन्तु स्वयं लेखक ने उन्हें निबंध कहा है। परन्तु इसमें अधिकांश संस्मरण चित्र है, रेखाचित्र से इनकी प्रायः भिन्नता इस बात में है कि चित्र की समग्रता अथवा मूल्यवत्ता को उभारने के आग्रह की अपेक्षा इनमें स्मरणीयता प्रमुख है। [४६]

शान्तिप्रिय द्विवेदी के संस्मरण और उनकी आत्मकथा 'पथचिह्न' और 'परिव्राजक की प्रजा' में सुनियोजित और लेखक के शब्दों में यह आत्मकथा आप-बीती जगबीती के रूप में सबकी कथा बन गयी है।

यही मेरा, इनका सबका स्पंदन

हास्य से मिला हुआ क्रंदन

यही मेरा, इनका, उनका, सबका जीवन। [४७]

अर्थात् अतिशय संवेदनशीलता से समन्वित होकर इतिवृत्त या संस्मरण प्रसंगों की अवतारणा हुई है। एक ओर विशेषता स्वयं लेखक के ही अनुसार द्रष्टव्य है, ये क्रमबद्ध संस्मरण प्रायः पर्सनल से बन गये हैं। कहानी और निबंध का इनमें गठबंधन हुआ है।[४८] 'पथचिह्न' बहिन की स्मृति के प्रति अर्पित और अपेक्षाकृत जीवनी गठित कृति है। उसका प्रकाशन 1946 में हुआ और उसके पूरक के रूप में ही 'परिव्राजक की प्रजा' लिखी गयी। यह कृति भी सन् 1942 में प्रकाशित हो गयी।

अभिव्यक्ति की सहज संवेद्य आत्मीयता और भावना की कोमलता शांतिप्रिय द्विवेदी की आत्मकथा अथवा संस्मरणों की विलक्षण विशेषता है, जो छाया-शब्दावली और सहज प्रवाहपूर्णसंस्पर्शयुक्त भाषा रचना से सम्पन्न है।

देवदत्त शास्त्री कृत 'स्मृति के हस्ताक्षर' संस्मरण ग्रंथ ही है। इसमें यात्रा वर्णन के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन में मधुरतिक्त घटनाएँ -कषाय-कटु-लवण-अम्ल-भी संस्मरण का विषय बनकर वर्णित हुई हैं, जिनसे पाठक में प्रेरणा, स्फूर्ति एवं संघर्षों से जूझने की अदम्य भावना उत्पन्न होने की संभावना का प्रकाशकीय वक्तव्य प्रत्येक संस्मरण का शिल्पगत वैशिष्ट्य भी प्रस्तावित करता है। शास्त्री जी के ये संस्मरण रोमांचक भी हैं।

'आधारास्ते' और 'सीधी चढ़ान' हिंदी संस्मरण साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं। प्रमाणस्वरूप सन् 1942 में प्रकाशित प्रथम संस्करण के अनंतर सन् 1962 में इनकी द्वितीयावृत्ति भी करनी पड़ी। इसका अनुवाद किया है मंजुला वीरदे। 'आधे रास्ते' के तीन खण्डों में 'टीले के मुंशी', 'बाल्यकाल' और 'बड़ौदा कालिज' शीर्षकों के अंतर्गत आरम्भिक जीवन की कथा कही गयी है। 'सीधी चढ़ान' दो खंडों में है। पहले खंड में बंबई की गलियों) 1907 से 1913) और हाईकोर्ट)1913 से 1922) में व्यतीत जीवन कथा तथा दूसरे खंड में-'मध्वरण्य' शीर्षक के अंतर्गत इस आत्मकथा का शेष वृत्तांत वर्णित है। 'मैं इनसे मिला' में पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने साहित्यसेवियों के इंटरव्यू प्रस्तुत करने के क्रम में अपने प्र-यत्नों, प्रभाव ग्रहण आदि के संबंध में भी लिखी ही है। तत्तत् प्रसंग आत्मकथात्मक संस्मरण के अंश माने जाएँगे। कमलेश जी की यह कृति दो किस्तों में सन् 1942 में प्रकाशित हुई।[४९]

संस्मरण लेखन को स्वतंत्र विधात्मक रूप और साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान करने वालों में पंबनारसीदास चतुर्वेदी अग्रणी हैं। आपके प्रोत्साहन से ही प्रायः . प्रमुख संस्मरण ग्रंथों और अनेक आत्मकथाओं का प्रकाशन हुआ, जिनकी भूमिकाओं आदि द्वारा संस्मरण साहित्य के विषय, स्वरूप इतिहास आदि का बहुमूल्य विवेचन भी आपने किया है। आपके संस्मरण सन्)1942) और 'रेखाचित्र' नामक ग्रंथों के आरंभिक वक्तव्य से भी एकत्र इन विषयों की साहित्यिक स्थिति, संस्मरण है, जो सम्पर्क के व्यक्तियों के संबंध में लिखे गये हैं। इनमें 'मेरी तीर्थयात्रा' और 'द्विवेदी जी के साथ चार दिन' अपेक्षया आत्मकथात्मक हैं। शेष संस्मरणों में भी विषयवस्तु के प्रति निजत्व का बोध और अभिव्यक्ति की आत्मीयता अथवा संस्मरणीय के लिए अपनी प्रतिक्रिया का समावेश दर्शनीय है। परन्तु प्रगट रूप में चतुर्वेदी जी ने अपने संबंध में नहीं ही लिखा है और इसीलिए समस्त संस्मरण उत्कृष्ट कोटि के तथा विषय के विवरण में वस्तुपरकता की दृष्टि से आदर्श और ढेर सारे होकर भी आत्मकथात्मक कम ही है।

पं किशोरी दास वाजपेयी कृति .'साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण' शीर्षक के अनुरूप ही आत्मानुभवपरक है, सन् 1943 में प्रकाशित यह कृति आत्मकथात्मक संस्मरण का श्रेष्ठ उदाहरण है। लेखक ने अपनी साधना और साहित्य सेवा के सिलसिले में जीवन में जो कुछ देखा, भोगा और अर्जित किया, जिनके संपर्क या प्रभाव में आये बिना रह न सके, उन सबका स्पष्ट स्मृति चित्र-इसमें अंकित किया है। [५०]

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'वे और हम' 1956 ई. में अपने जीवन के उन अनुभवों का वर्णन किया है, जो उन्होंने संपर्क में आये व्यक्तियों के साहचर्य में अपनी पूरी जिंदादिली के साथ प्राप्त किये थे। 'जानीदेखी माला-सुनी-' के अंतर्गत प्रकाशित उनकी कथात्मक कृतियाँ भी जीवनसंदर्भ के साक्षात् अनुभूत प्रसंगों पर-आधृत हैं और इसीलिए संस्मरण या इसकी विधि का संस्पर्श उनमें है ही। सन् 1959 में प्रकाशित 'तब और अब' स्पष्ट आत्मकथात्मक कृति है, अनुभवों का विश्लेषण और बीते हुए समय से वर्तमान की तुलना की कसक भी इसमें है। राजा जी की अद्भुत जानदार पुरअसर शैली उनके संस्मरणों में और भी निखर उठी है। उनके समयसमय पर प्रकाशित बहुत लेखादि प्रायः संस्मरणमूलक है-, कहानियों और उपन्यासों में अनेकशः आत्मकथात्मक शैली उन्होंने अपनायी है। स्वामी

सहजानंद सरस्वती ने 'किसान सभा के संस्मरण' में अपने अनुभव प्रस्तुत किये हैं। [५१]

सन् 1959 में प्रकाशित डॉ धीरेंद्र वर्मा की .'मेरी कालिज डायरी' में प्रायः उनके आत्मकथात्मक संस्मरण भी हैं और कतिपय प्रसंग तो ऐसे हैं, जिन्हें 'डायरी' से अगर अलग कर दिया जाये तो, आत्मकथात्मक मात्र माने जायेंगे।

पं अम्बिका प्रसाद वाजपेयी कृत .'मेरे साहित्यिक संस्मरण' का धारावाहिक प्रकाशन 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के 7 जून 1959 के अंक से प्रारंभ हुआ। सम्पादन और साहित्यिक रचना के सुदीर्घ जीवनकाल में अपनी कार्यव्यस्तता के बीच आपने जो कुछ अनुभव हासिल किया और सोचासमझा-, उसकी उपादेयता को ध्यान में रखते हुए 'साप्ताहिक' के वर्ष भर से अधिक अंकों में उसे विस्तारपूर्वक लिख दिया है। निश्चय ही यह बहुमूल्य रचनाएँ, साहित्यिक विकास के इतिहास, पत्रकारिता के उपयोग इत्यादि की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं।

विष्णु प्रभाकर के 'जाने अनजाने' में संस्मरणों और रेखाचित्रों का उत्कृष्ट संकलन मिलता है। यह कृति दूसरी बार सन् 1961 में प्रकाशित हुई। उपेंद्रनाथ अश्क कृत 'ज्यादा अपनी, कम पराई' (1959) में आत्मानुभूति, आत्मालोचन और आत्मकथात्मक दृष्टि अधिक है और अपने कृतित्व का मूल्यांकन भी उन्होंने आत्मचरित के प्रायः पूरक के रूप में ही किया है। [५२]

सन् 1961 में प्रकाशित संपूर्णानंद कृत 'कुछ स्मृतियाँ, कुछ स्फुट विचार' में एक चिन्तक विचारक के कतिपय महत्त्वपूर्ण संस्मरण अंकित हुए हैं।-'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के 5 नवम्बर 1961 के अंक में 'नाचती लहरियों के किनारे एक शाम' अमृता प्रीतम का उल्लेखनीय भाव प्रवण संस्मरण है और 31 दिसंबर के फिल्म विशेषांक में प्रकाशित अभिनेत्री नंदा का संस्मरण 'स्मृतियों की शहनाई' के स्वर मर्मस्पर्शी हैं।

अमृता प्रीतम की 'अतीत की परछाइयाँ' (1962) संस्मरणों और रेखाचित्रों का संकलन है। इसमें उन्होंने अपने देशविदेश के साहित्यकारों के और जीवन एवं - चित्र अंकित किये हैं। वर्णित घटनाओं और -साहित्य से संबद्ध अनेक अछूते स्मृति प्रकाशित पात्रों में उन्होंने अपनी आत्मा का रस भर दिया है, जिससे स्मृति पथ में अनेक रमणीय स्थलों की सृष्टि हो गयी है। प्रस्तुति में भाव से सराबोर कर देने वाली कला कुशलता अमृता प्रीतम की अपनी विशेषता है।-'विरासत', 'मेरी पहली

कविता', 'नेपाल की गाती हुई रात', 'नाचते पानियों के किनारे शाम' आदि संस्मरण अत्यंत रोमानी हैं।

तनसुखराम गुप्त कृत 'जीवन के कुछ क्षणों में' इस वर्ष प्रकाशित उल्लेखनीय संस्मरण साहित्य है। 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' 22 अप्रैल 1962 में प्रकाशित 'जब मैंने जीवन की सबसे बड़ी दक्षिणा पाई' राजेंद्र सागर के निर्माण की कहानी है, जिसे पं . बनारसीदास चतुर्वेदी ने'संस्मरण प्रसंग' में प्रस्तुत किया है। स्वभावतः इसमें चतुर्वेदी जी ने अपना संस्मरण लिखा ही है। इस वर्ष प्रकाशित 'जीवन रश्मियाँ : गुलाबराय' में सुधा रानी गुप्ता ने अपने संस्मरण अंकित किये हैं।

'खोये फूल' में पंडित शिवनाथ काटजू के अपने और अपनों के संस्मरण हैं। सन् 1937 में प्रकाशित इस संग्रह की रचनाएँ उन्होंने उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में कार्य करते हुए लिखी थी। इसमें अनेक अत्यंत मार्मिक एवं हृदयग्राही प्रसंग चित्रित हैं।

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के सद्यः प्रकाशित 'स्मृति के वातायन' में शास्त्री जी के भावभीने संस्मरण संकलित हुए हैं। अस्तु-, आत्मकथा के प्रति अभिरुचि में अभिवृद्धि और संस्मरण लेखन की बढ़ती प्रवृत्ति से आत्मकथात्मक संस्मरण की संभावनाएं निस्सीम हैं। [५३]

सन् 1942 में प्रकाशित पं बनारसीदास चतुर्वेदी का .'संस्मरण' अपने विषय का आदर्श ग्रंथ है। [५४]इसमें सभी प्रकार के संस्मरणों के उत्कृष्ट उदाहरण मिल जाते हैं। 'मेरी तीर्थयात्रा' में उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा का वर्णन किया है - 'शंकर जी, गोस्वामी जी और द्विवेदी जी इन तीन वयोवृद्ध साहित्य सेवियों की सेवा में पहुँचकर उनके दर्शन करने तथा आशीर्वाद ग्रहण करने की इच्छा बहुत दिनों से थी। पर यह सन् 1924 के दिसंबर मास के अंतिम सप्ताह तथा जनवरी, 1925 के प्रथम सप्ताह में जाकर पूर्ण हुई।[५५] संयोगवश पहली ही यात्रा आचार्य द्विवेदी जी के गाँव की हुई, जिसका अनुभव अनोखा साबित हुआ, 'लकीर की फकीर' रेलगाड़ी में सुगम रीति से सफर करते हुए यदि किसी की तबीयत ऊब गई हो और प्राचीन काल की यात्रा विधि का अनुभव करने की इच्छा मन में हो, तो उसे द्विवेदी जी के साथ दौलतपुर की यात्रा करनी चाहिए। चतुर्वेदी जी का दूसरा तीर्थधाम हरदुआगंज है। जहाँ इन्हें यात्रानन्द का प्रकर्ष पं नाथूराम शर्मा .'शंकर' से की गयी भेंट से

प्राप्त हुआ। 'अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि शंकर जी ने एक कागज तुरंत ही लिखकर दिया -

'बुध बनारसीदास चतुर्वेदी चल घर से,
प्रेम पसार सबन्धु मिले आकर शंकर से।
तरुण वृद्ध का योग, मिली यों गरमी सरदी।
सरस अनुष्णाशीत शक्ति समता में भर दी।
कर दूर दुरंभीद्वैत की अटल एकता हो गई।
हरिशंकर के पास जो उमग आगरा को गई।'
शंकर, रविवार 2.1.1924

काका कालेकर के यात्रानुभव और साहित्य में सद्यः अंकित उनके विवरण हिंदी के यात्रा साहित्य की सामर्थ्य एवं समृद्धि के प्रतीक हैं। आपके यात्रा वर्णनों में देशकाल के संयुक्त प्राकृतिक सौंदर्य की अनेक भंग-िमाएँ मूर्तिमान हो उठी हैं। 'हिमालय यात्रा' के आपके संस्मरण इसी प्रकार के हैं। भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक परिवेश आदि का संतुलित तथा यथातथ्य विवरण इनकी विशेषता है, जिसमें व्यापकता और विराटता दोनों का सम्मिलन देखने योग्य है। पर्वतश्रेणी-, सरोवर, वनस्पति, मार्ग, हिमाच्छादित पर्वतप्रदेश-, इर्दगिर्द का जीवन सब सद्यः इन यात्रा - संस्मरणों में वर्णित है और प्रत्याक्षानुभूति का आनंद देते हैं। काका कालेलकर की उल्लेखनीय'संस्मरणीयता' सन् 1953 ईमें प्रकाशित हुई। इसके संस्मरण या . त्यिकता सेयात्रा विवरण उच्चस्तरीय एवं श्रेष्ठ साहिसम्पन्न है।

यात्रा साहित्य की अगली कड़ी में रांगेय राघव का 'तूफानों के बीच', देवेश चंद्रदास कृत 'यूरोप' तथा रजवाड़े', अमृतराय रचित 'सुबह के रंग' और मोहन राकेश कृत 'आखिरी चट्टान तक' उल्लेखनीय ग्रंथ हैं।

विद्यासागर छिब्बर का 'पैदल शिमला से चकरीता' साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 12 जुलाई 1956 में प्रकाशित रोचक यात्रासंस्मरण है। इसमें उन्होंने मार्ग के अनुभव - का वर्णन किया है, जिसमें प्राकृतिक परिवेश तथा पथ विस्तार सहज ही समाविष्ट हो गया है।

ब्रजकिशोर नारायण की यात्रा विवरणात्मक प्रस्तुति-'कलाभूति पेरिस में' फरवरी सन् 1956 की 'त्रिपथगा' में प्रकाशित हुई। इसकी वर्णन विधि भावावेश पूर्ण और अनुभूति आल्हादयुक्त है।

'त्रिपथगा' के अप्रैल 1956 में 'यात्रासंस्कृति-' स्तंभ के अंतर्गत आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'भुवनेश्वर में तीन दिन' शीर्षक यात्रा वृत्तांत लिखा है। यात्रारंभ की मनःस्थिति और यात्रागत अनुभूति का उल्लेख करते हुए, उन्होंने लिखा है। 'जब पिछले 23 नवम्बर की रात को मैं कलकत्ते से भुवनेश्वर के लिए रवाना हुआ तो मेरे मन में लिङ्गराज मंदिर की अभिभूत कर देने वाली शोभा बारंबार जाग्रत हो रही थी। मैं निरंतर यही सोचता रहा कि कब अवसर मिलेगा और कब मैं इस महत्त्वपूर्ण मन्दिर के सामने फिर खड़ा होऊँगा।' फलतः भुवनेश्वर की मोहक स्मृति संस्मरण लेखन के लिए प्रेरित करती है। इस यात्रा संस्मरण में काव्यानुभूति की सी अभिव्यक्ति मिलती है और यात्रा विवरण की अपेक्षा भुवनेश्वर पहुँचकर वहाँ व्यतीत समय एवं शोभा साक्षात्कार का वर्णन ही उन्होंने अधिक किया है, 'चाँदनी रात में भुवनेश्वर का मंदिर और भी आकर्षक लग रहा था। इसके विशाल विमान का अद्भुत आमलक शिव की पेचीली जटा के समान दिखाई दे रही थी। शरत्काल के निर्मल आकाश से सुधा-धवल चाँदनी बरस रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि स्वमंदाकिनी सहस्रधार होकर समाधिस्य महादेव के जटा-जूट पर बरस रही है। इस प्रकार यह यात्रा संस्मरण दृश्यावलोकन और यात्रा-प्रेरित अनुभूति की अभिव्यक्ति ही है। [५६]

धर्मयुग के 19 जुलाई, 1964 अंक में प्रकाशित बलवंत गार्गी का 'जब मैं इलिया रूज्जान से मिलने गया' यात्रामूलक व्यक्तित्व व्यंजक संस्मरण है।-26 जुलाई के अंक में कर्नल नरेन्द्रपाल सिंह कृत 'हेरात की घाटी और अफगान कविता के नये स्वर' यात्रा विवरणात्मक है। भगवतशरण उपाध्याय ने 'तख्ते वाही के महल' धर्मयुग, 2 अगस्त, 1964 के रहस्यमय ऐतिहासिक स्थल की यात्रा का वृत्तांत अंकित किया है। दिनांक 9 अगस्त, 1964 के धर्मयुग में 'सफर के बाद याद आते हुए चेहरे' यशपाल जैन के रूस तथा चेकास्लोवाकिया होते हुए स्विट्जरलैंड पहुँचने और यूरोप प्रवास का संस्मरण है और सेठ गोविंददास का-'सरोवरों का नगर उदयपुर' देश दर्शनमूलक यात्रा विवरण है। दिनांक 13 सितंबर के अंक में प्रकाशित सतीश कुमार कृत 'रूस की एक रात' यात्रा विवरणात्मक है। जगदीशचंद माथुर कृत 'वे साढ़े तीन दिन' (धर्मयुग 29 जुलाई 1964), यशपाल जी का 'इस बार मास्को में देखा-सुना' (धर्म 6 दिसंबर, 1964) इंद्रकपूर लिखित 'नील की घाटी में

उभरती गयी तस्वीरें' काहिरा (धर्म 27 दिसंबर, 1964) उल्लेखनीय यात्रा-संस्मरण है।[५७]

इलाचंद्र जोशी द्वारा अनूदित 'गोर्की के संस्मरण' की सन् 1942 में प्रस्तुति से संस्मरण साहित्य के प्रति बढ़ती जनरुचि और एतदर्थ विदेशी साहित्य की ओर भी देखने की प्रवृत्ति का संकेत मिलता है। [५८]

सन् 1951 में प्रकाशित 'मेरे समकालीन' में महात्मा गाँधी द्वारा लिखित अपने समय के राजनीतिज्ञों तथा सामान्य लोकसेवकों के संस्मरण संकलित हैं। इसका संकलन और संपादन विष्णु प्रभाकर ने किया है। वस्तुतः इसमें गाँधी जी वाणी, उनके विचार, लेख, आत्मकथा आदि का समुच्चय मिलता है। प्रस्तुत संपादन अपने ढंग का अनूठा और गाँधी जी के संदर्भ में विशेष महत्वपूर्ण है। क्षेमचंद्र सुमन द्वारा संपादित 'श्रीपद्मसिंह शर्मा' (1951) नामक ग्रंथ में जीवनी, संस्मरण और कृतित्व संबंधी विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जिससे शर्मा जी के व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

महात्मा भगवानदीन ने 'मेरे साथी' (1952) में अपने जीवन पथ के कर्मनिष्ठ सहयात्रियों के संस्मरण लिखे हैं। इसमें उनका अपना जीवन भी आ गया है और इसीलिए उनकी अभिव्यक्ति में अधिकाधिक आत्मीयता दृष्टिगत होती है। भगवतशरण उपाध्याय ने 'वो दुनियाँ' (1952) में कई प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों के प्रभावपूर्ण संस्मरण प्रस्तुत किये हैं।

'साप्ताहिक हिंदुस्तान' 9 अगस्त 1953 में सूर्यनारायण व्यास कृत 'स्वर सम्राट कुमार गंधर्व' व्यक्तित्व निरूपणात्मक और-27 दिसंबर के अंक में हर्षदेव मालवीय की लिखी 'महामना के जीवन की कुछ झलकियाँ' जीवनी गठित संस्मरण है। [५९]

आचार्य द्विवेदी जी के उत्तराधिकारी सरस्वती संपादक पंपदुमलाल पुन्नालाल . अनुभव विविध और अविस्मरणीय है बख्शी के, जिन्हें उन्होंने अपने संस्मरणों में अंकित किया है। 'जिन्हें नहीं भूलूँगा' (1968) बख्शी जी का उत्कृष्ट जीवनी गठित संस्मरण ग्रंथ है। इसमें वर्णित व्यक्तियों के जीवन प्रसंगों को लेखक ने निकट संपर्क के आधार पर चित्रित किया है और उन्हें अपने प्रति उपकारपूर्ण निष्ठा से स्मरण किया है। आचार्य विनयमोहन शर्मा के 'रेखा और रंग' (1964) में ब्लैको, बदलू, धोबी, नौकर, शंकर आदि के वर्णन बड़े सजीव हैं और व्यक्तित्वव्यंजक - संस्मरण रेखा के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। रजनीकांत वर्मा के'मैंमेरे !स्तमेरा दो !

साथी।' (1964) में राजनीति एवं साहित्य जगत् के खट्टेतीखे संस्मरण संकलित - हैं। इसमें'मेरा दोस्त', 'नये पत्ते की कहानी' तथा 'निराला और लोहिया' के संस्मरणों के आधार पर व्यक्तित्व निरूपण किया गया है। ओंकार शरद के 'देश काल पात्र' में प्रभावपूर्ण शैली में सम्पर्क में आये व्यक्तियों के संस्मरण प्रस्तुत हुए हैं।

कपिलदेव नारायण सिंह 'सुहृद' कृत 'मेरे अपने' का प्रकाशन सन् (1966) में हुआ इसमें स्मरण किये गये व्यक्तियों के प्रति लेखक की आत्मीयता तथा तदनुकूल अभिव्यक्ति की क्षमता अप्रतिम है। विष्णुचंद्र शर्मा की कृति 'इन लोगों के मध्य' (1966) हिंदी के पंद्रह प्रसिद्ध साहित्यकारों के व्यक्तित्व से सम्बद्ध लेखक के संस्मरणों के संग्रह है। निराला, राहुल सांकृत्यायन, शिवपूजन सहाय, बनारसीदास चतुर्वेदी, कृष्णचंद्र शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री, उग्र, यशपाल, शिवदान सिंह चौहान, नलिन विलोचन शर्मा, नागार्जुन, बच्चन, शमशेर बहादुर सिंह, नरेंद्र शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के जीवन संदर्भ से जुड़े क्षणों की स्मृति और आत्मानुभव बिंबित उनकी छवि इन संस्मरणों में अंकित है।

'साप्ताहिक हिंदुस्तान' 31 जुलाई 1966 ई रा लिखितमें देवीप्रसाद शर्मा द्वा . 'उदारमना देवदास जीकुछ जीती जागती स्मृतियाँ :', 'त्रिपथगा' के मई अंक में प्रकाशित पन्नालाल त्रिपाठी लिखित 'आचार्य द्विवेदी जी', जून में लक्ष्मीशंकर व्यास द्वारा प्रस्तुत पंडित उदयशंकर भट्ट' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' (24 सितंबर 1966) में प्रकाशित 'आगरा जेल में कवि सम्मेलनस्वर्गीय महादेव भाई की हिंदी : कविता' सन् 1920 ईपद्मकान्त मालवीय का .के असहयोग के समय से संबद्ध पं . उल्लेखनीय संस्मरण है।

मार्जरी साइक्स एवं पं बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा प्रस्तुत .'दीनबंधु एण्ड्रूज' में अनेकत्र जीवनीगठित संस्मरण के सुंदर उदाहरण उपलब्ध हैं। इसकी 'भूमिका' के रूप में श्रद्धांजलि लिखी है पंबनारसीदास चतुर्वेदी ने ., जिन्हें दीनबंधु के निकट संपर्क का अवसर प्राप्त था और जिनके कई रोचक संस्मरण वे स्वतंत्र रूप में पहले भी लिख चुके हैं। यह कृति सन् 1967 में प्रकाशित हुई। [६०]

इसके साथ ही साथ छायावादोत्तर युग में महादेवी वर्मा कृत 'अतीत के चलचित्र' (1941), 'स्मृति की रेखायें'(1947), 'पथ के साथी'(1956), 'मेरा परिवार'(1972), बनारसीदास चतुर्वेदी कृत 'हमारे आराध्य'(1952), 'संस्मरण'(1952-1953), 'सेतुबन्ध'(1952), प्रिंस क्रोपाटकिन, रामवृक्ष बेनीपुरी कृत 'लाल तारा'(1938), 'गेहूँ बनाम गुलाब'(1950), 'मील के पत्थर'(1957), विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कृत 'एक

नाव के यात्री'(2001), प्रकाश चन्द्र गुप्त, 'मिट्‌टी के पुतले', 'पुरानी स्मृतियाँ' और 'नये स्केच'(1947), कान्ति कुमार जैन, 'लौटकर आना नहीं होगा'(2002), 'अब तो बात फैल गयी' शिवपूजन सहाय, 'वे दिन वे लोग'(1946), क्रांतिकारियों के संस्मरण, विद्या निवास मिश्र, 'चिड़िया रैन बसेरा'(2002), गोविन्ददास, 'स्मृतिकण'(1959), विष्णु प्रभाकर, 'जाने अनजाने'(1962), 'यादों की तीर्थ यात्रा'(1981), 'सृजन के सेतु'(1990), 'मेरे अग्रज मेरे मीत'(1983), माखन लाल चतुर्वेदी, 'समय के पाँव'(1962), कृष्ण बिहारी मिश्र, 'नेह के नाते अनेक'(2002), जगदीश चन्द्र माथुर, 'जिन्होंने जीना जाना', 'दस तस्वीरें'(1963), डॉ0 राजकमल राय, 'स्मृतियों का शुक्ल पक्ष'(2002), कन्हैयालाल मिश्र, 'भूले हुये चेहरे', 'जिन्दगी मुस्काई'(1953), 'बाजे पायलिया के घुंघरू', 'क्षण बोले कण मुसकाये', 'तपती पगडंडियों पर पद यात्रा', 'माटी हो गयी सोना', 'दीप जले शंख बजे'(1959) अजित कुमार और ओंकारनाथ श्रीवास्तव, 'बच्चन के निकट से'(1968) रामधारी सिंह 'दिनकर', 'संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ'(1969) विनोद शंकर व्यास, 'प्रसाद और उनके समकालीन'(1960) हरिभाऊ उपाध्याय, 'मेरे हृदय देव'(1965) कमलेश्वर, 'मेरा हमदम, मेरा दोस्त'(1975) अमृत राय, 'जिनकी याद हमेशा रहेगी'(1992) प्रकाशवती पाल, 'लाहौर से लखनऊ तक'(1994) सेठ गोविन्ददास, 'स्मृति कण'(1959), 'चेहरे जानेपहचाने-'(1966) हरिवंश राय बच्चन, 'नये पुराने झरोखे'(1962), 'बच्चन की डायरी', सत्यजीवन शर्मा, 'भारतीय एलबम'(1949), ओंकार शरद, 'लंका महाराजिन'(1950), कैलाश नाथ काटजू, 'मैं भूल नहीं सकता'(1955), इन्द्र विद्यावाचस्पति, 'मैं इनका ऋणी हूँ'(1959), संपूर्णानंद, 'कुछ स्मृतियाँ और स्फुट विचार'(1962), लक्ष्मीनारायण सुधांशु, 'व्यक्तित्व की झाँकियाँ'(1970), पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, 'अंतिम अध्याय'(1972), लक्ष्मीशंकर व्यास, 'स्मृति की त्रिवेणिका'(1974), अनीता राकेश, मोहन राकेश, 'चंद संतरे और'(1975), दूधनाथ सिंह, 'लौट आओ धार'(1995), मोहन किशोर दीवान, 'नेपथ्य नायक लक्ष्मीचंद्र जैन'(2000) देवेंद्र सत्यार्थी, 'यादों के काफिले'(2000), पुरुषोत्तम दास मोदी, 'अंतरंग संस्मरणों में प्रसाद'(2001), सुलोचना रांगेय राघव, 'पुनः'(1979), कुँवर सुरेश सिंह, 'यादों के झरोखे'(1980), मैथिलीशरण गुप्त, 'श्रद्धांजलिसंस्मरण-'(1979)[६१] आदि छायावादोत्तर युग में लिखे गये साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (द्वितीय अध्याय)

१ रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ.सं. 376

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 222

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 222

४ डॉ.परमानन्द श्रीवास्तव, हिंदी भाषा और साहित्य: एक समग्र अध्ययन, पृ.सं. 739

५ सम्पादक डॉ.कैलाशनाथ सिंह, डॉ.आद्याप्रसाद द्विवेदी: हिन्दी गद्य विविधा, पृ.सं. 25, 26, 27

६ डॉ.शांति खन्ना, आधुनिक हिन्दी का जीवन परक साहित्य, पृ.सं. 279

७ डॉ.शांति खन्ना, आधुनिक हिन्दी का जीवन परक साहित्य, पृ.सं. 280

८ सम्पादक डॉ.कैलाशनाथ सिंह, डॉ.आद्या प्रसाद द्विवेदी, हिंदी गद्य - विविधागान, पृ.सं. 25

९ महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ.सं. 7

१० सं. प्रेम नारायण टण्डन, रसवन्ती (अगस्त 1968), पृ.सं. 24

११ महादेवी वर्मा, स्मृति की रेखाएँ, पृ.सं. 34

१२ महादेवी वर्मा, स्मृति की रेखाएँ, पृ.सं. 50

१३ डॉ.रामगोपाल सिंह चैहान, आधुनिक हिंदी साहित्य, पृ.सं. 325

१४ महादेवी वर्मा, पथ के साथी, पृ.सं. 53

१५ महादेवी वर्मा, पथ के साथी, पृ.सं. 55

१६ महादेवी वर्मा, पथ के साथी, पृ.सं. 100

१७ महादेवी वर्मा, पथ के साथी, पृ.सं. 66

१८ महादेवी वर्मा, पथ के साथी, पृ.सं. 54

१९ रामवृक्ष बेनीपुरी, गेहूँ बनाम गुलाब, पृ.सं. 7

२० रामवृक्ष बेनीपुरी, गेहूँ बनाम गुलाब, पृ.सं. 20

२१ रामवृक्ष बेनीपुरी, माटी की मूरतें, पृ.सं. 2

२२ रामवृक्ष बेनीपुरी, माटी की मूरतें, पृ.सं. 36

२३ रामवृक्ष बेनीपुरी, माटी की मूरतें, पृ.सं. 36

२४ रामवृक्ष बेनीपुरी, माटी की मूरतें, पृ.सं. 20

[२५] रामवृक्ष बेनीपुरी, माटी की मूरतें, पृ.सं. 1

[२६] पाण्डेय बेचन शर्मा, अपनी खबर, पृ.सं. 38

[२७] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिंदी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 142

[२८] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिंदी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 53, 54

[२९] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिंदी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 196

[३०] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिंदी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 140

[३१] सुमित्रा नंदन पंत, दो शब्द, साठ वर्ष एक रेखांकन, पृ.सं. 20

[३२] सुमित्रा नंदन पंत, विकास सूत्र और अंतः संघर्षः एक रेखांकन, पृ.सं. 35, 36

[३३] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिंदी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 149

[३४] डॉ.सूर्यप्रसाद दीक्षित, हिंदी साहित्य के इतिहास की भूमिका (भाग 3)

[३५] लक्ष्मी शंकर, प्रचारक साहित्य अंक, पृ.सं. 20

[३६] राजरानी शर्मा, हिंदी संस्मरण साहित्य, पृ.सं. 124-125

[३७] राजरानी शर्मा, हिंदी संस्मरण साहित्य, पृ.सं. 62

[३८] जैनेन्द्र कुमार, ये और वे, पृ.सं. 135

[३९] अश्क, रेखाएँ और रेखाचित्र, पृ.सं. 181

[४०] अश्क, रेखाएँ और रेखाचित्र, पृ.सं. 11

[४१] अश्क, रेखाएँ और रेखाचित्र, पृ.सं. 27

[४२] राजरानी शर्मा, हिंदी का संस्मरण, पृ.सं. 111, 112

[४३] राजरानी शर्मा, हिंदी का संस्मरण, पृ.सं. 99

[४४] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 108-109

[४५] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिंदी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 114

[४६] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिंदी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 116

[४७] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, दो शब्द, पृ.सं. 55

[४८] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, दो शब्द, पृ.सं. 56

[४९] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 123

[५०] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 129

[५१] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 131-134

[५२] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 136, 137

[५३] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 140-144

[५४] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 155

[५५] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, मेरी तीर्थ यात्रा, पृ.सं. 20

[५६] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 166-170

[५७] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 169-170

[५८] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 193

[५९] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 196-201

[६०] डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, हिन्दी संस्मरण का इतिहास, पृ.सं. 225-230

[६१] डॉ.सूर्य प्रसाद दीक्षित, हिन्दी साहित्य के इतिहास की भूमिका, भाग 3, पृ.सं. 381-384

तृतीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणात्मक साहित्य की परिस्थितियाँ

1) साहित्यिक परिस्थिति
2) सामाजिक परिस्थिति
3) सांस्कृतिक परिस्थिति
4) राजनीतिक परिस्थिति

तृतीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणात्मक साहित्य की परिस्थितियाँ

1. साहित्यिक परिस्थिति -

साहित्यिक संस्मरण के अंतर्गत सर्वप्रथम 'स्मृतियों का शुक्ल पक्ष' जिसे रामकमल राय जी द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से लिखा गया है। पुस्तक का ऊपरी हिस्सा एक पक्षी के उड़ान के साथ प्रस्तुत किया है, अंदर लेखकों के चित्र दिये हैं। कुछ संगोष्ठियों के भी चित्र हैं, जिसके कारण पाठक को पठन हेतु रुचि पैदा होती है। करीबन तैंतीस संदर्भों के साथ यह संस्मरण लिखा गया है। इस संस्मरण की विशेषता यह है कि सभी साहित्यकार एक ही पुस्तक में समाहित हैं, ये सभी भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लेखक और कवि हैं, आलोचक निंबध लेखक, उपन्यास लेखक, कहानीकार शायर है। कोई ऐसा मुख्य व्यक्ति छूटा हो उनकी पकड़ से, यहाँ तक कि महिलाएँ भी सम्मिलित की गयी हैं। आरम्भ में निराला जी की स्मृतियों को प्रस्तुत करते हैं और उनके साथ ही महादेवी वर्मा, इलाचंद्र जोशी, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंद पंत, सियारामशरण गुप्त इत्यादि को भी समेट लेते हैं। बच्चन इलाहाबाद विश्वविद्यालय, टण्डन सभी इसमें समाहित हैं। ढाई पन्नों में आँखों देखी निराला ऐसे लिख दिये गये हैं मानो पाठक भी उससे साक्षात मिल आये हैं। इसके उपरान्त अज्ञेय का सान्निध्य के अंतर्गत उन्होंने अपनी यादों को चित्रित किया है। गोष्ठियों में किस-किस से मिले किस कुलपति के यहाँ खाना खाया, अज्ञेय को कौन-सा पुरस्कार मिला आदि सभी बातें लेखक ने बड़ी तन्मयता से लिखी हैं। अज्ञेय के विषय में लेखक ने अंतिम सोच तक को शब्दों में पिरो दिया है। और अंततः जब उनके हृदय का दौरा पड़ा तो हिंदी जगत में कैसे एक स्तब्धता छा गयी थी उसका भी शोकपूर्ण वर्णन है। विरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य जिन्होंने विशिष्ट पुरस्कार लेने से इन्कार कर दिया था, उनका भी लेखक ने एक सरल वैशिष्ट्य वर्णन किया है। इसमें यात्रा का भी वर्णन है तथा वापस आकर उनके परिवार का चित्रण किया गया है। इन्हें इनके उपन्यास 'मृत्युंजय' के लिए भारतीय पुरस्कार

से नवाजा गया। इस साहित्यकारों में नरेश मेहता, केदारनाथ अग्रवाल, पं. विद्यानिवास मिश्र, विजयदेव नाराण्यासाही, प्रो. रघुवंश, प्रो. नामवर सिंह, आचार्य विष्णुकांत शास्त्री मटियानी, मार्कण्डेय, गिरिराज किशोर, कृष्णनाथ, डॉ.सत्यप्रकाश मिश्र, मिना सिंह एवं डॉ.शशि तिवारी जी सम्मिलित हैं। इतना ही नहीं कुलपति प्रो. उदित नारायण सिंह का भी चित्रण प्राप्त होता है। जब मनुष्य अपने परिवार से हटकर समाज के अन्य परिवारों से जुड़ जाता है तब उसके द्वारा किये गये बयान समाज की स्थितियों को दर्शाते हैं। यही कारण है कि इस संस्मरण में पाठकों को समाज के एक बड़े हिस्से की जानकारी साहित्य के रूप में देकर एक बड़ी फेहरिस्त बुद्धिवर्ग को एक साथ प्रदान कर दी है और यह कार्य संस्मरण विधा में बहुत अच्छी तरह निभाया है।[१]

दूसरा साहित्यिक संस्मरण बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कांतिकुमार जैन ने आत्मकथा के अंदाज में इस संस्मरण को शीर्षक दिया है 'जो कहूंगा सच कहूंगा' यह साहित्यिक संस्मरण जहां तक वो लेखकों से जुड़ता है वहीं पत्रकार, आलोचक, प्रोफेसर, शोधकार्यकर्ता आदि से भी जुडा हुआ दिखाई देता है। जैन जी ने आरंभ ही बसीर बख्स के शेर से किया है।

चाहता है दिल कि मैं भी सच कहूँ।
क्या करूँ मगर हौसला नहीं होता।।

और इसी आधार पर लेखक का शीर्षक निर्भर करता है। हौसला नये जमाने की देन है, इसलिए संस्मरण तेजी से लिखे जाने लगे हैं, लेकिन लेखक ने आरंभ में ही स्वीकार किया है कि वह सच लिखना चाहते हैं, मगर हौसला नहीं है। इसमें लेखक ने आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, राजनाथ, गजानन्द, जीवनलाल वर्मा, विद्रोही मुकुटधर, नामवर सिंह, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन एवं श्यामा चरण दुबे जी के विषय में लिखा गया है। कुल चार शीर्षक हैंविज्ञप्ति -, व्याप्त, प्रवृत्ति एवं आत्मस्वीकृति। यह संस्मरण पाठक को सभी बड़ी हस्तियों से मिलवाने का काम करता है तथा जीवन में किस तरह से उन्होंने तानाबाना बुना-, इस पर भी प्रकाश डालता है। इस संस्मरण में कुछ ऐसे वाक्य भी हैं जिन्हें पढ़कर, सुनकर पाठक व श्रोता अचंभित हो सकते हैं, लेकिन लेखक ने उन्हें हटाया नहीं है।[२]

'सुमिरन को बहानो' केशवचन्द्र वर्मा द्वारा लिखा गया संस्मरण है। केशव जी ने संस्मरण की शुरुआत व्यक्ति के परिचय से की है और बाद में क्रमशः एकएक -

लेखक कवि जुड़ते चले गये हैं। शमशेर बहादुर सिंह, श्रीनारायण चतुर्वेदी, श्री नरेश मेहता, बच्चन, धर्मवीर भारती, बालकृष्ण राव, जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही, रघुवीर सहाय, गिरिजाकुमार माथुर, इलाचंद जोशी, लक्ष्मीकांत वर्मा एवं टैगोर टाउन जैसा अध्याय इसके अंतर्गत इसमें समाहित है। पाठक जब ऐसी साहित्य रचना को हाथ में लेता है तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है वह पुस्तक नहीं मानो कोई निधि पा गया हो, एकपान और -एक महत्त्वपूर्ण चरित्र उनके छिपे हुए स्वभाव को जान-में साधुवाद के हकदार हैं लेखक द्वारा चित्रित करना वास्तव, इतने बड़ेबड़े - साहित्यिक मोतियों को एक ही माला में पिरोना और उन्हें याद करके प्रस्तुत करना आसान बात नहीं है। केशव जी ने जिनजिन लेखकों के संपर्क में रहकर - जो कुछ भी महसूस किया उसे बिना किसी लाग लपेट के वैसे ही रख दिया। व्यक्तियों को लेकर चलता है तो दूसरी ओर उनकी कलाओं का संस्मरण एक ओर इन संस्मरणों में भी जीवंतता, अखण्डता, चमत्कार तथा व्यंग्यपूर्ण चमत्कृत करने वाली भाषा भी पायी जाती है। श्री नारायण चतुर्वेदी जी से वे कब भीष्म पितामह बन जाते हैं, कवि सम्मेलन से लेकर लोक मानस कैसे जुड़ जाते हैं, इत्यादि बातें प्रथम अध्याय में देखने को मिलती हैं। 'लौट आओ पांखुरी' शमशेर जी की कविता के ढांचे को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। 'इतिनम्' श्री नरेश मेहता जी के कष्टमयी जीवन का चित्रण किया गया है। बच्चन जी के माध्यम से विश्वविद्यालय एवं अध्यापिकी जीवन का चित्रण किया गया है। धर्मवीर जी के जीवन का सुंदर चित्रण भी इसमें मिलता है। बालकृष्ण राव जी के साहित्य तत्वों का भी परिचय प्राप्त होता है तथा माध्यम पत्रिका के द्वारा उन्हें काफी ख्याति मिली इसे भी इसमें देखा जा सकता है। कुल मिलाकर यह संस्मरण का सर्वोत्कृष्ट दस्तावेज है। [3]

'नेह के नाते अनेक' कृष्ण बिहारी द्वारा लिखित संस्मरण है। इस संस्मरण को लेखक ने ग्यारह अध्यायों में बाँटा है और भिन्न साहित्य से भिन्न-भिन्न स्तर पर अपने अनुभवों को प्रस्तुत किया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाचस्पति, अज्ञेय, डॉ. प्रभाकर माचवे, ठाकुर प्रसाद सिंह, धर्मवीर और शिव प्रसाद सिंह एवं डॉ. कुमारेंद्र पारानाथ सिंह आदि इसमें शामिल हैं। लेखक ने 135 पन्नों में निजी अनुभव को प्रस्तुत किया है। लेखक हर तरफ से जानकारियाँ लेकर हर क्षेत्र में स्वयं अनुभव करके लिखना चाहता है। यही कारण है कि एक ही स्थान पर अपने समस्त महत्त्वपूर्ण

अनुभवों को पुस्तक का रूप देकर अपने परिवारजन के प्रति स्नेह प्रस्तुत किया है। [४]

'साथसाथ चल रही याद-' विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखा गया संस्मरण है। इसमें उन्होंने बहुत सारे साहित्यकारों को याद किया है और अपने अनुभवों का विस्तार किया है। सबसे पहले बच्चनजी के विषय में लिखा है कि उनकी आत्मकथा को पढ़कर वह भावविभोर हो गये जिसका नाम था 'क्या भूलूं क्या याद करूं' जब पूरी आत्मकथा पढ़ गये तब उन्होंने बच्चनजी को एक पत्र लिखा और उसका उत्तर भी बड़े कम शब्दों में प्राप्त किया। इसी को इन्होंने बच्चन जी बातचीत का वर्णन है उनके काव्य का वर्णन है, अमिताभ की फिल्मों का चित्रण है। बच्चन जी ने गीता का अनुवाद किया है। इस प्रकार कुल मिलाकर उनके पूरे परिवार का जिक्र नहीं कह सकते लेकिन साहित्य का जिक्र बखूबी किया है। नागार्जुन को जन कवि कहते हुए लेखक ने अद्भुत कुंटन कहा है। नागार्जुन के जीवन से संबंधित कविताओं तथा गोष्ठियों का वर्णन किया है और उनके कृतित्व को श्रद्धांजलि दी गयी है। [५]

जगदीशचंद्र गुप्त के विषय में लेखक ने सफल वाणी भेदक माना है। लेखक और जगदीश जी ने साथसाथ खजुराहो देखा और इलाहाबाद-, कोलकाता, वाराणसी, चित्रकूट आदि की गोष्ठियों का वर्णन किया है। अमृतराय के विषय में लेखक ने लिखा है, उनकी कविता की विशेषता बताते हुए कोयल से तुलना की है। मुख्य धारा में प्रकाशित लेखों की तारीफ की है तथा उनके पत्रों का भी जिक्र किया है, जो उन्होंने लेखकों को लिखे। [६]

इसके उपरांत रामविलास शर्मा जी को प्रखर और जिज्ञासु व्यक्ति मानकर वर्णन किया है। पाठकों को प्रेरणा मिलती है कि शर्मा जी नेशनल लाइब्रेरी में देर तक पढ़ते रहते थे। अक्सर लेखक उनसे मिलने नेशनल लाइब्रेरी पहुँच जाया करते थे। कोलकाता के राममंदिर में सभी बड़े विद्वान मिलकर तुलसी जयंती मनाते थे। कई वर्षों की कठिन साधना के उपरांत निराला जी की साधना प्रकाशित हुई। लेखक को अच्छे काम करने की शर्मा जी ने अनेक शुभकामनाएँ भी दीं। इस प्रकार लेखक रामविलास जी को हमेशा साहित्य से जुड़े हुए पाते हैं। रामविलास जी सरस्वती साधना में लीन हैं। [७]

डॉ.नगेन्द्र के विषय में लेखक उन्हें कर्मठ, वैदुष्य, सुदृढ़, अनुजाचक्र बताते हैं और उन्हें ये संसार हमेशा यशस्वी प्राध्यापक और मार्मिक समीक्षक के रूप में हमेशा स्मरण करता रहेगा। रामस्वरूप चतुर्वेदी को लेखक शालीनता और संवेदनशील बताते हैं। इस अध्याय के अंतर्गत पत्र लिखकर कविता पर बात करते हैं तथा उनके आमंत्रण पर भी इलाहाबाद जाते हैं। रामस्वरूप जी पाठकों को शिक्षा देते हैं कि जीवन में अपने उत्तरदायित्व को निभाना आवश्यक है। एक आदर्श प्राध्यापक कैसा होना चाहिए, आलोचक कैसा होना चाहिए आदि बातें इसके अंतर्गत बताते हैं।[८]

'याद आते हैं' रमानाथ अवस्थी जी द्वारा लिखित संस्मरण है, यह भी साहित्यिक संस्मरण इसलिए है क्योंकि इसमें निराला, महादेवी वर्मा, इलाचंद जोशी, बच्चन, वाचस्पति, पाठक, रसाल, नेपाली, स्वामी, दयाल, सरस्वती, अंततः खाँ इत्यादि शामिल हैं। ये सभी चरित्र इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, क्योंकि वे लोग कालजयी साहित्यकार हैं। कुछ लोग तो इनमें से समाज के उपेक्षित भी रहे। इन लोगों ने संसार की परवाह नहीं की। मुश्किल से मुश्किल घड़ी में अपने लक्ष्य को दुर्लक्ष नहीं किया। निराला जी एक ऐसे कवि रहे जिन्होंने अपने जीवन में बहुत कष्ट उठाया लेकिन साहित्य साधने के लक्ष्य को कभी छोड़ा नहीं। बचपन से लेकर जवानी तक उन्होंने साहित्य साधना नहीं छोड़ी इसलिए अपने जीवन की साधना का ध्वंस किया। कविता के बारे में जब भी कोई उनसे पूछता तो हमेशा सामने वाले को एक ही शिक्षा देते 'गिर कर कुछ न उठाइएगा चाहे वह कविता ही क्यूं न हो।'

महादेवी वर्मा के विषय में लेखक ने लिखा है कि प्रेम का पर्याय महादेवी यह एक ऐसा सम्मान है जिन्होंने साहित्य के साथ-साथ, शास्त्र के साथ-साथ कविता के साथ-साथ रहस्यमयी बातों को चित्रित किया है। महादेवी वर्मा जी की एक रचना सप्तपर्णी जब प्रकाशित हुई तो आकाशवाणी के अनेक कार्यक्रमों में उसका उदाहरण दिया जाता था। एक बार लेखक के घर पंत जी के साथ जब वो गयीं तो लेखक लिखते हैं कि वो इस सूचना से ही इतने मगन हो गये, जब उन्होंने अपनी पत्नी को बताया तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। महान हस्तियां हमेशा सरल होती हैं, जो कि महादेवी जी थी। महादेवी वर्मा एक शिक्षा संस्था चलाती थी, उनमें काम करने वाले लोग परिवार के सदस्य जैसे थे। महादेवी जी

को निराला जी के निधन का सदमा पहुँचा था, क्योंकि वो उन्हें भाई जैसा मानती थी।

'इलाचंद जोशी के विषय में लेखक ने लिखा है कि वह एक ऐसे महापुरुष थे, जो अपनी साधना, संघर्ष और श्रम से समाज को विकास की ओर ले गये। इन्होंने अपने जीवन के आखिरी समय में इतने कष्ट भोगे लेकिन अपने जानने वालों को कभी कष्ट नहीं दिया। वह मन के बहुत सच्चे इन्सान थे, कभी भी अपनी ओर से किसी को तकलीफ न पहुँचे, हमेशा यह ख्याल रखते थे। आज साहित्य को ऐसे तपस्वी दुर्लभ हैं। [९]

'कवि बच्चन के बारे में लिखता है कि सभी का जीवन एक ऐसा सफर है जो कभी घर बनता है कभी बस्ती लेकिन जब दीवानों की हस्ती बन जाती है तब इन मधुशाला के जरिए पढ़ा जा सकता है। बच्चन जी लेखक के गीत से बहुत प्रभावित हुए। बहुत अच्छेअच्छे वाकये लेखक ने बच्चन जी के बारे में लिखे हैं-, जिन्हें पढ़कर वास्तव में पाठक को नई दिशा मिलने जैसी है। [१०]

'वाचस्पति पाठक, नेपाली जी, परमानन्द सरस्वती जी तथा स्वामी खां के माध्यम से भी पाठकों को रेडियो में काम करने की जानकारी तथा दैनिक जीवन में कार्यकलापों को किस तरह से नितांत सहज ढंग से करना चाहिए। इस खां एवं नेवाज के रूप में एक आल्हा का आंसू कवि का ज्ञान पाठकों को इस संस्मरण के द्वारा मिल जाता है। तरंग शीर्षक से लेखक ने कुछ लेखों को प्रस्तुत किया है, जैसे श्रीमद्भागवत के अलग-अलग प्रसंगों का चित्रण, नारद भक्ति का चित्रण, भारत जैसे देश में अनेक धर्म और प्रवचन का महत्त्व, जीवन और मृत्यु के विषय में जानकारी सिद्ध की। यात्रा शरत बाबू के विषय में चर्चा साहित्य के उद्देश्य तथा जीवन के उद्देश्य में बातचीत, संस्कृत ग्रंथों एवं वेदों पर बातचीत, कविता की भाषा एवं गोष्ठियों की बात, कलियुग में महान विचार कैसे ग्रहण करे, इत्यादि लेखों के माध्यम से भी लेखक ने अच्छेस्मरण के अच्छे विचारों की पुष्टि करते हुए इस सं-माध्यम से पाठकों को यह प्रेरणा दी है कि जीवन ज्ञान, सत्य और संघर्ष के माध्यम से ही अच्छे ढंग से जिया जाता है।[११]

'नंदाबाबा फकीर से वजीर' यह एक साहित्यिक संस्मरण है, जो राजेन्द्र जोशी द्वारा संपादित किया गया है। वैसे तो इस संस्मरण के अंतर्गत साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनेता भी आते हैं। मैंने इसे साहित्य के अंतर्गत इसलिए रखा

कि यह एक साहित्यिक विधा है। इस संस्मरण में नई बात यह है कि एक ही संस्मरण में पूरा क्षेत्र आ जाता है। अपने मित्रों के साथसाथ-, पत्रों के साथसाथ-, डायरी लेखन के साथसाथ साहित्य-, संस्कृति और राजनीति से जुडे महानुभावों के अंतरंग प्रसंग भी उन्होंने चित्रित किये हैं। नंदबाबा या बालकवि बैरागी जी चूंकि ये केवल कवि नहीं थे, राजनेता और समाजसेवी भी थे, इसलिए यह संस्मरण और महत्त्वपूर्ण हो जाता है। दिग्विजय सिंह को जानना है, स्वदेश भारती को जानना हो या फिर विष्णु वैरागी को जानना हो सभी को चित्रों के साथ पत्रों के साथ और प्रश्नावली विधि से भी जाना जायेगा। हिंदी शोध विद्यार्थियों के लिए यह एक अनुपम संस्मरण है। [१२]

'लौटकर आना नहीं' यह साहित्यिक संस्मरण कांतिकुमार जैन जी द्वारा लिखा गया संस्मरण है। इस संस्मरण को उन्होंने सोलह शीर्षकों में बांटा है। अपने लेखक, मित्रों, गुरुओं, साहित्यकारों का चित्रण किया है। बच्चन जी, व्यंग्यकार परसाई, रजनीश (ओशो) को समेटते हुए शरत जोशी और दुष्यंत कुमार को भी शामिल किया है कि आज के समय में हिंदी पाठकों की बहुत कमी हो गयी है, इसका कारण वो साहित्य को कक्षा में पढ़ना मानते हैं। उनका मानना है कि यदि हिंदी साहित्य केवल पाठ्यक्रम तक निर्धारित कर दिया जायेगा तो ही उसे पाठकजन पढ़ेंगे लेकिन ऐसा नहीं है। सच तो यह है कि लिखित साहित्य हमेशा कालजयी होता है। इस प्रकार हिंदी लेखकों के संस्मरण बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जिन्हें कांतिकुमार जैन जी ने इसमें चित्रित किया है। [१३]

'समय के पाँव' यह माखनलाल चतुर्वेदी जी द्वारा लिखित साहित्यिक संस्मरण है। इस संस्मरण में लेखक ने बाइस शीर्षकों को सिद्ध किया है। जो राजनीतिक स्वतंत्रता सेनानी, लेखक और कवियों को चित्रित करते हैं। स्वाधीनता आन्दोलन भारतीय समाज में साथ ही सम्पूर्ण विश्व की महत्त्वपूर्ण परिघटनाओं में से एक है। भारत की जिन महत्त्वपूर्ण विभूतियों ने अपने दुर्बल समाज को सतर्क और संस्कारित किया, उन्हीं की कार्यप्रणाली एवं जीवनदर्शों का आत्मीय विवेचन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार यहाँ साहित्यिक संस्मरण महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। [१४]

'उग्र' का परिशिष्ट' यह साहित्यिक संस्मरण भवदेव पांडेय जी द्वारा रचित संस्मरण है। इस संस्मरण के अन्तर्गत लेखक ने उग्र जी के संस्मरण को असंकलित रचनाओं के लेख, उनकी संपादकीय तथा पत्रसाहित्य इत्यादि शीर्षक से -

चित्रित किया है। उग्र जी अपने समय के न केवल महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं, बल्कि साहित्यिक एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रांति पैदा कर देने वाली एक आवश्यक इन शीर्षकों को लेखक ने दो खण्डों में विभक्त किया है। प्रथम खण्ड के अन्तर्गत उग्र जी के संस्मरण में साहित्य, संस्कृति और पत्रकारिता को एक विशेष ऊँचाई प्रदान करने वाला पत्र ''मतवाला'' है। इस संस्मरण में विशेषतः बाहरी उग्र की अपेक्षा भीतरी उग्र को या कहें कि उनके गोपित मन को जानने समझने का प्रयास है। दूसरे खण्ड में दुर्लभ रचनाएँ हैं, जो अब तक अज्ञात या अल्पज्ञात और असंकलित रही हैं। साहित्यिक संस्मरण के रूप में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। [१५]

'हम हशमत' साहित्यिक संस्मरण की लेखिका कृष्णा सोबती जी हैं। यह संस्मरण का तीसरा खण्ड है। समकालीनों के संस्मरणों के बहाने इस शती पर फैला हिन्दी साहित्य समाज यहाँ अपने वैचारिक और रचनात्मक विमर्श के साथ उजागर है। हिंदी के सुर्धा पाठकों और आलोचकों ने हम हशमत को संस्मरण विधा में शामिल किया है। इसके अंतर्गत सत्येन, जयदेव, निर्मल वर्मा, अशोक वाजपेयी, देवेन्द्र इस्सर, निर्मल जैन, विभूतिनारायण, रविन्द्र कालिया, शम्भूनाथ, गिरधर राठी, आलोक मेहता और विष्णु खेर इत्यादि दिग्गज लेखकों के वार्तालाप को कृष्णा जी ने उसे संस्मरण का रूप प्रदान किया है। यह साहित्यिक संस्मरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। [१६]

2. सामाजिक परिस्थिति -

दूसरे स्थान पर 'अपनों से दूर अपनों के पास' सामाजिक संस्मरण है। जिसमें लेखक ने अपनी यात्राओं का वर्णन तथा जनजीवन से जुड़े सभी पक्षों को उजागर किया है। रामशरण जोशी जी इस संस्मरण के लेखक हैं। 1987 ईके पाकिस्तान . का वर्णन अपने ही विरुद्ध हिंसा करने वालों का जिक्र पूरा सच न जानकर जिया तहुआ मौलवियों की जमा, औरतों की आजादी, कानून सदैव मर्द के पक्ष में, फौजी हुकूमत और प्रेस की बातें इसी तरह कई शीर्षकों के माध्यम से इस संस्मरण को लिखा है। इस संस्मरण की विशेषता यह है 1988-89-90 तक पाकिस्तान का चित्रण है लेकिन 1987 में काबुल का चित्रण या यूं कहिए काबुली वालों की आँखों से देखा गया हिन्दुस्तान है। 1987 में श्रीलंका, 1988 में मॉरीशस, 1990 में नामिबिया और चीन का चित्रण किया गया है। सच में संस्मरण पढ़ने के उपरांत

उसका महत्त्व इस प्रकार बढ़ जाता है क्योंकि बिना पैसा खर्च किये इतने देशों की सैर पाठक कर लेता है और जान जाता है कि लेखक केवल भारत का ही चित्रण नहीं कर रहा है, वह अपने पड़ोसी देशों से उतना ही जुड़ा हुआ है। संस्मरण के सामाजिक वर्गीकरण के अन्तर्गत एक और संस्मरण आता है, उसका शीर्षक है 'यह जो पाकिस्तान' शिवेन्द्र कुमार जी ने इसे लिखा है और ये उन लोगों के बारे में लिखा गया है जो गुजरात से जाकर पाकिस्तान बस गये हैं। लेखक को यह लिखते हुए आनन्द मिला कि वहाँ पैसे से अधिक रिश्ते की अहमियत दिखाई दी। लेखक ने इस संस्मरण को अनेक शीर्षकों में वर्गीकृत किया है और भिन्नभिन्न - ए हुए है या यूं तरह के शीर्षक दिये हैं। यह शीर्षक अपने आप में अनोखापन लि कहिए कि अनेकता में एकता का भाव प्रस्तुत किये है। एक तरफ खेल के अध्याय क्रिकेट, डिप्लोमेसी तो दूसरी ओर सचिन का इंटरव्यू, शाहरुख खान की कसम, पाकिस्तान में हॉकी, अमिताभ ने रेखा से शादी क्यूं नहीं की, सलीम की सजा, अल्लाह के बंदे, लगन लागी तुमसे, मिलिए गेंदबाज महेंद्र सिंह धोनी से, अंततः टूट गया पाकिस्तान और क्रिकेट का रिश्ता। कमलेश्वर की एक बात याद आती है, यहाँ हर दिल में एक पाकिस्तान तो होता है। लेखक ने भी यही लिखा है। एक पाकिस्तान मेरे दिल में बसता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं, इस संस्मरण के माध्यम से मानो समाज के हर पहलू को समेटने का प्रयास किया है तथा पाठकों में हर विषय की जानकारी तथा रुचि जगाने का प्रयास किया है। [१७]

सामाजिक महिला संस्मरण उषा महाजन द्वारा लिखित एक संस्मरण है 'जिन्हें मैंने जाना' इस संस्मरण की विशेषता यह है कि इसमें महिलाओं की भागीदारी अच्छीखासी रही। इस संस्मरण को दो भागों में बाँटा गया है-, जिसमें पहले हिस्से में आठ प्रसिद्ध महिलाओं की चर्चा की है, दूसरे हिस्से में दस प्रसिद्ध पुरुषों की, यह मिलाजुला संस्मरण है। पाठक के लिए एक नई दिशा का नया - रास्ता, नई खोज का प्रतीक बनकर उनकी रुचि को बढ़ाने के लिए काफी है। इतना ही नहीं उषा जी का यह संस्मरण उन्हें नयेनये अनुभव प्रदान करेगा-, क्योंकि हर चरित्र अलगअलग क्षेत्र से संबंध रखता है। एक महिला अगर कथक नृत्य करती - है तो दूसरी ओर राजनीति में है, एक अगर व्यवसाय के क्षेत्र में है तो दूसरी लेखिका है। इस प्रकार एक ही जगह पर भिन्नभिन्न क्षेत्रों की यह हस्तियाँ - पाठकों पर अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रह पाएँगी। यही कारण है यह संस्मरण

समाज के लिए इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि वो पाठकों की स्वयं से मुलाकात करवायेगा। दूसरा भाग पुरुषों का है, जिसके अन्तर्गत खुशवंत जी जैसे लेखक, माधव जी जैसे राजनेता, संजय कपूर से लेकर शिरखेड़ा तक इसमें प्राप्त होता है। दिशाएँ अनंत ज्ञान, अनंत प्रभाव, अनंत पाठक को निश्चित ही प्रभाव पड़ता ही है, इसलिए इस तरह के संस्मरण समाज के लिए वरदान बन जाते हैं। भले ही यह लेखक के निजी संबंधों पर आधारित है, जो अंतरंग अनुभव हैं उन्हें महसूस तो पाठक भी कर लेते हैं और उन्हीं वाक्यों में से कभीकभी कोई वाक्य - पाठकों के जीवन परिवर्तित ही कर देते हैं। हमें यह कहते हुए कतई झिझक नहीं होती है कि संस्मरण विधा हिन्दी साहित्य जगत के लिए एक बहुमूल्यनिधि के रूप में सिद्ध होती है। [१८]

'नगातलाई का गाँव' यह एक सामाजिक संस्मरण है। इस संस्मरण के अंतर्गत लेखक ने सिर्फ अपने गाँव की स्मृति और अपनी स्मृति को ही चित्रित नहीं किया अपितु उन्होंने पूरे गाँव और गाँव के आसपास के पूरे परिवेश को लिया है। यह सबसे बड़ा सामाजिक संस्मरण है। हम कह सकते हैं कि उन्होंने नगातलाई की जानकारी दी है लेखक स्वयं को केंद्र में रखकर संपूर्ण भारतीय ग्रामीण सभ्यता ही दृष्टिगोचर होती है। दस शीर्षकों के अंतर्गत लिखा गया यह स्मृति आख्यान आत्मकथा से होते हुए महाकाव्यात्मक गाथा के करीब पहुँच गया है। अपने समय की यह एक अनूठा सामाजिक संस्मरण है। इस संस्मरण में लोक सौंदर्य है, सहज भाषा है तथा पूर्वी अवधी का समृद्ध भाषा संसार है। [१९]

'दर्द आया था दबे पाँव' यह एक सामाजिक संस्मरण है। इस संस्मरण के लेखक जेक्षण निर्माता और कौशल जी हैं। लेखक रंगमंच के प्रतिभाशाली शि .एस. लेखक हैं। इस संस्मरण में उन्होंने अट्ठाइस शीर्षकों का चयन किया है। प्रस्तुत सभी संस्मरण प्रायः चर्चित रंगकर्मियों से संबंध हैं और कुछ अवसरों को रेखांकित किया है। आजादी के बाद उभरे जिन व्यक्तियों ने भारतीय रंगमंच को नई दिशा दी है, उन्हें जानने, समझने में कौशल जी की यह महत्त्वपूर्ण कृति पाठकों के लिए निःसंदेह सहायक सिद्ध होगी इसलिए यह सामाजिक संस्मरण महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। [२०]

अगला सामाजिक संस्मरण गुलजार जी द्वारा लिखित 'पिछले पन्ने' से, यह संस्मरण एक सामाजिक दुर्लभ संस्मरण है। इस संस्मरण में आजादी के पहले की

तथा अब तक की घटनाएँ समाहित हैं। इस संस्मरण के अंतर्गत बाइस शीर्षक हैं जिसमें कुछ फिल्म जगत से जुड़ी हुई हस्तियाँ भी हैं। लेखक ने जिस अपनेपन से याद किया है, हम इस सामाजिक संस्मरण के माध्यम से उनके जीवन की उन अंधेरी कन्दराओं में भी झाँक आते हैं, जो इनकी शख्सियत की ऊपरी चमकीली रोशनियों में अब तक कहीं छिपी हुई थी। इस तरह यह सामाजिक संस्मरण महत्त्वपूर्ण हो जाता है। [२१]

पद्मा सचदेव जी द्वारा लिखित यह सामाजिक संस्मरण 'लता मंगेशकर ऐसा कहाँ से लाऊँ' संस्मरण है। डोंगरी कवयित्री और हिन्दी की प्रसिद्ध लेखिका हैं। चार दशक से अधिक समय हो गया जहाँ अपने मुंबई निवास में पद्मा जी की पहली भेंट स्वर साम्राज्ञी लता मंगेशकर से हुई और धीरेधीरे लता जी लता दीदी बन - -गई। उनके सम्पर्क में आने के बाद बड़े गायकों और संगीतकारों के साथ मेल ने लता जी जोल बढ़ गया। इस संस्मरण में लेखिका, लता जी की माँ, छोटी दीदी आशा भोंसले तथा उनके संपर्क में आये प्रबुद्ध लोगों की स्मृतियों के कुछ एक मोती एक धागे में पिरोये हैं। यह संस्मरण पाठकों के लिए बहुत पसंदीदा है। [२२]

'कारवाँ आगे बढ़े' यह सामाजिक संस्मरण कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर जी ने लिखा है। यह संस्मरण बीस शीर्षकों से रचा गया है। लेखक ने इस संस्मरण में घर, पड़ोस, नगर, देश सब कुछ शामिल किया है। लेखक को अपनी मिट्टी से बहुत प्रेम है, इसलिए इनकी पुस्तक में राष्ट्रीय चरित्र का चित्रण हुआ है, जो अन्य किसी भाषा में मिलना असंभव है। आज की युवा पीढ़ी अगर इसे एक आदर्श पुस्तक के रूप में पढ़ेगी तो निश्चित ही यह नई पीढ़ी के लिए मिसाल का काम करेगी। इस संस्मरण में केवल होंकार नहीं है वात्सल्य भी दिखाई देता है। लेखक सड़क पर होने वाले, स्टेशनों पर होने वाले, दफ्तरों में होने वाले, घरों में होने वाले, राष्ट्रीय जीवन में होने वाले हर बुरे कार्य को समाप्त कर अच्छी राह बनाना चाहता है। यह सामाजिक संस्मरण जो भी पढ़ेगा वह निश्चित ही प्रेरणा पायेगा और प्रगति की ओर अग्रसर होता जायेगा। [२३]

'स्मृति की रेखाएँ' ये संस्मरण महादेवी वर्मा द्वारा रचित सामाजिक संस्मरण है। इस संस्मरण के अंतर्गत सात अध्याय हैं। एकभक्तिन :, दोचीनी फेरीवाला :, तीनजंग बहादुर :, चारमुन्नू :, पाँचठकुरी बाबा :, छः बिबिया और सातगुंगिया : इत्यादि शीर्षक दिया है। भक्तिन के अंतर्गत लेखिका ने भक्तिन जो लेखिका की

सेविका है, उसका वर्णन किया है। भक्तिन बहुत समझदार है, लेखिका ने उसका चित्रण किया है। लेखिका ने भक्तिन के पूरे जीवन का चित्रण किया, कैसे सफर तय करके लेखिका के पास भक्तिन आयी, इसका भी जिक्र मिलता है। चीनी फेरीवाला के अंतर्गत लेखिका ने एक फेरीवाला का जिक्र किया है जो उनके यहाँ अक्सर सामान बेचने आता था। उसने अपनी कहानी लेखिका को बताई, लेखिका ने इसे सामाजिक संस्मरण में चित्रण किया है, जो लेखिका का सामान उठाकर केदारनाथ से बद्रीनाथ होते हुए श्रीनगर तक जंगबहादुर साथ गया। लेखिका ने उसका चित्रण किया है, जब लेखिका की यात्रा पूरी हुई और जंगबहादुर को उधर छोड़कर आगे बढ़ना था वह रोया था उसका भी चित्रण मिलता है। मुन्नू शीर्षक में लेखिका के यहाँ काम करने वाले का चित्रण मिलता है। जब भक्तिन बुढ़ापे के कारण शिथिल होने लगी थी तो लेखिका ने असिस्टेंट के रूप में उसे रख लिया था। उसका चित्रण मिलता है। ठकुरी बाबा शीर्षक से लेखिका ने बताया कि वे एक कवि थे और बहुत अच्छा भजन भी गाया करते थे, उसका भी चित्रण मिलता है। बिबिया शीर्षक से लेखिका ने अपने गाँव का जिक्र किया है जो लेखिका को जीजी कह कर पुकारती थी, उसका भी चित्रण मिलता है। गुंगिया शीर्षक से लेखिका ने गुंगिया का चित्रण किया है। [२४]

3. सांस्कृतिक परिस्थिति -

संस्मरण के वर्गीकरण के अन्तर्गत हम पारिवारिक वर्गीकरण की जब बात करते हैं तब हमें सबसे पहले पद्मा सचदेव की 'इन बिन' शीर्षक से लिखा संस्मरण याद आता है। इन्होंने एक ऐसे रिश्तों को सहेजा है जो अक्सर काम के उपरान्त धुंधले पड़ जाते हैं, लेकिन गुजरे हुए वक्त को अपने नौकरों की एक लंबी पंक्ति के द्वारा इस संस्मरण को महत्त्वपूर्ण बना दिया है। एक ओर मालिक वर्ग और दूसरी ओर नौकर। ये रिश्ते आपसी जरूरतों पर टिके होते हैं और लेखिका ने हर उम्र के नौकर का चिट्ठा इसमें पेश किया है। डोंगरी भाषा की कवयित्री स्वयं लिखती है कि बिना नौकर के उनका गुजारा संभव नहीं, सच भी है, लेखन के प्रति कितनी ईमानदारी रखने के कारण बाकी काम उनके लिए गौण थे, इसीलिए नौकरों की एक फेहरिस्त पेश करके यह बताया है कि हर मनुष्य वह काम करे जिसमें उसकी रुचि हो और पूरे मन से करके वह उसमें ख्याति पाये। ये परिवार के इर्दगिर्द -

घूमता रहने वाला संस्मरण है और मालिक और नौकर के संबंधों का खुला दस्तावेज है।[२५]

दूसरा सबसे महत्त्वपूर्ण पारिवारिक संस्मरण है 'घर का जोगी जोगड़ा', यह संस्मरण काशीनाथ सिंह जी द्वारा लिखा गया है। लेखक ने अपने भाई यानि प्रसिद्ध साहित्यकार, आलोचक नामवर सिंह जी को स्मृतिबद्ध किया है, साथ ही अपने पूरे परिवार को भी रचते चले गये हैं। लेखक ने इसके अंतर्गत रचनात्मक अनुभव प्रकट किये हैं, जिसे उन्होंने तीन शीर्षकों में बाँटा है। लेखक अपने भाई को कथा गुरु मानते हैं और जो कुछ भी वो अब तक अर्जित कर पाये हैं, उसका श्रेय वह उन्हीं को देना चाहते हैं। रचनात्मक कमजोरी और ताकत दोनों को जानने वाले उनके बड़े भाई ही थे। बड़े भाई ने उन्हें सन् 1960 में लिखने को कहा था, जिसे उन्होंने 1990 में पूरा किया। बाद में उन्होंने संस्मरण के रूप में अपने विचार प्रकट किये। बड़े भाई के पत्र के माध्यम से भी उनका मन हमेशा यह सोचने पर विवश होता है कि अगर भैया उनसे लिखने को कहते हैं तो उनके रचना का स्तर ऊँचा हो जाता है। संस्मरण के अन्त में प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग किया है, जिसके माध्यम से नामवर जी ने उनके प्रश्नों के उत्तर दिये हैं। इस प्रकार कई बड़े बड़े ख्यातनाम लेखक इस संस्मरण के माध्यम से पढ़ने को मिलते हैं।-[२६]

4. राजनीतिक परिस्थिति -

राजनीतिक संस्मरण के अंतर्गत पं सूर्यनारायण व्यास जी का संस्मरण . 'यादें' हैं। इसको यदि हम इस तरह से देखें कि उनके संबंध अधिकतर राजनेताओं से थे, उसी का परिणाम यह संस्मरण है, तो गलत न होगा। महामना मालवीय जी से आरंभ होकर गजेन्द्र गड़कर तक संबंध बना पाना और फिर उनकी यादों को समेटकर कलमबद्ध करना बड़ा ही कठिन काम है, लेकिन निश्चित ही यह संस्मरण पाठकों के लिए इसलिए वरदान सिद्ध होगा क्योंकि इनमें राजनेता, उद्योगपति, कलाकार, संत, क्रांतिकारी, साहित्यकार और कुछ लोगों के रेखाचित्र भी प्रस्तुत किये गये हैं। इससे एक बात का पता चलता है कि व्यास जी ने अपने जीवनकाल में मानव संबंधों का विस्तार बहुत सुन्दर बना रखा था, उसी का परिणाम यह संस्मरण है। राजनेता शीर्षक से सर्वप्रथम उन्होंने दो देवदूतों का जिक्र किया है, जिसमें पंडित जवाहर लाल नेहरू, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी आये हैं। उसके उपरांत युगपुरुष में उन्होंने गाँधी जी को ही संबोधित किया है। उन्हीं के शब्दों में गाँधीजी

युगपुरुष इसलिए रहे क्योंकि उन्होंने अपने युग को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। महान मालवीय जी, टण्डन जी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, कर्मयोगी नेहरू, डॉलोहिया ., शेख अब्दुल्ला, लाल बहादुर शास्त्री, सरदार पणिक्कर, गुलजारी लाल चंद, पं . रविशंकर शुक्ल, राज्यलक्ष्मी तथा सर्वोच्च न्यायाधीश श्री राजेन्द्र गड़कर के बारे में अपने संबंधों के साथसाथ देश के लिए किये गये कार्यों का वर्णन किया है। - राजनेताओं के उपरांत लेखक ने उद्योगपति, उद्योगपुरुष नामक शीर्षक से छः व्यक्तियों का चित्रण किया है। जुगल किशोर बिड़ला, बंधु अरविंद भाई इसके उपरांत कलाकारों के विषय में उन्होंने चित्रण किया है, जिसके अंतर्गत स्वर सम्राट पं . ओंकारनाथ ठाकुर, पृथ्वीराज, बालगंधर्व, फैयाज खाँ, कुमार गंधर्व, फड़के जी का जिक्र किया है। ये सभी भारत ही नहीं विश्व की जानीमानी हस्तियाँ हैं। आज प-ाठक चाहकर भी इनसे मिल नहीं सकते लेकिन इन्हें पढ़कर उनके कला गुणों से प्रभावित होकर उनके आदर्शों को ग्रहण करके अपने जीवन को अवश्य ही नया मोड़ दे पाने में सफल सिद्ध होंगे। ऐसे संस्मरण पाठकों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, क्योंकि एक जगह या पूरे भारत की जानी-मानी हस्तियों से रू-ब-रू होने का अवसर प्राप्त हो जाता है। संत विद्यानिवास जी, मुनि सुशील कुमार, पं. दीनानाथ महाराज, आचार्य तुलसी, इनसे भी पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते, इतना ही नहीं क्रांतिकारी पुरुष के साथ-साथ वीरांगना सज्जन देवी मुंहतोटा के विषय में भी लेखक ने चित्रण किया है।[२७]

निष्कर्ष रूप में यह इतना कह सकते हैं कि साहित्यिक संस्मरण और सामाजिक संस्मरण खूब लिखे गये हैं, पर पारिवारिक संस्मरण और राजनीतिक संस्मरण बहुत कम, इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि हमारे साहित्यकार साहित्यिक संगोष्ठियों और साहित्यकारों से ही सरोकार रखते हैं, जो अपने आप से सामाजिक संस्मरण होना वाजिब है। साहित्यकारों को अपने परिवार से ऐसा नहीं कि वे मुँह मोड़े हुए हैं, पर उनका पूरा समाज साहित्यकार उनका पहला परिवार है। राजनीति से उनका कुछ ज्यादा सरोकार नहीं होता, वह अपने साहित्य, समाज को बनाने में जुटे रहते हैं। हम पाठकों के लिए साहित्यकार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उसके अंदर संस्मरण विधा और भी महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (तृतीय अध्याय)

[१] राम कमल राय, स्मृतियों का शुक्ल पक्ष, पृ.सं. 5, 20, 30

[२] कांति कुमार जैन, जो कहूँगा सच कहूँगा, पृ.सं. 7, 8

[३] केशव चन्द वर्मा, सुमिरन को बहानो, पृ.सं. 1, 2

[४] कृष्ण बिहारी, नेह के नाते अनेक, पृ.सं. 1

[५] विष्णु प्रभाकर, साथ-साथ चल रही याद, पृ.सं. 5, 7, 8, 9

[६] विष्णु प्रभाकर, साथ-साथ चल रही याद, पृ.सं. 5, 7, 8, 9

[७] विष्णु प्रभाकर, साथ-साथ चल रही याद, पृ.सं. 5, 7, 8, 9

[८] विष्णु प्रभाकर, साथ-साथ चल रही याद, पृ.सं. 5, 7, 8, 9

[९] रमानाथ अवस्थी, याद आते हैं, पृ.सं. 10, 18, 25, 30

[१०] रमानाथ अवस्थी, याद आते हैं, पृ.सं. 10, 18, 25, 30

[११] रमानाथ अवस्थी, याद आते हैं, पृ.सं. 10, 18, 25, 30

[१२] राजेन्द्र जोशी, नंद बाबा फकीर से वजीर, पृ.सं. 7

[१३] कांति कुमार जैन, लौटकर आना नहीं, पृ.सं. 11, 23

[१४] माखन लाल चतुर्वेदी, समय के पाँव, पृ.सं. 20

[१५] भवदेव पांडेय, उग्र का परिशिष्ट, पृ.सं. 7

[१६] कृष्णा सोबती, हम हशमत, पृ.सं. 1, 2, 5

[१७] रामशरण जोशी, पर अपनों से दूर अपनों के पास, पृ.सं. 2

[१८] उषा महाजन, जिन्हें मैंने जाना, पृ.सं. 15, 16

[१९] विश्वनाथ त्रिपाठी, नगा तलाई गाँव, पृ.सं. 22

[२०] जे.एस. कौशल, दर्द आया था दबे पाँव, पृ.सं. 20

[२१] गुलजार, पिछले पन्ने, पृ.सं. 30

[२२] पद्मा सचदेव, लता मंगेशकर कहाँ से लाऊँ , पृ.सं. 6

[२३] कन्हैयालाल मिश्र, कारवाँ आगे बढ़े, पृ.सं. 13

[२४] महादेवी वर्मा, स्मृति की रेखाएँ , पृ.सं. 20, 24, 25

[२५] पद्मा सचदेव, इन बिन, पृ.सं. 9, 10, 11

[२६] सूर्यनारायण व्यास, यादें, पृ.सं. 12,13,14,15,16

[२७] सूर्यनारायण व्यास, यादें, पृ.सं. 12,13,14,15,16

चतुर्थ अध्याय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी संस्मरणात्मक साहित्य के प्रमुख संस्मरणकारों का परिचय

1) रामदरश मिश्र
2) विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
3) विद्यानिवास मिश्र
4) मनोहर श्याम जोशी
5) कांति कुमार जैन
6) विष्णु प्रभाकर
7) डॉ.विवेकी राय
8) विश्वनाथ त्रिपाठी
9) ओम थानवी
10) रामशरण जोशी
11) काशीनाथ सिंह
12) ममता कालिया
13) निर्मला जैन
14) नरेन्द्र कोहली
15) राजेश जोशी
16) कृष्णा सोबती
17) गोविन्द मिश्र
18) मैत्रेयी पुष्पा
19) कन्हैयालाल नन्दन
20) ऋचा नागर

चतुर्थ अध्याय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी संस्मरणात्मक साहित्य के प्रमुख संस्मरणकारों का परिचय

1. रामदरश मिश्र:

परिचय -

डॉ रामदरश मिश्र का जन्म .15 अगस्त 1924 को हुआ था। हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। ये जितने समर्थ कवि हैं उतने ही समर्थ उपन्यासकार और कहानीकार हैं। इनकी लंबी साहित्ययात्रा समय के कई मोड़ों से गुजरी है - प्राप्त होती गई है। ये किसी वाद के कृत्रिम दबाव और नित नूतनता की छवि को में नहीं आये, बल्कि उन्होंने अपनी वस्तु और शिल्प दोनों को सहज ही परिवर्तन होने दिया।

अपने परिवेशगत अनुभवों एवं सोच को सृजन में उतारते हुए उन्होंने अपनी गाँव की मिट्टी, सादगी और मूल्यगर्भिता को अपनी रचनाओं में व्याप्त होने दिया जो उनके व्यक्तित्व की पहचान भी है। गीत, नई कविता, छोटी कविता, लंबी कविता यानी कि कविता की कई शैलियों में[१] उनकी सृजनात्मक प्रतिभा ने अपनी प्रभावशाली अभिव्यक्ति के साथ-साथ गजल में भी उन्होंने अपनी सार्थक उपस्थिति रेखांकित की। इसके अतिरिक्त उपन्यास, कहानी, संस्मरण, यात्रा वृत्तान्त, डायरी निबन्ध आदि सभी विधाओं में उनका साहित्यिक योगदान बहुमूल्य है।

प्रारंभिक जीवन -

डॉ.रामदरश मिश्र का जन्म हिन्दी तिथि अनुसार श्रावण पूर्णिमा गुरुवार को गोरखपुर जिले के कछार अंचल के गाँव दुभरी में हुआ था।[२] उनके पिता का नाम रामचन्द्र मिश्र और माता का नाम कँवलपाति मिश्र है। ये तीन भाई हैं स्व0 रामअवध मिश्र, रामनवल मिश्र तथा ये स्वयं, जिनमें ये सबसे छोटे हैं, उनसे छोटी

एक बहिन है कमला। मिश्र जी की प्रारंभिक शिक्षा मिडिल स्कूल तक गाँव के पास के एक स्कूल में हुई।

फिर उन्होंने ढरसी गाँव स्थित 'राष्ट्रभाषा विद्यालय' से विशेष योग्यता बरहज से विशारद और साहित्य रत्न की परीक्षाएँ पास कीं। 1945 में ये वाराणसी चले गये और वहाँ एक प्राइवेट स्कूल में सालभर मैट्रिक की पढ़ाई की। मैट्रिक पास करने के पश्चात् ये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से जुड़ गये और वहीं से इंटरमीडियट, हिन्दी में स्नातक और स्नातकोत्तर तथा डॉक्टरेट किया। सन् 1956 में सयाजी राव गायकवाड़ विश्वविद्यालय, बड़ौदा में प्राध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति हुई। 1958 में ये गुजरात विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हो गये और आठ वर्ष तक गुजरात में रहने के पश्चात् 1964 में दिल्ली विश्वविद्यालय में आ गये। वहाँ से 1970 में प्रोफेसर के रूप में सेवामुक्त हुए।

साहित्य सेवा -

रामदरश मिश्र हिन्दी साहित्य संसार के बहुआयामी रचनाकार हैं। उन्होंने गद्य एवं पद्य की लगभग सभी विधाओं में सृजनशीलता का परिचय दिया है और उनकी अनूठी रचना समाज को दी है। चार बड़े और आठ सलघु उपन्यासों में . मिश्र जी ने गाँव और शहर की जिन्दगी के संश्लिष्ट और सघन यथार्थ की गहरी पहचान की है। मिश्र जी की साहित्यिक प्रतिभा बहुआयामी है। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना और निबंध जैसी प्रमुख विधाओं में तो लिखा ही है। आत्मकथा सहचर है - समय, यात्रा वृत तथा संस्मरण भी लिखे हैं। यात्राओं के अनुभव तना हुआ इन्द्र धनुष, भौर का सपना तथा पड़ोस की खुशबू में अभिव्यक्त हुए हैं। उन्होंने अपनी संस्मरण पुस्तक स्मृतियों के छन्द में उन अनेक वरिष्ठ लेखकों, गुरुओं और मित्रों के संस्मरण दिये हैं, जिनसे उन्हें अपनी जीवन यात्रा तथा साहित्य यात्रा में काफी कुछ प्राप्त हुआ है। ये रचना कर्म के साथसाथ - आलोचना कर्म से भी जुड़े रहे हैं। उन्होंने आलोचना, कविता और कथा के विकास और उनके महत्त्वपूर्ण पड़ावों की बहुत गहरी और साफ पहचान की है।

हिन्दी उपन्यासएक अंत यात्रा :, हिन्दी कहानीअंतरंग पहचान :, हिन्दी कविताआधुनिक आयाम :, छायावाद का रचना लोक, उनकी महत्त्वपूर्ण समीक्षा पुस्तक हैं। [3]

मिश्र जी ने अपनी सृजनयात्रा कविता से प्रारम्भ की थी। आज तक ये - शिद्दत से जी रहे हैं। उनका पहला काव्य संग्रह पथ के गीत उसमें1951 में प्रकाशित हुआ था, तब से आज तक उनके 9 कविता संग्रह आ चुके हैं।[४] बैरंग बेनाग चिटियाँ, पक गई है धूप। कंधे पर सूरज, दिन एक नदी बन गया, जुलूस कहाँ जा रहा है, आग कुछ नहीं बोलती, बारिश में भीगते बच्चे और हँसी ओठ पर आँखें नम हैं (गजल संग्रह) ऐसे में जब कभी नवीनतम काव्य संग्रह प्रेस में है। रामदरश मिश्र ने समयसमय पर ललित निबन्ध भी लिखे हैं जो कितने बजे तथा- बबूल और कैक्टस में संग्रहित है। इस निबंध में अपनी वस्तुगत मूल्यता तथा लेखकों और पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया भाषा शैलीगत सहजता से है। मिश्र जी ने देश की यात्राओं के अतिरिक्त नेपाल, चीन, उत्तरी कोरिया, मास्को, इंग्लैण्ड की भी यात्रा की है।

रामदरश मिश्र के साहित्य पर समीक्षा पुस्तकें -

1. उपन्यासकार रामदरश मिश्र सम्पादकरू डॉ. प्रकाश अमिताभ तथा डॉ. प्रेम कुमार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, (1982)
2. कथाकार रामदरश मिश्र लेखकरू डॉ. सूर्यदीन यादव, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली (1987)
3. रचनाकार रामदरश मिश्र सं. डॉ. नित्यानन्द तिवारी तथा डॉ. ज्ञानचंद गुप्त, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, (1990)
4. रामदरश मिश्र की सृजन यात्रा लेखक डॉ. महावीर सिंह चैहान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, (1991)
5. कवि रामदरश मिश्र सम्पादकरू डॉ. महावीर सिंह चैहान तथा डॉ. नवनीत सिंह गोस्वामी, संस्कृति प्रकाशन, अहमदाबाद (1991)
6. रामदरश मिश्र का व्यक्तित्व व कृतित्व लेखक डॉ. फूलबदन यादव, राधा प्रकाशन, दिल्ली (1992)
7. मूल्य और मूल्य संक्रमण (रामदरश मिश्र के उपन्यासों के संदर्भ में) लेखक डॉ. विनीता राय, अनिल प्रकाशन, इलाहाबाद (1999)
8. रामदरश मिश्ररू व्यक्ति और अभिव्यक्ति संपादकरू डॉ. स्मिता मिश्र तथा डॉ. जगन सिंह वाणी प्रकाशन दिल्ली (1999)

9. रामदरश मिश्र रचना समय, लेखक डॉ. वेदप्रकाशन अमिताभ, भारत पुस्तक भण्डार दिल्ली (1999)

10. रामदरश मिश्र की उपन्यास यात्रा लेखक डॉ. प्रभुलाल डी. वेश्य, डॉ गुंजनलाल शाह, शाह प्रकाशन, अहमदाबाद (2001)

योगदान -

प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में मिश्र जी की कविताओं और कहानियों के अनुवाद हुए हैं। उनका एक उपन्यास 'अपने लोग' गुजराती में अनूदित है। उनकी रचना विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रमों में पढ़ाई जा रही है और देश के अनेक विश्वविद्यालयों में उनके साहित्य पर अनेक शोध कार्य हो चुके हैं और लगातार हो रहे हैं। मिश्र जी देश की अनेक साहित्यिक और अकादमिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित किये जा चुके हैं। 21 अप्रेल, 2007 को पटना में प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'नई धारा' द्वारा तृतीय उदयराज सिंह स्मारक व्याख्यान तथा साहित्यकार सम्मान समारोह में प्रसिद्ध साहित्यकार सम्मान समारोह में प्रतिष्ठित साहित्यकार उदयराज सिंह पत्नी श्रीमती शीला सिन्हा ने डॉ. रामदरश मिश्र को उदयराज सिंह स्मृति चिन्ह से सम्मानित किया। उनकी अनेक कृतियाँ पुरस्कृत हुई हैं। ये अनेक साहित्यिक, अकादमिक और सामाजिक संस्थाओं के अध्यक्ष रह चुके हैं। कई लघु पत्रिकाओं के सलाहकार संपादक हैं। [५]

2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी -

परिचय -

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी 20 जून, 1940 को कुशीनगर के रायपुर भैंसही-भेडिहारी गाँव में जन्मे आचार्य शिक्षक भी रहे। प्रो. तिवारी गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद से वर्ष 2001 में सेवानिवृत्त हुए। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी साहित्य के अनवरत सहज साधन हैं। उन्होंने अपने गाँव की धूल पगडण्डी से इंग्लैण्ड, मॉरीशस, रूस, नेपाल, अमरीका, नीदरलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, लक्जमबर्ग, बेल्जियम, चीन, ऑस्ट्रिया, जापान और थाइलैण्ड की जमीन नापी है। इन्होंने उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान से कई संस्थान के कई सम्मान हासिल किये। रूस की राजधानी मास्को में साहित्य के प्रतिष्ठित पुश्किन सम्मान से नवाजे गये।

उन्हें उत्तरप्रदेश की सरकार ने शिक्षक सम्मान दिया। उन्हें उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा साहित्य भूषण सम्मान, हिंदी गौरव सम्मान, केन्द्रीय हिंदी संस्थान द्वारा यहाँ पण्डित सांकृत्यायन सम्मान, महादेवी वर्मा गोइन्का सम्मान, भारतीय भाषा परिषद का कृति सम्मान मिल चुका है। उनके द्वारा संपादित पत्रिका 'दस्तावेज' को सरस्वती सम्मान मिल चुका है। [६]

रचनाएँ -

उनका रचना कर्म देश और भाषा की सीमायें तोड़ता है। उड़िया अनुवाद के रूप में इनकी कविताओं के दो संकलन प्रकाशित हुए। हजारी प्रसाद द्विवेदी पर लिखी इनकी आलोचना पुस्तक पर गुजराती और मराठी भाषाओं में अनुवाद हुआ है, इसके अलावा रूसी, नेपाली, अंग्रेजी, मलयालम, पंजाबी, मराठी, बांग्ला, गुजराती, तेलुगु, कन्नड़, तमिल, असमिया व उर्दू में भी इनकी रचनाओं का अनुवाद हुआ है।

1978 से हिन्दी की साहित्यिक पत्रिका 'दस्तावेज' का लगातार संपादन-प्रकाशन कर रहे हैं। दस्तावेज के लगभग दो दर्जन विशेषांक प्रकाशित हुए हैं जो ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। उनके शोध व आलोचना के 12 ग्रंथ, 7 कविता संग्रह, 4 यात्रा संस्मरण, 3 लेखक-संस्मरण व 1 साक्षात्कार पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। उन्होंने हिन्दी के कवियों की आलोचनाओं पर केन्द्रित 16 अन्य पुस्तकों का सम्पादन किया है। उनकी डायरी दिन रैन तथा आत्म कथा (अस्ति और भवति) भी प्रकाशित हो चुकी है।[७]

रचनाएँ -

मनुष्यता का दुख, मंजिल, कहाँ देखा है इसे, प्रतिबद्धता, स्त्री की तीर्थ यात्रा, आखिर, पूँजी, बेड़ियों के विरुद्ध, मुझे संतोष है, शब्द के लिए बुरा वक्त, शुरुवात, सड़क पर लम्बा आदमी, भवसागर, आखर अनन्त, उन आँखों में, चुनौती, मिट्टी की छाया, कैसे लोग थे हम।

यात्रा संस्मरण -

1. आत्म की धरती, अंतहीन आकाश
2. एक नाव के यात्री
3. मेरे साक्षात्कार
4. मानव ही मानव की तीसरी आँख [८]

3. विद्या निवास मिश्र -

परिचय -

पं विद्या निवास मिश्र का जन्म .28 जनवरी, 1925 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के पकड़डीहा गाँव में हुआ था। वाराणसी और गोरखपुर में शिक्षा प्राप्त करने वाले श्री मिश्र ने गोरखपुर विश्वविद्यालय से वर्ष 1960-61 में पाणिनी की व्याकरण पर डॉक्टरेट की उपाधि अर्जित की थी।

संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान, जाने माने भाषाविद् हिन्दी साहित्यकार और सकल सम्पादन थे (नवभारत टाइम्स), उन्हें सन् 1999 में भारत सरकार ने साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया था।

ललित निबन्ध परम्परा में ये आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और कुबेर नाथ राय के बाद आते हैं। अगर कोई हिन्दी साहित्यकार ललित निबन्धों को वांछित ऊँचाइयों पर ले गया, तो हिन्दी जगत में डॉ. विद्या निवास मिश्र का ही जिक्र होता है।

प्रो. मिश्र हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार थे। आपकी विद्वता से हिन्दी जगत का कोना-कोना परिचित है। उन्होंने अमेरिका के बर्कले विश्वविद्यालय में भी शोध कार्य किया था। वर्ष 1967-68 में वाशिंगटन विश्वविद्यालय में अध्येता रहे थे। मध्यप्रदेश में सूचना विभाग में कुछ समय कार्यरत् रहने के बाद वे अध्यापन के क्षेत्र में आ गये। वे 1968 से 1977 तक वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में अध्यापक रहे। कुछ वर्ष बाद वे इसी विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। उनकी उपलब्धियों की लम्बी श्रृंखला है लेकिन वे हमेशा अपनी कोमल भाषाभिव्यक्ति के कारण सराहे गए हैं। उनके ललित निबंधों की महक साहित्य जगत् में सदैव बनी रहेगी।

गोरखपुर विश्वविद्यालय ने पाणिनीय व्याकरण की विश्लेषण पद्धति पर आपको डॉक्टरेट की उपाधि प्रदान की। लगभग दस वर्ष तक हिन्दी साहित्य एवं तुलनात्मक भाषा विज्ञान का अध्ययन किया एवं वाशिंगटन विश्वविद्यालय में हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया। आपने वाणरासेय संस्कृत विश्वविद्यालय में भाषा विज्ञान एवं आधुनिक भाषा विज्ञान के आचार्य पद पर भी कार्य किया है। राफ ने आपकी साहित्यिक सफलताओं को तरजीह देते हुए सांसद नियुक्त किया।

साथ ही देश ने उनकी सफलताओं, त्याग तथा ईमानदारी के लिए पद्म भूषण सम्मान से भी विभूषित किया। [९]

वर्तमान में प्रोमिश्र भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासी बोर्ड के सदस्य थे और . मूर्ति देवी पुरस्कार चयन समिति के अध्यक्ष भी थे।

प्रो. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्धों की शुरुआत में पहला निबन्ध संग्रह 1952 में चितवन की छाँह प्रकाश में आया है। आपने हिन्दी जगत को ललित निबन्ध परम्परा से अवगत कराया है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रोमिश्र जी का लेखन . आधुनिकता की मार, देशकाल की विसंगतियों और मानव की यंत्रणा का चरम आख्यान है। जिसमें वे पुरातन से अद्यतन आदि अद्यतन से पुरातन की बौद्धिक यात्रा करते हैं। मिश्र जी के निबंधों का संसार इतना बहुआयामी है कि प्रकृति, लोक तत्व, बौद्धिकता, सृजनात्मकता, कल्पनाशीलता, कलात्मकता, रचनात्मकता, भाषा की उर्वर सृजनात्मकता, सम्प्रेषणीयता इन निबन्धों में एक साथ अन्तर्ग्रंथित मिलती है।

रचनाएँ -

श्री विद्यानिवास मिश्र की हिन्दी और अंग्रेजी में दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं। इसमें महाभारत का काव्यार्थ और भारतीय भाषा दर्शन की पीठिका प्रमुख है। ललित निबन्धों में ''तुम चंदन हम पानी'', ''वसंत आ गया'' और शोध ग्रन्थों में ''हिन्दी की शब्द संपदा'' चर्चित कृतियाँ हैं।

अन्य ग्रन्थ -

स्वरूप विमर्थ, कितने मोरचे, गांधी का करुण रस, चिड़ियों का रैन बसेरा, चितवन की छाँह (निबंध संग्रह), तुलसीदास भक्ति प्रबंध का नया उत्कर्ष, थोड़ी सी जगह (घुसपैठियों पर आधारित निबंध), फागुन दुई रे दिना, बसंत आ गया पर कोई उत्कण्ठा नहीं, भारतीय संस्कृति के आधार, भ्रमरा नेड का पचड़ा, रहिमन पानी राखिए, राधा माधव रंग रंगी, लोक और लोक स्वर, वाचिन कविता अवधि, वाचिन कविता भोजपुरी, व्यक्ति(विशिष्ट व्यक्त व्यंजन निबंध) चेतना-, सपने कहाँ गये (कस्वाधीनता संग्राम पर पुस्त), साहित्य सरोवर, हिन्दी साहित्य का पुनरावलोकन, हिन्दी और हम, आज के हिन्दी कवि अज्ञेय। -

1. संस्मरण विद्यानिवास मिश्र जी का इमली के बीया -
2. कविता संग्रह पानी की फुआर -
3. सम्पादित साहित्य स्तबन -, वैयाकरणं भूषणम्, आधुनिक हिन्दी निबन्ध, गति और रेखा, आधुनिक निबन्धावली, देव की दीप शिखा, रसखान रचनावली, संघर्ष के सोपान, आज के लोकप्रिय कवि अज्ञेय -, हिन्दी सेवा की संकल्पना, रहीम रचनावली, तुलसी मंजरी, भारतेन्दु मुकुट, संस्कृत साधना
4. खोजपूर्ण साहित्य हिन्दू धर्म जीवन में सनातन की खोज -, भारतीय भाषा शास्त्रीय चिन्तन की पीठिका, रीति रिवाज, हिन्दी धर्म दीपिका, भाषा और सम्प्रेषण, महाभारत का काव्यार्थ।
5. ध्वनि रूपक पेचनार -
6. पत्रिकाओं का संपादन - वित्‍ध भूमि त्रैमासिक 56 अंक, अभिरुचि 4 अंक, साहित्य अमृत मासिक (1995 से लगातार)।

4. मनोहर श्याम जोशी

परिचय -

मनोहर श्याम जोशी जी का जन्म 9 अगस्त सन् 1933 को अजमेर में हुआ था। उनकी स्कूली पढ़ाई अच्छी तरह से हुई। उनकी स्नातक लखनऊ विश्वविद्यालय में विज्ञान से हुई है। मनोहर श्याम जोशी को 'कल के वैज्ञानिक' की उपाधि प्राप्त हुई थी पर रोजीजीवन से ही लेख और पत्रकार रोटी की खातिर छात्र-बन गये। अमृतलाल नागर और अज्ञेय जी के आशीर्वाद प्राप्त थे। स्कूल में मास्टरी, क्लर्की और बेरोजगारी के अनुभव बटोरने के बाद वह अपने 21 वर्ष की आयु में ही वह पूरी तरह मसिजीवी बन गये। (पत्रकार-लेखक)

प्रेस, रेडियो, टी.वी., वृत्तचित्र, फिल्म, विज्ञानसम्प्रेषण का ऐसा कोई माध्यम - कूद से -नहीं जिसके लिए उन्होंने सफलतापूर्वक लेखन कार्य न किया हो। खेल लेकर दर्शनशास्त्र तक ऐसा कोई विषय नहीं जिस पर उन्होंने कलम न उठाई हो। आलसीपन और आत्मसंशय उन्हें रचनाएँ पूरी कर डालने और छपवाने से हमेशा रोकता चला आया था। पहली कहानी तब छपी थी जब वह अठारह वर्ष के थे। उनके दो उपन्यास 'कुरू कुरू स्वाहा' (1980) में और 'कलप' (1982) में प्रकाशित हुई

थी जिसने हिंदी जगत का ध्यान आकृष्ट कर लिया। जोशी जी के उसके बाद और उपन्यास आये 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' (सन् 1994), 'हमजाद' (1996), 'तटा - प्रोफेसर' (2001), 'क्याप' (2001), 'कौन हूँ मैं' (2006) प्रकाशित हुए।

केन्द्रीय सूचना सेवा और 'टाइम्स ऑफ इंडिया' समूह से होते हुए सन् 1967 में 'हिंदुस्तान टाइम्स' प्रकाशन में साप्ताहिक हिंदुस्तान के संपादक बने और वहीं एक अंग्रेजी साप्ताहिक का भी संपादन किया।[१०११]

5. कांति कुमार जैन -

परिचय -

डॉ कांतिकुमार का जन्म .डॉ - कांति कुमार जैन का साहित्यिक परिचय .9 सितम्बर 1932 में मध्यप्रदेश के सागर जिले में देवरीकला में जन्म हुआ है। उनकी शिक्षा दीक्षा कोरिया के बैकुंठपुर में हुई। (छत्तीसगढ़)1948 में मैट्रिक करने के बाद उच्च शिक्षा सागर विश्वविद्यालय से पूरी की।

मैट्रिक में हिन्दी में विशेष योग्यता के लिए कोरिया दरबार की ओर से स्वर्ण पदक मिला। स्कूली शिक्षा पूर्ण करने के बाद उच्च शिक्षा के लिए वे पुनः सागर आ गये। सागर विश्वविद्यालय के प्रतिभावान छात्रों में स्थान बनाते हुए उन्होंने सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं तथा स्वर्ण पदक प्राप्त किया। प्रो . कांतिकुमार जैन को अध्ययन अध्यापन से आरम्भ से ही लगाव रहा। सन् 1956 में मध्यप्रदेश के अनेक महाविद्यालयों में शिक्षण कार्य करने के उपरान्त सन् 1978 से 1992 तक डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय में माखनलाल चतुर्वेदी पीठ पर हिन्दी प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष रहे। प्रो. कांतिकुमार जैन, सागर विश्वविद्यालय की बुंदेली पीठ से प्रकाशित होने वाली बुंदेली लोक संस्कृति पर आधारित ईसरी को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई।[१२]

प्रोकांतिकुमार जैन ने कई महत्त्वपूर्ण शोधात्मक पुस्तकें लिखीं। जिनमें . व्याकरण और कोश-छत्तीसगढ़ बोली, नई कविता, भारतेन्दु पूर्व हिन्दी गद्य, कबीरदास, इक्कीसवीं शताब्दी की हिन्दी तथा छायावाद की मैदानी और पहाड़ी शैलियाँ आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। ललित एवं आलोचनात्मक निबंधों के साथ ही जब संस्मरण लेखन में सक्रिय हुए, तब उनकी विशिष्ट शैली ने हिन्दी साहित्य जगत् में मानो एक नयी धारा चला दी। सन् 2002 में उनकी पहली पुस्तक 'लौट

कर आना नहीं होगा' प्रकाशित हुई। मुक्तिबोध और परसाई के घनिष्ठ मित्र रहे प्रो . कांतिकुमार जैन ने एक संस्मरण पुस्तक लिखी'तुम्हारा परसाई' जो सन् 2004 में प्रकाशित हुई। इसके बाद सन् 2006 में 'जो कहूँगा सच कहूँगा' सन् 2007 में 'अब तक बात फैल गई', 2011 में 'बैकुण्ठपुर में बचपन' प्रकाशित हुई।

कांति कुमार जैन की सहज वर्णनात्मक कला ने पुस्तक के कलेवर को इतना प्रवाहमय बना दिया है कि एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद इसे पूरा करके ही पाठक इसे एक ओर रख सकेगा, बिल्कुल टाइम मशीन में बैठकर किसी अलग कालखण्ड की यात्रा पूरी करने जैसी अनुभूति के साथ। [१३]

लेखन क्षेत्र में सतत् सक्रिय रहने वाले प्रो. कांतिकुमार जैन ने अपने मित्र मुक्तिबोध से जुड़ी स्मृतियों को सहेजते हुये 'महागुरु मुक्तिबोध जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर' नाम से संस्मरण पुस्तक लिखी, जो सन् 2014 में प्रकाशित हुई। इसी क्रम में सन् 2015 में कोरिया के एक राजा पर 'एक था राजा' प्रकाशित हुई जिसकी भूमिका में प्रो. कांतिकुमार जैन ने लिखा है।

एक था राजा में कोरिया के राजा रामानुज प्रताप सिंह देव के प्रादर्श प्रमाप और प्रशासन के नख चित्रात्मक संस्मरण। ये संस्मरण पूरे व सांगोपांग प्रकृति के नहीं हैं। बल्कि 65-70 वर्ष बाद भी जो व्यक्ति स्थान घटनाओं या प्रसंग मेरी स्मृति में हिलते रह गये हैं। उनका कहीं हल्का एवं कहीं विस्तृत आलेख। प्रायः हलका ही। यह सामग्री मैंने अपनी कुछ स्मृतियों से जुटाई है, कुछ जन जातियों से। अधिकांश राजा रामानुज प्रताप सिंह देव के चौथे पुत्र डॉरामचन्द्र सिंह देव . सौजन्य से। के

प्रोकांति कुमार जैन का एक बहुत ही रोचक संस्मरण है ., पप्पू खवास का कुनबा। वे अपने संस्मरण लेखन में जिस प्रकार चुटेले शब्दों का सहज भाव से प्रयोग करते हैं उससे उनके लेखन में सदैव ताजेपन का बोध होता है। अपने संस्मरण लेखन के कारण कई बार उन्हें संकटों का सामना करना पड़ा, विरोध भी झेलना पड़ा, किन्तु उन्होंने अपनी लेखनी को रुकने नहीं दिया। वर्तमान हिंदी साहित्य जगत में प्रोकांतिकुमार जैन संस्मरण लेख .न के पुरोधा एवं संस्मरणाचार्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। [१४]

6. विष्णु प्रभाकर -

परिचय -

विष्णु प्रभाकर का जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर जिले के गाँव मीरापुर में 21 जून 1912 में हुआ था। उनके पिता दुर्गाप्रसाद धार्मिक विचारों वाले व्यक्ति थे और उनकी माता महादेवी पढ़ी-लिखी महिला थी। जिन्होंने अपने समय में पर्दा प्रथा का विरोध किया था। उनकी पत्नी का नाम सुशीला था। विष्णु प्रभाकर की आरंभिक शिक्षा मीरापुर में हुई। बाद में वे अपने मामा के घर हिसार चले गये जो तब पंजाब प्रान्त का हिस्सा था। घर की हालत ठीक नहीं होने के चलते वे आगे की पढ़ाई ठीक से नहीं कर पाये और गृहस्थी चलाने के लिए उन्हें सरकारी नौकरी करनी पड़ी।

चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी के तौर पर काम करते समय उन्हें प्रतिमाह 28 रुपये मिलते थे। लेकिन मेधावी और लग्नशील विष्णु ने पढ़ाई जारी रखी और हिन्दी में प्रभाकर व हिन्दीभूषण की उपाधि के साथ ही संस्कृत में प्रज्ञा और अंग्रेजी में बीप्राप्त की। विष्णु प्रभाकर पर महात्मा गाँधी और दर्शन और की डिग्री .ए. सिद्धान्तों का गहरा असर पड़ा। इसके चलते ही उनका रुझान कांग्रेस की तरफ हुआ और स्वतंत्रता संग्राम के महासमर में उन्होंने एक उद्देश्य बना लिया, जो आजादी के लिए सतत् संघर्षरत रहा। अपने दौर के लेखकों में प्रेमचन्द, यशपाल, जैनेन्द्र और अज्ञेय जैसे महारथियों के सहयात्री रहे, लेकिन रचना के क्षेत्र में उनकी एक अलग पहचान रही।

विष्णु प्रभाकर ने पहला नाटक लिखा -'हत्या के बाद' हिसार में नाटक मंडली में भी काम किया और बाद के दिनों में लेखन को ही अपनी जीविका बना लिया। आजादी के बाद वे नई दिल्ली आ गये और सितम्बर 1955 में आकाशवाणी में नाट्य निर्देशक के तौर पर नियुक्त हो गये। जहाँ उन्होंने 1957 तक काम किया।

वर्ष 2005 में वे तब सुर्खियों में आए जब राष्ट्रपति भवन में दलित दुर्व्यवहार के विरोध स्वरूप उन्होंने पद्म भूषण उपाधि लौटाने की घोषणा की। उनका आरंभिक नाम विष्णु दयाल था। एक संपादक ने उन्हें प्रभाकर का उपनाम रखने की सलाह दी। विष्णु प्रसाद ने अपनी लेखनी से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।

उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई। 1931 में हिंदी मिलाप में पहली कहानी दिवाली के दिन छपने के साथ ही उनके लेखन का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह आज आठ दशकों तक निरंतर सक्रिय है। नाथूराम शर्मा प्रेम के कहने से वे शरतचन्द्र की जीवनी आवारा मसीहा लिखने के लिए प्रेरित हुए। जिसके लिए वे शरत को जानने के लगभग सभी स्त्रोतों, जगहों पर गए, बांग्ला भी सीखी और जब यह जीवनी छपी तो साहित्य में विष्णु जी की धूम मच गयी।

कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, संस्मरण, बाल साहित्य सभी विधाओं में प्रचुर साहित्य लिखने के बावजूद आवारा मसीहा अपनी पहचान का पर्याय बन गयी। बाद में अर्द्धनारीश्वर पर उन्हें बेशक साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला हो किन्तु आवारा मसीहा में साहित्य में उनका मुकाम अलग ही रखा है। [१५]

विष्णु प्रभाकर ने अपनी वसीयत में अपने संपूर्ण अंगदान करने की इच्छा व्यक्त की। इसलिए उनका अंतिम संस्कार नहीं किया गया, बल्कि उनके पार्थिव शरीर को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान को सौंप दिया गया।[१६] वे सीने और मूत्र के संक्रमण तथा निमोनिया के कारण 23 मार्च 2009 से महाराजा अग्रसेन अस्पताल में भर्ती थे। उन्होंने 20 मार्च से खानापीना छोड़ दिया था। - उनके परिवार में दो बेटे और दो बेटियाँ हैं।[१७]

प्रमुख कृतियाँ -

उपन्यास - ढलती रात, स्वप्रमयी, अर्द्ध नारीश्वर, धरती अब भी घूम रही है, क्षमादान, दो मित्र, पाप का घड़ा, होरी।

नाटक - हत्या के बाद, नव प्रभात, डॉक्टर, प्रकाश और परछाइयाँ, बारह एकांकी, अशोक, अब और नहीं, टूटते परिवेश।

कहानी संग्रह - संघर्ष के बाद, धरती अब भी घूम रही है, मेरा वतन, खिलौने, आदि और अन्त।

आत्मकथा - पंखहीन नाम से उनकी आत्मकथा, तीन भागों में राज कमल प्रकाशन में प्रकाशित हुई है।

जीवनी - आवारा मसीहा

यात्रा वृतान्त - ज्योति पुन्ज हिमालय, जमुना गंगा के नेहर में

संस्मरण - आवारा मसीहा

सम्मान - पद्म भूषण, अर्द्धनारीश्वर उपन्यास के लिये, भारतीय ज्ञानपीठ का मूर्ति देवी सम्मान तथा साहित्य अकादमी पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू इत्यादि पुरस्कार।

7. डॉ- विवेकी राय .

परिचय -

विवेकी राय का जन्म 19 नवम्बर, सन् 1924 सोनवानी गाजीपुर उत्तरप्रदेश में हुआ था। हिंदी और भोजपुरी भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। वे 55 से अधिक पुस्तकों की रचना कर चुके हैं, वे ललित निबंध, कथा साहित्य और कविता कर्म में सभ्यस्त हैं। उनकी रचनाएँ गंवाई मन और मिजाज से सम्पृक्त हैं। विवेकी राय का रचना कर्म नगरीय जीवन के ताप से तपाई हुई मनोभूमि पर ग्रामीण जीवन के प्रति सहज राग की रस वर्षा के समान है। जिसमें भीग कर उनके द्वारा रचा गया परिवेश गंवाई गद्य की सोन्हाई में डूब जाता है।[१८] गाँव की माटी की सौंधी महक उनकी खास पहचान है।[१९] ललित निबन्ध विद्या में इनकी गिनती आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय की परम्परा में की जाती है।[२०]

प्रारम्भिक शिक्षा पैतृक गाँव सोनवाली (गाजीपुर जिला) में हुई थी। महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ से पी.एच.डी. की। शुरू में कुछ समय खेती-बाड़ी में जुटने के बाद अध्यापन कार्य में संलग्न हुए।

साहित्यिक अवधान -

मनबोध मास्टर की डायरी और फिर बैतलवा डाल पर इनके सबसे चर्चित निबंध संकलन हैं और सोना माटी उपन्यास राय का सबसे लोकप्रिय उपन्यास है।[२१]

ललित निबन्ध - मनबोध मास्टर की डायरी, गंवाई गंध गुलाब, फिर बैतलवा डाल पर, आस्था और चिंतन, जुलूस रुका है, उठ जाग मुसाफिर।

कथा साहित्य - मंगल भवन, नममी ग्रामम, देहरी के पार, सर्कस, सोनमती, कलातीत, गूंगा जहाज, पुरुष पुरान, समर शेष, आम रास्ता नहीं है, आंगन के बंधनवार, अतिथि, बबूल, जीवन अज्ञान का गणित, लौटकर देखना, लोकदिन, मेरे शुद्ध श्रद्धेय, मेरी तरह

कहानियाँ, सवालों के सामने, श्वेत पत्र, ये जो है गायत्री, दीक्षा।

साहित्य समालोचना -

1. कल्पना और हिन्दी साहित्य, अनिल प्रकाशन 1999
2. नरेन्द्र कोहली अप्रतिम कला यात्री

अन्य - मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ 1984

भोजपुरी -

भोजपुरी निबंध निकुंजभोजपुरी के तैतालीस चुने हुए निबन्ध :, अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन 1977, गंगा, यमुना, सरस्वती, भोजपुरी कहानी निबंध, संस्मरण, भोजपुरी संस्थान 1992, जनता के पोखरातीनि गो भोजपुरी : कविता, भोजपुरी साहित्य संस्थान, 1984 विवेकीराय के व्याख्यान, भोजपुरी अकादमी, पटना तृतीय वार्षिकोत्सव समारोह, रविवार

2 मई 1982 को आयोजित व्याख्यान भाषा में भोजपुरी कथा साहित्य का विकास विषय पर व्याख्यान दिया। भोजपुरी अकादमी 1982।

उपन्यास -

- अमंगल हारी, भोजपुरी संस्थान 1998
- के क्हला 'चुनरी रंगा का
- भोजपुरी संसद 1968
- गुरु ग्रह गयौ पठन रघुराम-1968
- गुरु ग्रह गयौ पठन रघुराम-1992

सम्मान एवं पुरुस्कार -

हिन्दी साहित्य में योगदान के लिए 2001 में उन्हें यहाँ पंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार एवं 2006 में यशभारती पुरस्कार से सम्मानित किया गया।[२२] उन्हें उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा महात्मा गाँधी सम्मान से भी पुरस्कृत किया किया गया।[२३]

- उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा प्रेमचन्द पुरस्कार साहित्य भूषण सम्मान।
- बिहार राज भाषा विभाग द्वारा आचार्य शिवपूजन सहाय पुरस्कार।[२४]

- हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा विद्यावाचस्पति और साहित्य महापाध्याय सम्मान।
- 2001 में महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार।
- 2006 में यशभारती पुरस्कार।
- 2006 में शार्प रिपोर्टर आंचलिक पत्रकारिता युग पुरुष सम्मान, आजमगढ़।

8. विश्वनाथ त्रिपाठी -

परिचय -

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी का जन्म 16 फरवरी सन् 1931 ई. में जिला बस्ती के विस्कोहर गाँव में हुआ था। उनकी शिक्षा पहले गाँव में, फिर बलरामपुर कस्बे में, उच्च शिक्षा कानपुर में और वाराणसी में हुई। पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से पी-एच.डी. की। उनकी कृतियाँ प्रारम्भिक अवधि हिंदी आलोचना, हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास लोकवादी तुलसीदास, मीरा का काव्य संदेश रासक का संपादन किया और कविताएँ (अजीत कुमार के साथ) सन् 1963, 1964, 1965 में की हैं। हिंदी प्रहरी: राम विलास शर्मा के साथ संवादित किया है, विश्वनाथ जी को कई सम्मानों से नवाजा गया है। जो सुचंद शुक्ल आलोचना पुरस्कार डॉ.रामविलास शर्मा सम्मान, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार (साहित्य सम्मान) आदि मिले।[२५]

हिन्दी के वरिष्ठ आलोचक, कवि और गद्यकार हैं, प्रगतिशील विचारधारा से सम्बद्ध कट्टरता रहित आलोचक के रूप में डॉ.त्रिपाठी ने मुख्यतः मध्यकालीन साहित्य से लेकर समकालीन साहित्य तक की आलोचना में गहरी अंतर्दृष्टि का परिचय दिया है। जीवनी एवं संस्मरण लेखन के क्षेत्र में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण मुकाम हासिल किया है।[२६]

15 नवम्बर 1958 को देवीसिंह बिस्ट महाविद्यालय नैनीताल में अध्यापक नियुक्त हुए। 8 अक्टूबर 1959 को करोड़ीमल कॉलेज दिल्ली में नियुक्ति हुई।[२७] बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय के दक्षिण परिसर में अध्यापन 15 फरवरी 1996 को 65 वर्ष पूरे होने के बाद सेवानिवृत्त हो गये।[२८]

साहित्यिक परिचय -

त्रिपाठी जी की भाषा एवं साहित्य दोनों गम्भीर अनुसंधित्सु रहे हैं। उनकी पहली पुस्तक 'हिन्दी आलोचना' आज भी अपनी मौलिकता, प्रांजलता, ईमानदार

अभिव्यक्ति तथा सटीक एवं व्यापक विश्लेषण के कारण अपने क्षेत्र में अद्वितीय है। त्रिपाठी जी ने बहुत नहीं लिखा है, परन्तु जो भी लिखा है उसे पढ़ते हुए निःसंकोच कहा जा सकता है कि उनकी लिखी हर पंक्ति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और अवश्य ध्यातव्य है।

मध्ययुगीन काव्य के समकालीन समीक्षक -

त्रिपाठी जी ने तुलसीदास तथा मीरा के काव्य पर एकएक पुस्तक लिखी है।-

तुलसीदास के सन्दर्भ में आचार्य शुक्ल से लेकर डॉरामविलास शर्मा जी . तक के विवेचन के बाद कुछ नया और सार्थक जोड़ पाना निश्चय एक बड़ी चुनौती जैसी बात है जिसे त्रिपाठी जी ने बखूबी निभाया है। कवि तुलसी का जो रूप इनकी पुस्तक के प्रकाशित हो जाने के बाद, वह पहले नहीं बन पाया था और यह रूप कितना प्रामाणिक तथा हृदय ग्राही है, इसकी झलक इस पुस्तक पर लिखे गये राजेन्द्र यादव के पुत्र से बहुत अच्छी तरह मिल जाती है। पूर्व के सारे तर्कों के बावजूद तुलसीदास को अंधविश्वासी, रूढ़िवादी, अपरिवर्तनवादी आदि, राम के चरित्र को परम्परापोषक एवं गिलगिले मानने वाले राजेन्द्र यादव जैसे व्यक्ति ने भी यह पुस्तक पढ़कर लिखा है -

''पुस्तक में एक ऐसी अजीबसी उस्मा-, आत्मीयता और बाँध लेने वाली निश्छलता है कि मैं इसे पढ़ता ही चला गया। अच्छी बात यह लगी कि आपने न राम को मुकुट पहनाए, न तुलसी को अक्षत चन्दन लगाए, आपने तो अवध को ही तुलसी के माध्यम से जिया है, वहाँ के लोगों, उनके आपसी सम्बन्धों और सन्दर्भों बिना -उन्हें महिमान्वित और स्पन्दनशील बना दिया है, कि मैं तुलसी के प्रति अपने सारे पूर्वाग्रह छोड़कर पढ़ता चला गया।[२९]

त्रिपाठी जी का अधिकांश लेखन अपने समय और समाज से जुड़ा हुआ लेखन है। चाहे वह हरिशंकर परसाई के व्यंग्य निबंधों की विवेचना हो या केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं के मर्म का उद्धरण कहानी पर केन्द्रित कहानी - हों या संस्मरण आलोचना के उच्चतम सीमान्त को स्पर्श करने वाली दोनों पुस्तकें जीवनी का बहुआयामी बहुरंगी संसार। -

त्रिपाठी जी का लक्ष्य प्रायः विचलन की हर बिन्दुओं को पहचानते हुए उससे बचना तथा लक्षित लेखकों के बचने या बच पाने की कोशिश की प्रक्रिया को

समझतेसमझाते समाज को सही गति से उपयुक्त दिशा में अग्रसर कर सकने - मुस्कान दृष्टि की सटीक पहचान करना है। वाली

संपादित कृतियों में भी डॉत्रिपाठी ने पूरी निष्ठा एवं गंभीरता से कार्य किया . है, डॉरामविलास शर्मा पर केन्द्रित वसुधा के विशेषांक के संदर्भ में मधुदेश का . मानना है कि उनके संपादन में वसुधा का रामविलास शर्मा का सर्वाधिक विश्वसनीय मूल्यांकन है।[३०]

हिन्दी कहानी - आलोचना का शिखर -

हिन्दी कहानी आलोचना के क्षेत्र में सुरेन्द्र चौधरी के बाद निःसंदेह डॉ . विश्वनाथत्रिपाठी जी ने भी बहुत नहीं लिखा है और विवेचन के लिए किसी एक पूरे दौर या एक कहानीकार को भी समग्रता में नहीं लिया है। उन्होंने उन्हीं कहानियों पर लिखा है जिनसे अपनी रचनात्मक सामर्थ्य के कारण उनसे लिखवा लिया है, यह एक दृष्टि से सीमा है तो दूसरी दृष्टि से इसी कारण वैसा लेखना संभव हुआ है जो कई मायनों में अद्वितीय है, जब त्रिपाठी की कहानी आलोचना की पहली पुस्तक समीक्षकों द्वारा उक्त सीमा पर जोर देकर सीमाओं में बँधी आलोचना के रूप में कुछ प्रशंसा, कुछ निन्दा की बहु प्रचलित पद्धति के तहत् ही समीक्षा की गयी थी।[३१]

स्वाभाविक है कि अधिकांशतः समीक्षा देखकर पुस्तक पढ़ने वाले हिंदी के पाठक लम्बे समय तक पुस्तक से वंचित रह गये, तो वैशिष्ट्य से कैसे परिचित होते। जबकि इस पुस्तक के बारे में स्वयं नामवर सिंह का कथन है:

'कुछ कहानियाँकुछ विचार :' नाम की पुस्तक कहानी पर लिखी हुई बहुत गम्भीर और बहुत महत्त्वपूर्ण पुस्तक है, उसमें अमरकांत पर, फणीश्वरनाथ रेणु पर, शानी पर, शेखर जोनी पर, ज्ञान रंजन पर इतना अच्छा लिखा है कि मैंने कहीं और देखा ही नहीं। मैं खुद नहीं, लिख सका। लिख भी नहीं सकता हूँ, यह भी बताए देता हूँ।' [३२]

जीवनी का एक और मानदंड -

'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का पुण्य स्मरण' उपशीर्षक के रूप में लिखित उनकी पुस्तक व्योमकेश दरवेश वस्तुतः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की जीवनी

है, यह हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अब तक लिखित तीन सर्वश्रेष्ठ जीवनियों तथा आवारा मसीहा के बाद उसी कड़ी में चौथी श्रेष्ठ जीवनी है। [३३]

इस पुस्तक की एक अतिरिक्त विशेषता यह है कि इसमें 'रचना और रचनाकार' शीर्षक के अन्तर्गत द्विवेदी जी पर त्रिपाठी जी द्वारा लिखे गये आलोचनात्मक आलेख भी एकत्र संकलित हैं। इस खण्ड को डॉनामवर सिंह . द्विवेदी पर लिखी गयी आलोचनाओं में अद्वितीय मानते हैं। [३४]

पूरी पुस्तक को मैनेजर पाण्डेय एक शानदार जीवनी के साथसाथ त्रिपाठी - ण भी मानते हैं।जी की आलोचनात्मक क्षमता का प्रमा[३५]

प्रकाशित कृतियाँ -

1. हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1970
2. लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1974
3. प्रारम्भिक अवधि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1975
4. मीरा का काव्य (1989 में वाणी प्रकाशन नई दिल्ली से पुनर्प्रकाशित) 1979
5. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1986
6. केदारनाथ अग्रवाल का रचनालोक (प्रकाशन विभाग) भारत सरकार, नई दिल्ली
7. जैसा कह सका कविता संकलन में साहित्य भण्डार चाह चंद रोड इलाहाबाद से प्रकाशित 2014
8. प्रेमचन्द विस्कोहर में समाहित विश्वनाथ त्रिपाठी साहित्य भण्डार, 50 चाहचंद्र इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2014
9. नंगा तलाई का गाँव (स्मृति का स्थान), राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2004
10. गंगा स्नान करने चलोगे (संस्मरण), भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली 2006

सम्मान -

1. गोकुल चंद शुक्ल आलोचना पुरस्कार
2. डॉरामविलास शर्मा पुरस्कार .
3. सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार
4. साहित्य सम्मान हिंदी अकादमी द्वारा

5. शान्ति कुमारी वाजपेयी सम्मान

6. शमशेर सम्मान

7. मैथिलीशरण गुप्त सम्मान 2012-13 [३६]

8. व्यास सम्मान 2013 (व्योमकेश दरवेश के लिए)

9. भाषा सम्मान साहित्य अकादमी द्वारा -

10. मूर्ति देवी पुरस्कार 2014 (व्योमकेश दरवेज के लिए) [३७]

11. भारत भारती सम्मान 2015

9. ओम थानवी -

परिचय -

ओम थानवी का जन्म 1 अगस्त 1957 फलौदी जिला जोधपुर राजस्थान में हुआ था। हिंदी भाषा के लेखक वरिष्ठ पत्रकार, संपादक तथा आलोचक हैं। इनके पिता एक शिक्षाशास्त्री और प्रतिष्ठित शैक्षिक पत्रिका और नया शिक्षक, टीचर टुडे के संपादक थे।[३८]

थानवी वर्तमान में हरिदेव जोशी पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, जयपुर के संस्थापक - कुलपति हैं। इससे पूर्व हिंदी के प्रमुख दैनिक अखबार जनसत्ता के संपादक रह चुके हैं। इनकी चर्चित कृति संस्मरण विद्या में लिखी गई किताब "मुअन जोदड़ो" है।

पत्रकारिता एवं संपादन -

तैंतालीस वर्षों के पत्रकार जीवन में श्री थानवी ने लेखन, वक्ता और वैचारिक ख्याति अर्जित की है। उनकी रुचि के क्षेत्रों में मीडिया के साथ साहित्यकला, संस्कृति, रंगमंच और सिनेमा से लेकर इतिहास, नेतृत्व शास्त्र, समाज विज्ञान और पर्यावरण शामिल है।

श्री थानवी ने पत्रकारिता की शुरुआत 1977 में बीकानेर में छात्रजीवन के दौरान की। व्यवसाय प्रशासन में एम करने के बाद वे .कॉम.1980 में जयपुर से निकलने वाले पत्रिका समूह से जुड़े। साप्ताहिक इतवारी पत्रिका और फिर राजस्थान पत्रिका के बीकानेर संस्करण के सम्पादकीय प्रभारी रहने के बाद 1989 में इंडियन एक्सप्रेस समूह से जुड़ते हुए जनसत्ता के स्थानीय संपादक होकर चंडीगढ़ चले गये। दस साल बाद दिल्ली में कार्यकारी संपादक के रूप में जनसत्ता के सम्पूर्ण

संपादक का जिम्मा संभाला। 16 वर्षों के संपादन काल में उन्होंने इस प्रतिष्ठित समाचार पत्र के उच्च मानकों की विरासत को समृद्ध किया।

नैतिक मूल्यों के साथ भाषा और साहित्य के अनुराग और समाज, राजनीति और संस्कृति से प्रतिबद्ध सरोकार ने जनसत्ता की अलग बौद्धिक पहचान बनाई।

छब्बीस साल बाद 2015 में श्री थानवी जनसत्ता से सेवा निवृत्त हुए। फिर कुछ समय के लिए विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज में पत्रकारिता का अध्ययन किया है। (.यू.एन.जे) विद्यालय आरंभ से पहले वे दिल्ली में राजस्थान पत्रिका के हरिदेव जोशी विश्व सलाहकार संपादक भी रहे।

वे साहित्य अकादमी में गये। भारत के उप राष्ट्रपति के दल में बुखारेस्ट-(रोमानिया), जॉर्ज टाउन (गयाना), पोर्ट ऑफ स्पेन येरेवान (टोबेनो-जिनिदाद) पेरिस (बेलारूस) मिस्क (आर्मीनिया), लंदन आदि में आयोजित कार्यक्रमों में भी शामिल हुए।

ब्रिटिश शासन के आमंत्रण पर संपादकों के समूह के साथ इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड और उत्तरी आयरलैण्ड की यात्रा की। उन्होंने मिस्र, युनान, चीन, हंगरी, चेक गणराज्य, स्लोवाकिया, ऑस्ट्रिया, कनाडा, मलेशिया, थाइलैण्ड, मॉरीशस, स्पेन, स्वीडन, स्विट्जरलैण्ड आदि देशों की भी यात्रा की है और उन्होंने उनके संस्मरण लिखे हैं।[३९]

कृतित्व -

- **मुअन जोदड़ो** - हड़प्पा सभ्यता के ऊपर संस्मरण विमर्शपरक किताब।
- अपने-अपने अज्ञेय संस्मरण, अज्ञेय जन्मशती पर दो खण्डों में स्मृति ग्रंथ
- **सम्मान:** पत्रकारिता के लिए थानवी को भारत के राष्ट्रपति द्वारा प्रतिष्ठित गणेश शंकरविद्यार्थी पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।
- प्रसिद्ध कृति मुहन जोदड़ो के लिए इन्हें शमशेर सम्मान, सार्क लिटरेरी अवार्ड तथा बिहारी पुरस्कार प्राप्त हुआ है। [४०]

अन्य सम्मान -

- हिंदी अकादमी अवार्ड
- हल्दीघाटी अवार्ड

- माधवराव सप्रु राष्ट्रीय पत्रकारिता पुरस्कार

10. रामशरण जोशी -

परिचय -

रामशरण जोशी जी का जन्म 6 मार्च, सन् 1944 में अलवर में (राजस्थान) हुआ। जोशी जी एक पत्रकार और समाज विज्ञानी हिंदी जगत में वरिष्ठ विचारक हैं। उनका सन्1972 से 1979 ईतक की अवधि में युवा व श्रमिक आंदोलनों से . संबंध रहा। राष्ट्रीय श्रम संस्था व गाँधी शांति प्रतिष्ठानों में बंधन और श्रमिक प्रथा परियोजना में कार्य किया। सन् 1990 ई से .1999 ईतक नई दुनिया के दिल्ली . ब्यूरो प्रमुख के रूप में विभिन्न देशों की कई यात्राएँ कीं। सन्1971 में भारतपाक-युद्ध की रिपोर्टिंग की। नव स्वतंत्र बांग्लादेश के विभिन्न क्षेत्रों का दौरा किया। - उनकी प्रकाशित रचनाएँ'आदमी', 'बैल और सपने', मीडियामिथ और समाज-, मीडिया विमर्श विदेश रिपोर्टिंग, साक्षात्कार, सिद्धान्त और व्यवहार, आदिवासी समाज और शिक्षा, हस्तक्षेप, काप, चुनौतियों का चक्रव्यूह, अगला प्रधानमंत्री कौन, कठघरे में इत्यादि जैसे पुस्तकों का लेखन किया है। बिहार सरकार द्वारा राजेन्द्र माथुर राष्ट्रीय पत्रकारिता पुरस्कार।

मध्यप्रदेश सरकार के शरद जोशी सम्मान, हिंदी अकादमी दिल्ली का पत्रकारिता पुरस्कार दिल्ली अकादमी द्वारा सम्मानित किया गया है। गणेश शंकर विद्यार्थी पत्रकारिता पुरस्कार आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

तीन दशकों की सक्रिय पत्रकारिता के पश्चात, पिछले एक दशक से प्रशासनिक पदों पर कार्य किया। माखन लाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय (भोपाल) में अध्यापन कार्य किया। राष्ट्रीय बाल भवन के अध्यक्ष भी रहे। केन्द्रीय हिंदी संस्थान के उपाध्यक्ष के पद पर कार्यरत थे।

कृतियाँ -

सिद्धान्त और व्यवहार, आदिवासी समाज और शिक्षा, हस्तक्षेप, काप, अगला प्रधानमंत्री कौन, कठघरे में, चुनौतियों का चक्रव्यूह, आदमी, बेल और सपने, मीडिया मिथ और समाज, मीडिया विमर्श, विदेश रिपोर्टिंग में बोनसाई अपने समय का ।(आत्मकथा)[४१]

करीब साढ़े चार दशक से पत्रकारिता के क्षेत्र में विभिन्न ओहदों पर काम करने वाले जोशी ने समाज के झंझावतों से जूझने के लिए कलम को हथियार बनाया।

प्रधानमंत्री राजीव गाँधी, वी.पी.सिंह, नरसिम्हा राव, इन्द्र कुमार गुजराल, अटल बिहारी वाजपेयी व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा के साथ स्टेट विजिट के रूप में कवरेज कर चुके रामशरण जोशी हाल ही से विश्वविद्यालय में पत्रकारिता के विद्यार्थियों को अध्यापन करा रहे हैं। मीडिया के क्षेत्र से अध्यापन में रुचि के प्रति वे बताते हैं कि प्रोफेसर का पदभार संभालने के पीछे मूल रूप से मेरी एक ही भावना व विचार है कि जनसंचार के क्षेत्र में मौलिक शोध कार्य कराया जाये। कुलपति विभूति नारायण राय जी जिस कार्य हेतु मुझे यहाँ लाए हैं वह यह है कि पत्रकारिता, समाज विज्ञान आदि क्षेत्र में मौलिक चिंतन को बढ़ावा दे सकूँ। चूँकि आजकल मीडिया ज्ञान और सूचना दोनों का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बन चुका है। आज इस बहुआयामी मीडिया का प्रभाव समाज के विभिन्न क्षेत्रों पर क्या पड़ रहा है और भविष्य में क्या संभावित तस्वीर उभरेगी, इस संबंध में सघन व गहन अनुसंधान की आवश्यकता है। तो इस प्रकार कह सकता हूँ कि जब तक मैं इस मूल रूप से कार्यक्षेत्र मेरा शोध ही रहेगा। मेरी कोशिश रहेगी कि सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक इस त्रिआयामी संबंधों के परिप्रेक्ष्य में मीडिया की क्या भूमिका है इसमें अनुसंधानात्मक मौलिक चिंतन को बढ़ावा दे सकूँ।

उन्होंने कहा कि यहाँ के शोधार्थी केवल पी की डिग्री .डी.एच.प्राप्त करने वाले नहीं हों, अपितु वैज्ञानिक सोच से समाज को कुछ दे सकें। मेरी विद्यार्थियों से अपेक्षा रहेगी कि जहाँ वे मीडिया को अपनी आजीविका व कैरियर का आधार जानना चाहते हैं वहीं वे इसे समाज में परिवर्तन का माध्यम भी बनाए। वे अपने अनुसंधान के माध्यम से इस बात का पता लगाएं। मीडिया का प्रयोग समाज और देश की बेहतरी के लिए किस प्रकार किया जा सकता है। आप जानते ही हैं कि हम वैश्वीकरण के काल में जी रहे हैं। इस वैश्वीकरण की बहुआयामी प्रक्रियाएँ हमारी जीवन को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित कर रही हैं अतः मीडिया का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि वे इस प्रवृत्तियों के चरित्र को समझे। इन प्रवृत्तियों का प्रभाव कितना सकारात्मक व नकारात्मक है इसका अपने अनुसंधान के माध्यम से पता लगाए, तो मैं समझता हूँ कि हमारा शोध कवल डिग्री तक सीमित नहीं

होना चाहिये, बल्कि यह हस्तक्षेपवादी होना चाहिये। यही मेरा लक्ष्य व उद्देश्य है। प्रोफेसर के रूप में नियुक्त होने पर प्रोजोशी को विश्वविद्यालय के अधिकारियों ., शैक्षणिक, गैर शैक्षणिक कर्मियों व विद्यार्थियों ने बधाई दी है। [४२]

11. काशीनाथ सिंह -

परिचय -

काशीनाथ सिंह का जन्म 1 जनवरी 1937 को उत्तरप्रदेश में वाराणसी (अब चंदोली) के जीयनपुर गाँव में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उनके पैतृक गाँव जीयनपुर के पास के विद्यालयों में हुई। सन् 1953 में हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। हालांकि गणित विषय में वह कमजोर थे। उच्च शिक्षा के लिए काशीनाथ सिंह बनारस चले गये। जहाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उन्होंने स्नातक, परास्नातक (1959) और पी.एच.डी. (1963) की उपाधियाँ प्राप्त कीं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही पहले वे हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण कार्यालय में सन् 62 से 64 तक शोध सहायक रहे। फिर सन् 1965 में वहीं उन्होंने अध्यापन कार्य शुरू किया और हिन्दी साहित्य के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुए 1997 में सेवानिवृत्त हुए। हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह काशीनाथ सिंह के बड़े भाई हैं।

साहित्य सृजन -

काशीनाथ सिंह की सृजन यात्रा साठोत्तरी पीढ़ी के एक कहानीकार के रूप में आरंभ हुई। उनकी पहली कहानी 'संकट' कृति पत्रिका सितम्बर)1960) में प्रकाशित हुई थी। [४३]

काशीनाथ सिंह साठोत्तरी पीढ़ी के सुप्रसिद्ध 'चार यार', रविन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह और ज्ञान रंजन के साथ चौथे यार हैं। उनका पहला उपन्यास अपना मोर्चा 1967 ईस्वी के छात्र आंदोलन को केन्द्र में रखकर लिखा गया था।[४४] लंबे समय तक वे कहानीकार के रूप में ही विख्यात रहे। बाद में संस्मरण के क्षेत्र में उतरने पर उन्हें काफी ख्याति प्राप्त हुई। अपना मोर्चा के लंबे समय बाद उनका दूसरा उपन्यास 'काशी का अस्सी' प्रकाशित हुआ जो वस्तुतः कहानियों एवं संस्मरणों का सम्मिलित रूप है। सन् 2002 में प्रकाशित 'काशी का अस्सी' को उनका सबसे महत्त्वपूर्ण काम माना जाता है। यह घाटों, अजीब पात्रों और 1970 के दशक के

छात्र राजनेताओं के जीवन के अंदरूनी चित्र की तरह लिखा है। उपन्यास वाराणसी के रंगीन जीवन के विस्तृत चित्रण में अद्वितीय माना जाता है।

काशीनाथ सिंह साहित्यिक व्यक्तियों के जीवन से सम्बद्ध संस्मरण लेखन की अपनी अनूठी शैली के लिए भी जाने जाते हैं।

उनके संस्मरणों को शरद जोशी पुरस्कार प्राप्त। याद हो कि न याद हो तथा आछे दिन पाछे गये में संकलित किया गया है। नामवर सिंह के जीवन पर केन्द्रित संस्मरण पुस्तक है 'घर का जोगी जोगड़ा'। काशी का अस्सी के अंशों को प्रसिद्ध निर्देशन उषा गांगुली द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया है और इसी उपन्यास पर चन्द्र प्रकाश द्विवेदी द्वारा फीचर फिल्म मोहल्ला अस्सी का भी निर्माण किया जा चुका है।

काशीनाथ सिंह को 2011 में उनके उपन्यास 'रेहन पर रग्घु' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है। हाल के दिनों में 'काशी का अस्सी' पर आधारित एक नाटक 'काशीनामा' भारत और विदेशों में 125 बार आयोजित किया गया है।

कहानी संग्रह -

लोग बिस्तरों पर 1968, सुबह का डर 1975, आदमीनामा 1978, नयी तारीख 1979, कल की फटे हाल कहानियाँ 1980, प्रतिनिधि कहानियाँ 1984, सदी का सबसे बड़ा आदमी 1986, 10 प्रतिनिधि कहानियाँ 1994, कहानी उपखान (सम्पूर्ण कहानियाँ) 2003 राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली, संकलित कहानियाँ 2008, कविता की नयी तारीख, खरोंच 2014 (साहित्य भंडार, चाह चंद रोड, इलाहाबाद से)।

उपन्यास -

अपना मोर्चा 1972, काशी का अस्सी 2002, रेहन पर रग्घु 2008, महुआ चरित 2012, उपसंहार 2014

संस्मरण -

याद हो कि न याद हो (1992), आछे दिन पाछे गए (2004), घर का जोगी जोगड़ा (2006)।

शोध आलोचना -

हिंदी में संयुक्त क्रियाएँ (1976), आलोचना भी रचना है (1996), लेखन की छेड़छाड़ (2013)।

नाटक -

1. धो आस (प्रथम प्रकाशन य युयुत्सा पत्रिका, कोलकाता 1969)
2. द्वितीय प्रकाशन, रचना प्रकाशन इलाहाबाद, 1975
3. तृतीय प्रकाशन, रचना प्रकाशन इलाहाबाद, 1975

तृतीय प्रकाशन प्रारूप प्रकाशन इलाहाबाद 1982-2015 ई. में साहित्य भंडार चाहचंद रोड इलाहाबाद से पुनप्र्रकाशित।[४५]

साक्षात्कार -

1. गपोड़ी से गपशप 2013 (संपादन प्रस्ताव)

संपादन -

1. परिवेश (अनियतकालीन पत्रिका 1971-76)
2. काकी के नाम 2007 (नामवर सिंह के पक्षों का संचयन)

सम्मान -

कथा सम्मान, समुच्चय सम्मान, शरद जोशी सम्मान, साहित्य भूषण सम्मान, भारत भारती सम्मान, साहित्य अकादमी पुरस्कार।

12. ममता कालिया -

परिचय -

ममता कालिया का जन्म 02 नवम्बर 1940 वृन्दावन उत्तर प्रदेश में हुआ था। एक प्रमुख भारतीय लेखिका हैं। वे कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध, कविता और पत्रकारिता अर्थात् साहित्य की लगभग सभी विधाओं में हस्तक्षेप रखती हैं। हिन्दी कहानी के परिदृश्य पर उनकी उपस्थिति सातवें दशक से निरन्तर बनी हुई है। लगभग आधी सदी के कालखण्ड में उन्होंने 200 से अधिक कहानियों की रचना की है। [४६]

वर्तमान में वे महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की त्रैमासिक पत्रिका हिन्दी की संपादिका हैं। उनकी शिक्षा दिल्ली, मुंबई, पुणे, नागपुर और इन्दौर शहरों में हुई। उनके पिता स्वविद्याभूषण अग्रवाल पहले अध्यापन में बाद में . आकाशवाणी में कार्यरत रहे। वे हिंदी और अंग्रेजी के साहित्य के विद्वान थे। उन्होंने कवयित्री, लेखिका के रूप में गद्य और पद्य दोनों में रचना की है। कहानी,

नाटक, उपन्यास, निबंध, कविता और पत्रकारिता आदि पर उल्लेखनीय कार्य किया है। उनके जीवन साथी रविन्द्र कालिया हैं। [४७]

प्रमुख कृतियाँ -

दो खण्डों में अब तक की संपूर्ण कहानियाँ ममता कालिया की कहानियाँ नाम से प्रकाशित। उनके शुरुआती पाँच कहानी संग्रहों की कहानियों को एक साथ प्रथम खण्ड में तथा दूसरे खण्ड में उनके चार कहानी संग्रहों को शामिल किया गया है। [४८]

कहानी संग्रह - छुटकारा, एक अदद औरत, सीट नंछः ., उसका यौवन, जाँच अभी जारी है, प्रतिदिन, मुखौटा, निर्मोही, थिएटर, रोड के कौए, पच्चीस साल की लड़की।

उपन्यास	-	बेघर, नरक दर नरक, प्रेम कहानी, लड़कियाँ, एक पत्नी के नोट्स, दौड़, अंधेरे का ताला, दुक्खम सुक्खम। -
कविता संग्रह-		खाँटी घरेलू औरत, कितने प्रश्न करूँ, नरक दर नरक, प्रेम कहानी[४९]
नाटक संग्रह	-	यहाँ रहना मना है, आप न बदलेंगे
संस्मरण	-	कितने शहरों में कितनी बार
अनुवाद	-	मानवता के बंध
संपादन	-	बीसवीं सदी का हिंदी महिला लेखन, खंड 3 [५०]

सम्मान और पुरस्कार -

- वर्ष 2017 में प्रतिष्ठित, व्यास सम्मान (उपन्यास - दुख्खम-सुख्खम के लिए)
- अभिनव भारती सम्मान
- साहित्य भूषण सम्मान
- यशपाल स्मृति सम्मान
- महादेवी स्मृति सम्मान
- सावित्री बाई फुले स्मृति सम्मान
- अमृत सम्मान
- लमही सम्मान (2005)
- जनवाणी सम्मान (2008)
- सीता पुरस्कार (2012) [५१]

13. निर्मला जैन -

परिचय -

निर्मला जैन का जन्म 28 अक्टूबर, 1932 में दिल्ली के एक व्यापारी के परिवार में हुआ। बचपन में ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी थी। उन्होंने दिल्ली में शिक्षा पूरी की और वर्षों तक कथक गऊअच्छन महाराज (बिरजू महाराज के पिता) से नृत्य की शिक्षा प्राप्त की। उसने दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए., पी.एच.डी. और डी.लिट की उपाधियाँ प्राप्त कीं। अध्यापन के क्षेत्र में निर्मला की पहली नियुक्ति लेडी श्रीराम कॉलेज में हुई। 14 साल उस कॉलेज में रहने के बाद वह दिल्ली यूनिवर्सिटी में (1970-1996) रही, सेवानिवृत्त होने के बाद भी वे विशेष आमंत्रित रूप से दस वर्ष तक अध्यापन करती रहीं। हिन्दी साहित्य की अध्यापन, आलोचना और चर्चित आत्मकथा ‘जमाने’ की लेखिका हैं। [५२]

अध्यापन के दौरान उन्होंने बड़ी संख्या में शोधार्थियों का मार्गदर्शन किया। साथ ही अनेक महत्त्वपूर्ण आलोचना कृतियों की रचना की और प्रसिद्ध कृतियों के अनुवाद किए। महादेवी और जैनेन्द्र की रचनावलियों के अतिरिक्त कई पुस्तकों का संचयन और सम्पादन किया। इन मौलिक, अनूदित और सम्पादित रचनाओं की संख्या तीस से अधिक है अपने जीवन और समय का जायजा उन्होंने आत्मकथा ‘जमाने में हम’ में लिया है।

निर्मला जैन एक ऐसा सुपरिचित नाम है जिन्होंने अपनी वस्तुनिष्ठ आलोचना दृष्टि और बेबाक अभिव्यक्ति से हिन्दी के पुरुष प्रधान आलोचना परिदृश्य में उल्लेखनीय जगह बनाई। उनके अनेक शिष्य महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्यरत हैं।

खास बात यह है कि आज भी वे पूरी लगन और निष्ठा से अध्ययन और रचना कर्म में संलग्न हैं और साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय योगदान दे रही हैं। [५३]

कृतियाँ -

आलोचना - आधुनिक हिंदी काव्य रूप में विधाएँ, रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र, आधुनिक साहित्यमूल्य और मूल्यांकन :, हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी, आधुनिक हिंदी काव्यरूप : और

संरचना, पाश्चात्य साहित्य चिंतन, कविता का प्रति संसार, कथा समय में तीन हमसफर -

संस्मरण - दिल्लीशहर दर शहर :

संपादन - अंतस्तल का पूरा विप्लव, अंधेरे में इतिहास और आलोचना के वस्तुवादी सरोवर, महा देवी साहित्य (महादेवी वर्मा का संपूर्ण साहित्य - चार खण्डों में), निबंधों की दुनिया।

अनुवाद - उदात्त के विषय में, बंगला साहित्य का इतिहास, समाजवादी साहित्यविकास की समस्याएँ :, साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, भारत की खोज।

सम्मान - हरजी मल डालमिया पुरस्कार, तुलसी पुरस्कार, रामचंद्र शुक्ल पुरस्कार, साहित्य भूषण पुरस्कार, विशिष्ट साहित्यकार सम्मान, सुब्रण्यम भारती ।[१४]

14. नरेन्द्र कोहली -

परिचय -

डॉ. नरेन्द्र कोहली का जन्म 6 जनवरी 1940 में स्यालकोट पंजाब में (विभाजन पूर्व) हुआ था। जो अब पाकिस्तान में है। प्रारम्भिक शिक्षा लाहौर में आरम्भ हुई और भारत विभाजन के पश्चात् परिवार के जमशेदपुर चले आने पर वहीं आगे बढ़ी। दिलचस्प है कि प्रारम्भिक अवस्था में हिन्दी के इस सर्वकालिक श्रेष्ठ रचनाकार की शिक्षा का माध्यम हिन्दी न होकर उर्दू था। हिन्दी विषय उन्हें दसवीं कक्षा की परीक्षा के बाद ही मिल पाया। विद्यार्थी के रूप में नरेन्द्र अत्यंत मेधावी थे एवं अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होते रहे, वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में उन्हें अनेक प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ।

कोहली जी के साहित्य में सभी प्रमुख विधाओं (यथा उपन्यास, व्यंग्य, नाटक, कहानी) एवं गौण विधाओं (यथा संस्मरण, निबंध पत्र आदि) और आलोचनात्मक साहित्य में अपनी लेखनी चलाई। उन्होंने शताचिन श्रेष्ठ ग्रंथों का सृजन किया है। हिंदी साहित्य में महाकाव्यात्मक उपन्यास की विधा को प्रारंभ करने का श्रेय नरेन्द्र कोहली को ही जाता है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों की गुत्थियों को सुलझाते हुए उनके माध्यम से भारतीय जीवन शैली एवं दर्शन का सम्यक परिचय

करवाया जाता है। अहिलया इनका नया उपन्यास है।इसके अतिरिक्त वृहद व्यंग्य साहित्य, नाटक और कहानियों के साथसाथ नरेन्द्र कोहली ने गंभीर एवं उत्कृष्ट - निबंध, यात्रा विवरण एवं मार्मिक आलोचना भी लिखी है। संक्षेप में कहा जाये तो उनका अवघन गद्य की हर विधा में देखा जा सकता है एवं वह प्रायः सभी अन्य साहित्यकारों को युगप्रवर्तन साहित्यकार घोषित करने के लिए पर्याप्त है। नरेन्द्र - कोहली ने तो उन कथाओं को अपना माध्यम बनाया है जो अपने विस्तार एवं वैविध्य के लिए विश्वविख्यात है। रामकथा एवं महाभारत कथा 'यन्न भारते - तन्न भारते' को चरितार्थ करते हुए उनके महापन्यास 'महासमर' मात्र में वर्णित पात्रों, घटनाओं, मनोभावों आदि की संध्या एवं वैविध्य देखें तो वह भी पर्याप्त ठहरेगा, वर्णन कला, चरित्रचित्रण-, मनोजगत का वर्णन इत्यादि देखें भी कोहली प्रेमचन्द से न सिर्फ आगे निकल जाते हैं, वरन् संवेदनशीलता एवं गहराई भी उनमें अधिक है।

नरेन्द्र कोहली की वह विशेषता जो उन्हें इन दोनों पूर्ववर्तियों से विशिष्ट बनाती है वह है एक के पश्चात् एक पैंतीस वर्षों तक निरंतर उन्नीस काल जयीकृतियों का प्रणयन सर्वश्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त वृहद व्यंग्य साहित्य, सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी है। सफल नाटक है वैचारिक निबंध, आलोचनात्मक लेख, संस्मरण, रेखाचित्रों का खजाना है। गद्य की प्रत्येक विद्या में उन्होंने हिंदी साहित्य को इतना दिया है। उनके समक्ष सभी अवदान फीके जान पड़ते हैं।

रचनाएँ -

यों तो छह वर्ष की आयु से ही उन्होंने लिखना प्रारम्भ कर दिया था, लेकिन 1960 के बाद से ही उनकी रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं। समकालीन लेखकों से वो इस प्रकार भिन्न हैं कि उन्होंने जानीमानी कहानियों को बिल्कुल मौलिक तरीके से लिखा। ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित उनके प्रमुख वृहादाकार उपन्यासों की सूची नीचे दी गई है। उनकी रचनाओं का विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद है।

दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर, युद्ध नामक राम कथा, श्रृंखला की कृतियों में कथाकार द्वारा सहस्राब्दियों की परम्परा से जनमानस में जमे ईश्वरावतार भाव और

भक्तिभाव की जमीन को उससे जुड़ी धर्म और ईश्वरवाची सांस्कृतिक जमीन को तोड़ा गया है। रामकथा की नई जमीन को नए मानवीय विश्वसनीय, भौतिक, सामाजिक, राजनैतिक और आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। नरेन्द्र कोहली ने प्रायः सौ से भी अधिक उच्च कोटि के ग्रंथों का सृजन किया है।

उपन्यास -

1. पुनरारंभ 1994 वाणी प्रकाशन, दिल्ली
2. आतंक 1972 राजपाल एंड संस दिल्ली
3. आश्रितों का विद्रोह 1973, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
4. साथ सहा गया दुख 1974, राजपाल एण्ड संस
5. मेरा अपना संसार 1975, पराग प्रकाशन दिल्ली
6. दीक्षा 1975, पराग प्रकाशन दिल्ली
7. अवसर 1976, पराग प्रकाशन दिल्ली
8. जंगल की कहानी, 1977 नेशनल पब्लिशिंग हाउस
9. संघर्ष की कहानी, 1947, पराग पब्लिशिंग दिल्ली
10. युद्ध (दो भाग)1979, पराग प्रकाशन

कहानी संग्रह -

1. परिणति 1969, नेशनल पब्लिशिंग हाउस
2. कहानी का अभाव 1977, पराग प्रकाशन
3. दृष्टिदेश में एकाएक 1979, पराग प्रकाशन
4. शटल 1982, पराग प्रकाशन
5. नमन का कैदी 1983, पराग प्रकाशन

नाटक -

1. शकुन की हत्या 1975, काव्यतरु प्रकाशन
2. निर्णय रुका हुआ 1985, कल्पतरु प्रकाशन
3. हत्यारे 1985, कल्पतरु प्रकाशन
4. गारे की दीवारें 1986, कल्पतरु प्रकाशन
5. समग्र नाटक 1990, पुस्तकायन

व्यंग्य -

1. एक और लाल तिकोन 1970, नेशनल पब्लिशिंग हाउस
2. पाँच एक्सर्ड उपन्यास 1972/1995 भारतीय प्रकाशन संस्थान
3. जमाने का अपराध 1973, नेशनल पब्लिशिंग हाउस
4. मेरी दोस्त व्यंग्य रचनाएँ 1977
5. आधुनिक लड़की की पीड़ा 1978, नेशनल पब्लिशिंग हाउस

निबंध -

1. नेपथ्य 1983, किताबघर
2. माजरा क्या है 1989, राजपाल एंड संस
3. जहाँ है धर्म वहीं जय 1993, वाणी प्रकाशन
4. किसे जमाऊँ 1996, वाणी प्रकाशन

संस्मरण -

1. बाबा नागार्जुन 1987, वाणी प्रकाशन
2. प्रतिनाद 1996, वाणी प्रकाशन [९५]

सम्मान एवं पुरस्कार -

1. राज्य साहित्य पुरस्कार 1975-76 (साथ सहा गया दुख) शिक्षा विभाग उत्तरप्रदेश शासन लखनऊ।
2. उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान पुरस्कार (1977-78) (मेरा अपना संसार) उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ। [९६]
3. इलाहाबाद नाट्य संघ पुरस्कार 1978 (शकुन की हत्या)
4. उत्तर प्रदेश संस्थान पुरस्कार (1979-80) (संघर्ष की ओर)
5. मानस संगम साहित्य पुरस्कार 1978 (समग्र रामकथा) मानस संगम कानपुर
6. श्री हनुमान मंदिर साहित्य अनुसंधान संस्थान विद्याकृति 1982 (समग्र रामकथा)
7. साहित्य सम्मान 1985-86
8. साहित्यिक कृति पुरस्कार 1987-88 (हिन्दी अकादमी दिल्ली)

9. डॉ. कामिल बुल्के पुरस्कार 1989-90 (समग्र साहित्य), राजभाषा विभाग बिहार सरकार, पटना)
10. चकल्लस पुरस्कार 1991 (समग्र व्यंग्य साहित्य)
11. शलाना सम्मान 1995-96 (समग्र साहित्य) हिंदी अकादमी दिल्ली
12. व्यास सम्मान 2012 (न भूतो न भविष्यति)
13. पद्म श्री 2017, भारत सरकार [१७]

15. राजेश जोशी -

परिचय -

राजेश जोशी का जन्म 18 जुलाई 1946 नरसिंह गढ़, मध्यप्रदेश में हुआ था। साहित्य अकादमी से पुरस्कृत हिन्दी साहित्यकार हैं। उन्होंने शिक्षा पूरी करने के बाद पत्रकारिता शुरू की और कुछ सालों तक अध्यापन किया। राजेश जोशी ने कविताओं के अलावा कहानियाँ, नाटक, लेख और टिप्पणियाँ भी लिखीं। उन्होंने कुछ नाट्य रूपान्तर तथा कुछ लघु फिल्मों के लिए पटकथा लेखन का कार्य भी किया। उनके द्वारा भर्तृहरी की कविताओं की अनुरचना भूमिका ''कल्पप तक यह भी'' एवं माय कोवस्की की कविता का अनुवाद ''तलून पहिना बादल'' नाम से किए गए हैं। कई भारतीय भाषाओं के साथसाथ अंग्रेजी-, रूसी और जर्मन में भी उनकी कविताओं के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। [१८]

राजेश जोशी ने एमकी (समाजशास्त्र) .ए.और एम (जीव विज्ञान) .सी.एस. हो गये। शिक्षा प्राप्त करते ही डिग्रियाँ हासिल कीं और फिर एक बैंक में संबद्ध उन्होंने पत्रकारिता प्रारम्भ की तथा कुछ समय तक अध्यापन कार्य किया।

राजेश जोशी की प्रारंभिक रचनाएँ, वातायन, लहर, पहल, धर्मयुग, साप्ताहिक, हिन्दुस्तान तथा सारिना आदि पत्रपत्रिकाओं में प्रायः प्रकाशित होती रहीं। - फिल्मों की पटकथाएँ भी -पत्रिकाओं के संपादन के अतिरिक्त कुछ लघु साहित्यिक लिखीं। अब तक चार कविता संग्रह, दो कहानी संग्रह और चार नाटक छप चुके हैं। समर गाथा नाम से एक लम्बी कविता भी छपी है। मायोवस्की और भर्तृहरी की कविताओं का अनुवाद भी किया। गेंद निराली मिटू की, नाक से बाल कविताओं का एक संग्रह छपा है। [१९]

राजेश जोशी की कविताएँ गहरे सामाजिक अभिप्राय वाली होती हैं। वे जीवन के संकट में भी गहरी आस्था को उभारती हैं। उनकी कविताओं में स्थानीय बोली-बानी, मिजाज और मौसम सभी कुछ व्याप्त है। उनके काव्य लोक में आत्मीयता और लयात्मकता है तथा मनुष्यता को बचाए रखने का एक निरंतर संघर्ष भी। दुनिया के नष्ट होने का खतरा राजेश जोशी को जितना प्रबल दिखाई देता है, उतना ही वे जीवन की संभावनाओं की खोज के लिए बेचन दिखाई देते हैं।

कविता संग्रह -

एक दिन बोलेंगे पेड़, मिट्‌टी का चेहरा, चिड़िया, निराशा, हर जगह आकाश, नेपथ्य में हँसी, शासन होने की इच्छा, वृक्षों पर प्रार्थना गीत, दो पंक्तियों के बीच, भूलने की भाषा, बच्चे काम पर जा रहे हैं।

कहानी संग्रह - सोमवार और अन्य कहानियाँ, कपिल का पेड़।

नाटक - जादू जंगल, अच्छे आदमी, टंकारा का गाना।

संस्मरण - किस्सा कोताह

पुरस्कार -

शमशेर सम्मान, पहल सम्मान, मध्यप्रदेश सरकार का शिखर सम्मान, माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार के साथ केन्द्र साहित्य अकादमी के प्रतिष्ठित सम्मान से सम्मानित किया गया है। [६०]

16. कृष्णा सोबती -

परिचय -

कृष्णा सोबती का जन्म गुजरात में 18 फरवरी 1925 को हुआ था। भारत विभाजन के बाद वह गुजरात का हिस्सा पाकिस्तान में चला गया। विभाजन के बाद वे दिल्ली में आकर बस गयीं और तब से यहीं रहकर साहित्य सेवा कर रही हैं। उन्हें 1980 में 'जिन्दगीनामा' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। 1996 में उन्हें साहित्य अकादमी का फेलो बनाया गया। जो अकादमी का सर्वोच्च सम्मान है। 2017 में इन्हें भारतीय साहित्य के सर्वोच्च सम्मान ''ज्ञानपीठ पुरस्कार'' से सम्मानित किया गया है। ये मुख्यतः कहानी लेखिका हैं।

इनकी कहानियाँ 'बादलों के घेरे में' नामक संग्रह में संकलित हैं। इन कहानियों के अतिरिक्त इन्होंने आख्याचित्र की एक विशिष्ट शैली के रूप (फिक्शन)

में विशेष प्रकार की लंबी कहानियों का सृजन किया है जो औपन्यासिक प्रभाव उत्पन्न करती हैं। ऐ लड़की, डार से बिछुड़ी, यादों के पार, तीन पहाड़, जैसी कथाकृतियाँ अपने विशिष्ट आकारप्रकार के कारण उपन्यास के रूप में प्रकाशित - भी हैं। इनका निधन25 जनवरी 2019 को एक लम्बी बीमारी के बाद सुबह साढ़े आठ बजे एक निजी अस्पताल में हो गया। [६१]

उन्होंने पचास के दशक में अपना लेखन कार्य शुरू किया। अपनी पहली कहानी लामा जो 1950 में प्रकाशित हुई। उन्होंने मुख्यतः उपन्यास, कहानी संस्मरण विधाओं पर ज्यादा लिखा है। आपकी मुख्य कृतियाँ डार से बिछुड़ी जिंदगीनामा, एक लड़की, मित्रों मर जानी, हम हशमत इत्यादि हैं, कृष्णा जी को विभिन्न सम्मानों से सम्मानित किया गया है, आपकी बेलाग कथात्मक अभिव्यक्ति और सौष्ठपूर्ण रचनात्मकता के लिए जानी जाती है। उन्होंने हिंदी की कथा भाषा को विलक्षण ताजगी दी है। उनके भाषा संस्कार के घनत्व, जीवन्त प्रांजलता और संप्रेषण ने हमारे समय के कई पेचीदा सत्य उजागर किये हैं।

प्रकाशित कृतियाँ -

- बादलों के घेरे -1980

- लम्बी कहानी (उपन्यासिका/आख्या चित्र)

1. डार से बिछुड़ी (1958)
2. मित्रों मरजानी (1967)
3. यारों के यार (1968)
4. ऐ लड़की (1991)
5. जैनी मेहर कान सिंह (2007) (चल-चित्रीय पर कथा, मित्रों मरजानी की रचना के बाद ही रचित, परन्तु चार दशक बाद 2007 में प्रकाशित)

उपन्यास -

1. सरजमुखी अंधेरे के (1972)
2. जिन्दगीनामा (1979)
3. दिलो दानिश (1993)
4. समय सरगम (2000)
5. गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान (2017)
   (निजी जीवन को स्पर्श करती औपन्यासिक रचना)

विचार- संस्मरण-संवाद-

1. हम हशमत (तीन भागों में)
2. सोबती एक सोहबत
3. शब्दों के आलोक में
4. सोबती वैद संवाद

5. मुक्तिबोध, एक व्यक्तित्व सही की तलाश में (2017)

6. लेखन का जन क्षेत्र (2018) 7. मार्फत दिल्ली (2018)

यात्रा-आख्यान - बुद्ध का कर्म मण्डल- लद्दाख

सम्मान एवं पुरस्कार -

साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्यता समेत कई राष्ट्रीय पुरस्कारों एवं अलंकरणों से शोभित कृष्णा सोबती ने पाठक को निज के प्रति सचेत और समाज के प्रति चैतन्य किया है।

आपको हिंदी अकादमी दिल्ली की ओर से वर्ष 2000-2001 में शलाका सम्मान से सम्मानित किया गया था। उन्हें 2017 का 53वाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार देने की घोषणा हुई है। [६२]

पुरस्कार -

- 1999, कथा चुड़ामणि पुरस्कार
- 1981, शिरोमणि पुरस्कार
- 1982, हिन्दी अकादमी अवार्ड
- 2000-2001, शलाका पुरस्कार
- 1980, साहित्य अकादमी पुरस्कार
- 1996, साहित्य अकादमी फेलोशिप
- 2017, ज्ञानपीठ पुरस्कार

17. गोविन्द मिश्र -

परिचय -

हिन्दी के जाने माने कवि और लेखक हैं। उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान, भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता साहित्य अकादमी, दिल्ली तथा व्यास सम्मान द्वारा गोविंद को उनकी साहित्य सेवाओं के लिए सम्मानित किया जा चुका है। अभी तक उनके 103 उपन्यास और 92 कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त यात्रा वृतांत, बाल साहित्य, साहित्यिक निबंध और कविता संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। वे पाठ्यक्रम की पुस्तकों में भी शामिल किए गए हैं। रंगमंच पर उनकी रचनाओं का मंचन किया गया है और टीवी धारावाहिकों में भी उनकी रचनाओं पर चल चित्र प्रस्तुत किए गए हैं।

गोविन्द मिश्र का जन्म 1 अप्रेल 1939 में उत्तरप्रदेश के बांदा जिले के अतर्रा गाँव में हुआ था। 1957 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की विशारद परीक्षा पास की। सन् 1959 में अंग्रेजी साहित्य में एमइ .ए.लाहाबाद विश्वविद्यालय से की।

वर्ष 1963 से लगातार लेखन कार्य, वर्ष 1997 में अध्यक्ष केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड से सेवानिवृत्ति।

गोविन्द मिश्र के पिता का नाम माधव प्रसाद मिश्र तथा माता का नाम सुमित्रा देवी मिश्रा था। उनका बचपन गाँव के प्राकृतिक वातावरण में व्यतीत हुआ था। उनकी माँ अध्यापिका थीं, जिनसे मध्यमवर्गीय कुलीनता से संस्कार सहज ही उन्होंने ग्रहण किये। गुरु देवेन्द्र नाथ खरे से उन्होंने साहित्यिक संस्कार पाए। उनकी आठवीं कक्षा तक की शिक्षा गंगासिंह हाईस्कूल चार बारी में हुई। नौंवी से बारहवीं की पढ़ाई बाँद्रा में डीस्कूल तथा राजकीय इंटर कॉलेज में हुई। दोनों .वी.ए. परीक्षाओं में ही उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। स्नातक की उपाधि के लिए वे द विश्वविद्यालय गएइलाहाबा, जहाँ उन्होंने संस्कृत साहित्य, मध्यकालीन इतिहास और अंग्रेजी साहित्य के साथ यह उपाधि प्राप्त की। उन्होंने 1957 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की और 1959 (अंग्रेजी साहित्य में) इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। परीक्षा पास करते ही वे सेंट एंड्रू कॉलेज गोरखपुर में प्राध्यापक बन गये। लगभग एक साल तक वहाँ काम करने के बाद वे अतर्रा डिग्री कॉलेज में विभागाध्यक्ष बनकर आ गये। इसके साथ ही वे भारतीय प्रशासनिक सेवा की तैयारी करते रहे। 1960 में पहले ही प्रयत्न में चुन लिए गए और 1961 में उनकी पहली नियुक्ति धनबाद में हुई। कर्म के क्षेत्र में उन्होंने जिस ईमानदारी और कार्य कुशलता का परिचय दिया उसने उन्हें राजस्व सेवा के पद अध्यक्ष, केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड तक पहुँचाया। इसके बाद वे केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो के निदेशक भी बने। 1997 में सेवानिवृत्त हो गये।[६३] गोविन्द मिश्र ने 1943 से नियमित लेखन के संसार में प्रवेश किया। जो अभी तक निर्बाध गति से जारी है।

प्रकाशित कृतियाँ -

उपन्यास वह अपना चेहरा -, उतरती हुई धूप, लाल पीली जमीन, हुजूर दरबार, तुम्हारी रोशनी में धीरे समीरे, पाँच आंगनों वाला घर, फूल इमारतें और बन्दर, कोहरे में कैद रंग[६४] , धूल पौधों पर।

कहानी संग्रह - नये पुराने, माँ, अंतःपुर, धांसू, रगड़खाती आत्महत्यायें, मेरी प्रिय कहानियाँ, अपाहिज, खुद के खिलाफ, खाक इतिहास, पगला बाबा, आसमान

कितना नीला, स्थितियाँ रेखांकित साठ के बाद की हिंदी कहानी का संकलन) हवाबाज (सम्पादित, मुझे बाहर निकालो।

यात्रा- वृतान्त- धुंध भरी सुर्खी दरख्तों के पार, शाम झूलती जड़ें, परतों बीच यात्राएं।

साहित्यिक निबंध- साहित्य का संदर्भ, कथा भूमि, संवाद अनायास, समय और सर्दाना।

बाल साहित्य - कवि के घर में चोर, राधाकृष्ण प्रकाशन, मास्टर मनसुख राम, आदमी ना जानवर।

कविता - ओ प्रकृति माँ

संस्मरण - सतपुड़ा के भीतर से

विविध - मुझे घर ले चलो (सभी विधाओं का प्रतिनिधि संकलन, लेखन जमीन - अग अलग समय पर दिये गये साक्षात्कारों का संकलन, अर्थ ओझल (भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित प्रमुख बीस कहानियों का संग्रह) दस प्रतिनिधि कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ, निर्झरिणी (दो खण्डों में सम्पूर्ण कहानियों का संकलन) प्रतिनिधि कहानियाँ मेरे साक्षात्कार, चुनी हुई रचनाएँ - तीन खण्डों में। [६५]

पुरस्कार व सम्मान -

गोविन्द मिश्र को अनेक प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत व सम्मानित किया गया है। उनके उपन्यास लाल पीली जमीन को ऑथर्स गिल्ड ऑफ इण्डिया द्वारा, 'हुजर दरबार' को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के प्रेमचन्द पुरस्कार द्वारा, उपन्यास धीरे समीर को भारतीय भाषा परिषद कोलकता द्वारा, उपन्यास 'कोहरे में कैद रंग' को साहित्य अकादमी द्वारा तथा उपन्यास 'पाँच आंगनों वाला घर' को बाल सम्मान द्वारा सम्मानित किया गया है। उन्हें समग्र साहित्य योगदान के लिए राष्ट्रपति द्वारा 2001 में सुब्रमण्य भारती सम्मान भी प्रदान किया गया है। उनके उपन्यास 'तुम्हारी रोशनी में धीरे समीरे' गुजराती में, पाँच आंगनों वाला घर का गुजराती और मराठी में अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। उनकी विभिन्न कहानियाँ दूसरी भाषाओं जैसे अंग्रेजी, बंगाली, पंजाबी, गुजराती और कन्नड़ में अनूदित हुई हैं।

उनके उपन्यास 'धूल पौधों पर' के लिए वर्ष 2013 का सरस्वती सम्मान प्रदान किया गया। वह 1991 में डॉहरिवंश राय बच्चन के बाद इस सम्मान को .

प्राप्त करने वाले वेहिन्दी के दूसरे रचनाकार हैं। यह पुस्तक 2008 में प्रकाशित हुई थी। [६६]

18. मैत्रेयी पुष्पा -

परिचय -

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवम्बर 1944 को अलीगढ़ जिले के सिकुर्रा गांव में हुआ। उनकी आरंभिक शिक्षा झाँसी जिले के खिल्ली गाँव में तथा एम .ए. बुंदे (हिन्दी साहित्य)लखण्ड कॉलेज, झाँसी से हुई है। मैत्रीय पुष्पा ने अपनी लेखनी में ग्रामीण भारत को साकार किया है। उनके लेखन में बृज और बुंदेल दोनों संस्कृतियों की झलक दिखाई देती है। मैत्रेयी पुष्पा को रांगेय राघव और फणीश्वर नाथ 'रेणु' की श्रेणी की रचनाकार माना जाता है।

उन्हें राष्ट्रीय सहारा, वनिता जैसे पत्रपत्रिकाओं में निरंतर साहित्य लेखन का - प्रसिद्धी साहित्यकार अनुभव प्राप्त है। इतनी, उपन्यासकार, कहानीकार के रूप में प्रसिद्धी मिली। मैत्रेयी पुष्पा के लेखन में बृज और बुंदेली दोनों संस्कृतियों की झलक दिखाई देती है। [६७]

मैत्रेयी पुष्पा के व्यक्तित्व में एक प्रतिभाशाली लेखिका की झलक है। मैत्रेयी पुष्पा स्वभाव से सरल एवं संवेदनशील हैं। इनका जीवन अनेक संघर्षों से गुजरा, लेकिन इन्होंने अपने जीवन में कभी हार नहीं मानी, वरन् सभी संघर्षों का मुकाबला हिम्मत से किया। इन्होंने समाज में फैली अपने बुराइयों को देखा व अनुभूत किया, इन्हीं समस्याओं ने आपको लेखन कार्य के लिए प्रेरित किया। मैत्रेयी पुष्पा का बाह्य व्यक्तित्व अत्यन्त सरल एवं आकर्षक है जो कि इनकी सरलता, सहजता, स्वाभाविकता को व्यक्त करता है। साथ ही आपने आन्तरिक व्यक्तित्व को भी सामने लाता है। किसी भी लेखक के व्यक्तित्व से ही उसकी विचारधारा की पहचान होती है अर्थात् लेखन से ही उसका आकलन किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के दो रूप होते हैं। बाह्य व्यक्तित्व और आन्तरिक व्यक्तित्व। मनुष्य का बाह्य व्यक्तित्व यदि बाह्य जगत को प्रभावित करने की क्षमता रखता है तो पूर्ण रूप से सामाजिक प्रभाव के लिए बाह्य और आन्तरिक दोनों ही व्यक्तित्व महत्व रखते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्व दोनों व्यक्तित्व अनूठे हैं। इनके व्यक्तित्व से कुछ ऐसे पहलू जुड़े हुए हैं जो स्वयं में विशिष्ट हैं और पाठकों को आकर्षित करते हैं। आपके व्यक्तित्व का वर्णन करना कठिन है। इनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को जानने के लिए आन्तरिक और बाह्य दोनों व्यक्तित्वों का आकलन अनिवार्य है।

बाह्य व्यक्तित्व से तात्पर्य रूपाकार व वेशभूषा से होता है। अर्थात् वेशभूषा, मुखमुद्रा इत्यादि बिन्दु बाहरी व्यक्तित्व के सूचक माने जाते हैं। यदि किसी व्यक्ति की बाह्य वेशभूषा को देखकर अन्य सभी व्यक्ति उससे प्रभावित होकर उसकी तरफ आकर्षित हो जायें तो वह प्रभावशाली व्यक्तित्व कहलाता है। इसके विपरीत किसी भी प्रकार का व्यक्तित्व साधारण व्यक्तित्व कहलाता है। मैत्रेयी पुष्पा वास्तव में एक प्रभावशाली व्यक्तित्व की स्वामिनी हैं। लम्बा कद, गौर वर्णी स्वरूप आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व को दर्शाते हैं। लम्बे घुंघराले बाल, बड़ीबड़ी आँखें आपके - विचारशील, संवेदनशील स्वभाव एवं दूरदर्शी दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं, आपकी वेशभूषा अत्यन्त आकर्षक एवं सरल है। आपकी मुखमुद्रा असीम धैर्य, साहस एवं वात्सल्यमय स्वभाव को व्यक्त करती है।

आन्तरिक व्यक्तित्व के अन्तर्गत व्यक्ति की मानसिकता, स्वभाव, दृष्टिकोण आदि तत्व आते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि एक लेखक के आंतरिक व्यक्तित्व से तात्पर्य उनके हृदयगत विचारों, अनुभूतियों से है। कहने का आशय यह है कि किसी लेखक की विचारानुभूति एवं विचार दृष्टिकोण से ही हम आन्तरिक व्यक्तित्व का आकलन कर सकते हैं। मैत्रेयी पुष्पा का बाह्य व्यक्तित्व जितना आकर्षक है, उनका आन्तरिक व्यक्तित्व भी उतना ही सुंदर है। अपने जीवन में अनेक संघर्षों का सामना करने के कारण आप कर्मनिष्ठ, साहसी एवं धैर्यवान बन गयी। आपने जीवन में कभी हारना नहीं सीखा। जिस कार्य को करने का निश्चय किया उसे पूर्णता पर पहुँचाया। आप वात्सल्यमयी होने के साथ स्वाभिमानी एवं यथार्थवादी भी हैं।[६८]

कृतियाँ -

उपन्यास -स्मृति देश (1990), बेतवा बहती रही (1993), इदन्नमम (1994), चाक (1997), झुला नट (1999), आत्मा कबुतरी (2004), कहे ईसुरी फाग (2008), चिन्हार (2005), गुनाह बे गुनाह (2011)

आत्मकथा -कस्तुरी कुण्डल बसै, गुड़िया भीतर गुड़िया

कहानी संग्रह - चिन्हार, ललममियाँ तथा अन्य कहानियाँ जिया हठ, फैसला, सिस्टर सेंध, अब फूल नहीं खिलते, बोझ, पगला गई के भागवति, छाँ, तुम किसकी हो बिन्नी?

कविता संग्रह- लकिरे

संस्मरण - अगन पाखी, वह सफर था कि मुकाम था

लेख संग्रह - खुली खिड़कियाँ [६९]

सम्मान -

1. हिंदी अकादमी द्वारा साहित्य कृति सम्मान
2. कहानी, फैसला पर कथा पुरस्कार मिला।
3. बेतवा बहती रही, उपन्यास पर उहिन्दी संस्थान द्वारा प्रेमचंद .प्र. सम्मान
4. इदन्नमम् उपन्यास पर शाश्वति संस्था बंगलौर द्वारा नेजनागुड्ड तिरूआ सेवा पुरस्कार
5. मध्यप्रदेश साहित्य परिषद द्वारा वीर सिंह देव सम्मान
6. वनमाली सम्मान 2011 [७०]

19. कन्हैयालाल नंदन -

परिचय -

कन्हैयालाल नंदन का जन्म 1 जुलाई 1933 उत्तरप्रदेश के फतेहपुर जिले के परसदेपुर गाँव में हुआ था। मृत्यु 25 सितम्बर 2010 में हुई है। वरिष्ठ पत्रकार और साहित्यकार, मंचीय कवि और गीतकार के रूप में मशहूर रहे। नंदन ने पत्रकारिता और साहित्य के क्षेत्र में अपना अलग मुकाम बनाया। पराग, सारिका और दिनमान जैसी पत्रिकाओं में बतौर संपादन अपनी छाप छोड़ने वाले नंदन ने कई किताबें भी लिखीं। कन्हैयालाल नन्दन को भारत सरकार के पद्मश्री पुरस्कार के अलावा भारतेन्दु पुरस्कार और नेहरू फेलोशिप पुरस्कार से भी नवाजा गया। [७१]

उनके परिवार में पत्नी और दो पुत्रियाँ हैं, उनकी एक पुत्री अमेरिका और दूसरी दिल्ली रहती है। उनके एक करीबी सहयोगी के अनुसार नंदन स्वभाव से बेहद सरल और उच्च व्यक्तित्व के धनी थे। वह बतौर सम्पादन खोजी पत्रकारिता

और नए आयामों के पक्षधर थे। उन्होंने अपने पत्रकारिता जीवन की शुरुआत मशहूर पत्रिका 'धर्मपुत्र' से की। पत्रकारिता में कदम रखने से पहले वे अध्यापन से जुड़े थे।

शिक्षा -

कन्हैयालाल नंदन ने डी.ए.कॉलेज कानपुर से बी .वी.ए., प्रयाग विश्वविद्यालय इलाहाबाद से एमकिया। .डी.एच.और भाव नगर विश्वविद्यालय से पी .ए.

अध्यापन -

चार वर्षों तक बंबई विश्वविद्यालय से संलग्न कॉलेजों में हिंदी अध्यापन के बाद 1961 से 1972 तक टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन समूह के धर्मयुग में सहायक संपादक रहे। 1972 से दिल्ली क्रमशः 'पराग', 'सारिका' और दिनमान के संपादक रहे। तीन वर्ष दैनिक नवभारत टाइम्स में फीचर सम्पादन किया। 6 वर्ष तक हिन्दी संडे मेल में प्रधान संपादन रहने के बाद 1994 से इंडसइंड मीडिया में निर्देशक रहे।

पत्रकारिता -

1. 1961 से 1972 तक टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन समूह के धर्मयुग में सहायक संपादन।
2. 1972 में दिल्ली में क्रमशः पराग, सारिका और दिनमान के संपादक
3. तीन वर्ष तक दैनिक नवभारत टाइम्स में फीचर संपादन
4. 6 वर्ष तक हिंदी संडे मेल में प्रधान संपादन
5. 1995 से इंडसइंड मीडिया में निदेशक के पद पर

रचनाएँ -

सत्तर के दशक से अस्सी के दशक के शुरू के काल में बचपन व्यतीत करने वाले ऐसे करोड़ों हिंदी भाषी लोग होंगे जिन्होंने अपने बचपन में नंदन जी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाली बाल पत्रिका 'पराग' के द्वारा बाल साहित्य के मायावी कल्पनात्मक और ज्ञानवर्धन संसार में गोते लगाकर गंभीर और श्रेष्ठ साहित्य पढ़ने की और कदम बढ़ाने के लिये आरम्भिक शिक्षा दीक्षा प्राप्त की। इसी पीढ़ी ने थोड़ा बड़े होकर नंदन जी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं

सारिका और दिनमान के जरिये देश-विदेश का साहित्य पढ़ने और सम-सामयिकी विषयों को समझने की समझ विकसित की।[७२]

जिन्दगी की ये जिद है
ख्वाब बन के उतरेगी।
नींद अपनी जिद पर है,
इस जन्म मैं न आयगी
दो जिदों के साहिल पर
मेरा आशियाना है
वो भी जिद पे आमदा
जिन्दगी को कैसे भी
अपने घर बुलाना है

-कन्हैयालाल नंदन [७३]

प्रमुख रचनाएँ -

मुझे मालूम है, समय, एक टुकड़ा बसन्त (संग्रह कविता), अमृता शेरगिल (चित्रकला), जरिया (लेख) नजरिया -, अंतरंग (साक्षात्कार), आग के रंग, और कृति स्मृति (समीक्षा), धरती लाल गुलाबी चेहरे (यात्रा संस्मरण), लुकुआ का शाहनामा (कविताएँ), घाट घाट का पानी, समय की दहलीज, जरिया नजरिया, गीत संचय।

सम्मान -

पद्म श्री सम्मान, भारतेन्दु पुरस्कार, अज्ञेय पुरस्कार, रामकृष्ण जय दयाल सद्भावना पुरस्कार ।[७४]

20. ऋचा नागर -

परिचय -

ऋचा नागर का जन्म 2 दिसम्बर 1939 को लखनऊ, उत्तरप्रदेश में हुआ था। साहित्यकार, कथाकार, हिन्दी फिल्म पट कथाकार एवं संवाद लेखिका है। ये साहित्यकार अमृत लाल नागर की पुत्री है। निकाह (1982), आखिर क्यों (1985), बागवान (2003), ईश्वर (1989), फिल्म पटकथा, मेरा पति सिर्फ मेरा है (1990), निगाहें (1989), नगीना (1986) आदि उनकी प्रदर्शित प्रमुख फिल्में हैं। एक साहित्यकार के रूप में उनके दो कथा संग्रह क्रमशः नायक-खलनायक और बोल

मेरी मछली तथा एक संस्मरण संग्रह 'बाबूजी बेराजी एंड कंपनी' प्रकाशित है। उन्हें साहित्यभूषण पुरस्कार, हिन्दी उर्दू साहित्य अवार्ड कमेटी सम्मान, यशपाल, अनुशंसा सम्मान, साहित्य शिरोमणि सम्मान आदि से सम्मानित किया जा चुका है। [७५]

जीवनी -

इनका वास्तविक नाम सावित्री देवी उर्फ बिट्टो था। इनकी माता का नाम प्रतिमा देवी था। वे अपने माता-पिता की चार संतानें हैं। उनके नाम - कुमुद नागर, शरद नागर, डॉ. ऋचा नागर, आरती पंड्या है।

शिक्षा -

इन्होंने बी.सी.एस., एमप्राप्त की शिक्षा (हिन्दी साहित्य) .डी.एच.और पी .ए. ऋचा नागर ने .की। डॉ1982 में प्रख्यात फिल्मकार बीचौपड़ा की निर्माण .आर. फिल्म्स से जुडी और उनके लिए एक सफल फिल्म.आर.संस्था बी'निकाह' की पटकथा लिखी। यह फिल्म बहुत चर्चित हुई थी। डा0 ओमप्रकाश निर्देशित फिल्म 'आखिर क्यों' को एक स्त्री की सशक्त अभिव्यक्ति के लिहाज से बहुत महत्त्वपूर्ण फिल्म माना जाता है। इसमें स्मिता पाटिल की भूमिका यादगार है और याद की जाती है।

लेखन शैली -

डॉनाते-ऋचा नागर की पटकथा में रिश्ते ., जवाबदारियाँ, वफाएँ, प्रेम, जज्बात, निकाह के छोटेरहता है छोटे दृश्य इतने सशक्त होते हैं कि दर्शक बँधा-, सचमुच में रेखांकित करने वाली चीज है कि एक स्त्रीसृजन मानवीय जीवन के समूचे - परिदृश्य को जिस संवेदना की निगाह से देखती है, जिस गहराई से उसका आंकलन करती है, उतनी नजदीकी पुरुष पटकथाकारों में शायद नहीं होती। ऋचा नागर का जिक्र करते हुए खासतौर पर उनकी एक सशक्त फिल्म 'बागवान' की बात करना बहुत उचित इसलिए लगता है कि इस फिल्म के माध्यम से ही अमिताभ बच्चन काफी अरसे से और अन्तराल के बाद किसी अच्छी भूमिका के लिए एक दम नोटिस किये गये थे। बागवान बिना किसी अतिरिक्त व्यावसायिक सावधानी या प्रचार के प्रदर्शित फिल्म थी जो परिवारों ने पसन्द की थी। बाद में डॉ ऋचा नागर ने रवि चौपड़ा के लिए .'बाबुल' फिल्म की पटकथा भी लिखी थी

यद्यपि यह उतनी सफल नहीं हुई, मगर उसका विषय आज के संदर्भ में काफी साहसिक था। डॉअचला नागर की पटकथा की यह विशेषता है कि उसकी हिंदी . यने रखता है। कलाकार उसे परदे पर प्रभावी ढंग से और भाषा विन्यास बहुत मा अभिव्यक्त करते हैं वह रुटीन फिल्मों से अलग हटकर होती है। ईश्वर, मेरा पति सिर्फ मेरा है, निगाहें, नगीना, सदा सुहागन आदि उनकी चर्चित फिल्में हैं। [७६]

रचनाएँ -

1. नायक खलनायक -
2. बोल मेरी मछली

संस्मरण -

1. बाबूजी बेटाजी एंड कम्पनी 2015

फिल्म पटकथा -

निकाह, आखिर क्यों, बागवान, बाबुल, ईश्वर, मेरा पति सिर्फ मेरा है, निगाहें, नगीना, सदा सुहागन।

पुरस्कार -

1. फिल्म निकाह के लिए 1983 में सर्वश्रेष्ठ संवाद का फिल्म फेयर पुरस्कार जीता।
2. 2003 में हिंदी संस्थान उत्तर प्रदेश द्वारा साहित्य भूषण पुरस्कार।
3. हिन्दी उर्दू साहित्य अवार्ड कमेटी सम्मान।
4. 1987 में हिन्दी संस्थान उत्तर प्रदेश द्वारा यशपाल अनुशंसा पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
5. 2009 में हिन्दी उर्दू साहित्य अवार्ड कमेटी उत्तरप्रदेश द्वारा। साहित्य शिरोमणि सम्मान पुरस्कार से नवाजा गया।
6. महाराष्ट्र राज्य हिंदी अकादमी द्वारा सुब्रमण्यम भारती हिंदी सेतु विशिष्ट सेवा पुरस्कार 2010-2011
7. फिल्म बाबुल के लिए उन्हें 2011 में दादा साहेब फाल्के अकादमी सम्मान से सम्मानित किया गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (चतुर्थ अध्याय)

१ डॉ.रामदरश मिश्र, रामदरश मिश्र की कविताएँ, पृ.सं. 2

२ डॉ.रामदरश मिश्र, पथ के गीत पृ.सं. 1

३ डॉ.रामदरश मिश्र, मधुमिता, पृ.सं. 5, 6

४ डॉ.रामदरश मिश्र, कविता कोश, पृ.सं. 4

५ डॉ.रामदरश मिश्र, नई धारा पत्रिका, पृ.सं. 7

६ विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, साहित्य अकादमी के बारे में, पृ.सं. 1

७ विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, छायावादोत्तर हिंदी गद्य साहित्य, पृ.सं. 2, 3

८ विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, मेरे साक्षात्कार, पृ.सं. 2

९ विद्यानिवास मिश्र, माटी महिमा का सनातन राग, पृ.सं. 1

१० मनोहर श्याम जोशी, श्याप, पृ.सं. 3, 4

११ मनोहर श्याम जोशी, मैं कौन हूँ, पृ.सं. 2

१२ डॉ.कांति कुमार जैन, लौटकर आना नहीं होगा, पृ.सं. 3

१३ डॉ.कांति कुमार जैन, जो कहूँगा सच कहूँगा, पृ.सं. 10, 11

१४ डॉ.कांति कुमार जैन, बैकुंट में बचपन, पृ.सं. 6

१५ विष्णु प्रभाकर, अभिव्यक्ति, पृ.सं. 1

१६ जागरण समाचार, 24 जून, 2012, गाँधीवादी साहित्यकार विष्णु प्रभाकर नहीं रहे, पृ.सं. 1

१७ जागरण समाचार, 11 अप्रेल, 2009, साहित्य को पंखहीन छोड़ गये विष्णु प्रभाकर, पृ.सं. 2

१८ सं. लक्ष्मी कांत पाण्डेय, विवेकीराय के निबंधों में जीवन संवेदन, पृ.सं. 36-39

१९ विवेकीराय, माटी की महक, पृ.सं. 10

२० समय संवाद पत्रिका, 6 फरवरी, 2014, पुरालेखित 22 फरवरी, 2014, पृ.सं. 7, 8

२१ सं. मान्धाता राय, निवेदिता: विवेकीराय विशेषांक, पृ.सं. 5

२२ द टाइम्स ऑफ इण्डिया, समाचार, 11-21-2006, Congsees red 95 up honours Abhishek पुरालेख 1-023-2009

२३ एक्सप्रेस इंडिया समाचार 09-13-2006, Namwar Singh Ramesh Kuntal to be awarded Hindi Sansthan award पुरालेख 1-03-2009, पृ.सं. 10

[२४] सं. ओ.पी. माथुर, Indira Gandhi and the emergenceas viewed in the Indian novel. पृ.सं. 7

[२५] सं. द्वारिकाप्रसाद चारूमित्र, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी पर एकाग्र, पृ.सं. 8

[२६] डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी, व्योमकेश दरवेश, संस्करण 2012, पृ.सं. 1

[२७] डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी, गुरुजी की खेतीबारी, संस्करण 2015, पृ.सं. 7

[२८] डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी, गुरुजी की खेतीबारी, संस्करण 2015, पृ.सं. 8

[२९] डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवरणी तुलसीदास, पृ.सं. 12

[३०] डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी, मधुरेश, पृ.सं. 81

[३१] समकालीन भारतीय साहित्य पत्रिका, अंक 91, सितम्बर-अक्टूबर 2000, महावीर अग्रवाल, की समीक्षा, पृ.सं. 264-266

[३२] नामवर सिंह, बात-बात में बात, पृ.सं. 230

[३३] निर्मला जैन, हिंदी आलोचना का दूसरा पाठ, पृ.सं. 143-144

[३४] डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी, प्रगतिशील वसुधा पत्रिका, अंक 78, पृ.सं. 5

[३५] सं. द्वारिका प्रसाद चारूमित्र, डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी पर एकाग्र, पृ.सं. 43-44

[३६] सं. द्वारिका प्रसाद चारूमित्र, डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी पर एकाग्र, पृ.सं. 32, 34

[३७] सं. द्वारिका प्रसाद चारूमित्र, डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी पर एकाग्र, पृ.सं. 35, 38

[३८] महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की पत्रिका, हिंदी समय में ओम थानवी की रचनाएँ, पृ.सं. 1

[३९] समाचार मीडिया ब्योरो पत्रिका, 3 सितम्बर, 2018, वरिष्ठ पत्रकार ओम थानवी, पृ.सं. 5

[४०] जागरण जोश शोप पत्रिका, नई दिल्ली, करेंट अफेयर्स मार्च, 2015, पृ.सं. 5789

[४१] रामशरण जोशी, आदिवासी समाज और शिक्षा, पृ.सं. 5

[४२] रामशरण जोशी, मीडिया विमर्श, पृ.सं. 1, 2

[४३] काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, संस्करण 2012, पृ.सं. 1

[४४] काशीनाथ सिंह, अपना मोर्चा, संस्करण 1985, पृ.सं. 6

[४५] काशीनाथ सिंह, घोआस, संस्करण 2015, पृ.सं. 4

[४६] ममता कालिया, पुस्तक की भूमिका, पृ.सं. 1

[४७] ममता कालिया, ममता कालिया का व्यक्तित्व, पृ.सं. 2

[४८] ममता कालिया, ममता कालिया की कहानियाँ, भाग 1, पृ.सं. 2

[४९] ममता कालिया, ममता कालिया की कहानियाँ, भाग 2, पृ.सं. 1

[५०] ममता कालिया, कितने शहरों में कितनी बार, पृ.सं. 1, 2

[५१] भारत समाचार, 8 दिसम्बर, 2017, साहित्यकार ममता कालिया को व्यास सम्मान, पृ.सं. 1, 2

[५२] वाणी प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, समाचार 28 अप्रेल, 2017, पृ.सं. 1

[५३] निर्मला जैन, रससिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र, पृ.सं. 2, 3

[५४] निर्मला जैन, दिल्ली: शहर दर शहर, पृ.सं. 1, 2

[५५] नरेन्द्र कोहली, प्रतिनाथ संस्मरण, पृ.सं. 1, 2

[५६] नरेन्द्र कोहली, अभिज्ञान, रामकथा, दीक्षा, अवसर, संघर्ष की और, उपन्यास, पृ.सं. 3, 4, 5

[५७] संपादन डॉ.विवेकीराय व कार्तिकेय कोहली, एक व्यक्ति: नरेन्द्र कोहली, पृ.सं. 1, 2

[५८] राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच, पृ.सं. 1, 2

[५९] राजेश जोशी, नेपथ्य में हँसी, पृ.सं. 34

[६०] राजेश जोशी, राजेश जोशी की कविताएँ, पृ.सं. 1

[६१] दैनिक भास्कर, 25 जनवरी, 2019, हिंदी की मशहूर लेखिका कृष्णा सोबती नहीं रही, पृ.सं. 1

[६२] हिन्दुस्तान समाचार, 4 नवम्बर, 2017, हिंदी लेखिका कृष्णा सोबति को मिला साल 2017 ज्ञानपीठ पुरस्कार, पृ.सं. 1, 2

[६३] गोविन्द मिश्र, धूल पौधों पर, पृ.सं. 1

[६४] गोविन्द मिश्र, कोहरे में कैद रंग, पृ.सं. 1, 2

[६५] गोविन्द मिश्र, समय और सर्जन, पृ.सं. 1, 2

[६६] गोविन्द मिश्र, सतपुडा के भीतर से, पृ.सं. 3

[६७] सं. डॉ.नवीन, नयी सदी के उपन्यास, पृ.सं. 173

[६८] सं. चन्द्र कोहली, नयी सदी के उपन्यास, पृ.सं. 174

[६९] गोपालराय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, 2014, पृ.सं. 384

[७०] जागरण जोश पत्रिका, करन्ट अफेयर्स पुरस्कार सम्मान 7 जून 2012, पृ.सं. 5, 6

[७१] आज की खबर पत्रिका, आलेख 26 सितम्बर, 2010, पृ.सं. 1, 2

[७२] आज की खबर पत्रिका, वेब दुनिया आलेख 26 सितम्बर, 2010, पृ.सं. 3, 4

[७३] आज की खबर पत्रिका, स्वार्थ आलेख 26 सितम्बर, 2010, पृ.सं. 5, 6

[७४] आज की खबर पत्रिका, फरसतिया आलेख 26 सितम्बर, 2010, पृ.सं. 9, 10

[७५] अचला नागर, बाबूजी बेटाजी एंड कंपनी 25 जुलाई, 2015, पृ.सं. 1, 2

[७६] अचला नागर, बाबूजी बेटाजी एंड कंपनी संस्मरण 25 जुलाई, 2015, पृ.सं. 3, 4, 5

पंचम अध्याय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी संस्मरण साहित्य का अध्ययन

1) लखनऊ मेरा लखनऊ (2002) - मनोहर श्याम जोशी
2) नेह के नाते अनेक (2002) - कृष्ण बिहारी मिश्र
3) नंगा तलाई का गाँव (2004) - विश्वनाथ त्रिपाठी
4) पर साथ-साथ चल रही है याद (2004) - विष्णुकांत शास्त्री
5) सुमिरन के बहाने (2005) - केशवचंद वर्मा
6) यादें (2005) - पंडित सूर्यनारायण व्यास
7) घर का जोगी जोगड़ा (2006) - डॉ.काशीनाथ सिंह
8) बसंत से पतझर तक (2005) - रविन्द्रनाथ त्यागी
9) दर्द आया था दबे पाँव (2005) - जे.एन.कौशल (जितेन्द्र नाथ कौशल)
10) इन बिन (2006) - पद्मा सचदेव
11) परिशिष्ट (2008) - पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'
12) नंद बाबा फकीर से वजीर (2010) - राजेन्द्र जोशी
13) अपनों से पास अपनों से दूर (2010) - रामशरण जोशी
14) दर्द मैंने जाना (2011) - उषा महाजन
15) हम हशमत (2012) - कृष्णा सोबती
16) यह जो है पाकिस्तान (2013) - शिवेन्द्र कुमार सिंह
17) बैकुण्ठपुर में बचपन (2014) - डॉ. कांति कुमार जैन
18) पकी जेठ का गुलमोहर (2016) - भगवान दास मोरवाल
19) यादें यादें और यादें (2017) - पुष्पा भारती
20) बुरा वक्त अच्छे लोग (2017) - सुधीर चंद

पंचम अध्याय
इक्कीसवीं सदी के हिन्दी के संस्मरण-साहित्य का अध्ययन

1. मनोहर श्याम जोशी -

'लखनऊ मेरा लखनऊ' मनोहर श्याम जोशी जी ने इस संस्मरण के अंतर्गत ये बताया है कि एक संपादक के अनुरोध पर उन्हें कहानी लिखनी थी लेकिन बाद में उनका आग्रह टाल न पाने के कारण उन्होंने यह संस्मरण लिख दिया। उनके प्रथम गुरु नागर जी को याद करके उन्होंने इसे टाइप करवा डाला। जोशी जी अपने को मुंबईकर मानते हैं क्योंकि वह अपने काम और नौकरी के लिए बराबर मुंबई जाया आया करते थे। सोलह साल उन्होंने जन्म के उपरांत वहीं निकाले जब कि उनका पौत्रिक स्थान अल्मोड़ा था। अपने पूर्वजों के इतिहास से आरंभ करके घरेलू बातों से लेकर अपने विद्यार्थी जीवन के सभी किस्सों को याद करते हुए उन्होंने लखनऊ को जन्नत का दर्जा दिया है जब वह वहाँ पहुँचे तब उन्हें इलाहाबाद भी याद आता है। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा के नये-नये प्रयोगों का वर्णन किया है। लखनऊ विश्वविद्यालय में पढ़ने वालों की चाल-ढाल, फैशन-फरस्ती आदि की बातें बताई हैं। उसके लिए एक शब्द का प्रयोग किया है - नक्सा बदल गया। उस युग में लड़के-लड़कियां किस तरह अपरोक्ष रूप में बातचीत करते थे उन सबका जिक्र किया है। अन्य छात्रों के बीच जोशी जी का उठना-बैठना कम था क्योंकि वे किसी भी झुंड में शामिल नहीं किए गये थे। अब वे क्लास में बैक बेन्चर बनने लगे और धीरे-धीरे क्लास छोड़कर रविंद्र लाइब्रेरी में बैठने लगे। अध्यापकों ने इसकी गिनती फिसड्डी छात्रों में कर दी। अपना मजाक बनता देख वह गढ़वाली और कुमाऊँनी छात्रों के झुंड में शामिल हो गये। एक ओर लखनऊ विश्वविद्यालय के वातावरण का वर्णन किया है तो दूसरी ओर महेशचंद्र पंत जी का, बाद में कॉमरेडों का। महेशचंद्र पंत लेखक के मित्रों में से एक थे, जिनके घर वो जाया करते थे और वहीं पर इनकी मुलाकात एक पंजाबी नवयुवक से हुई थी जिसका नाम मिठ मेहता जी था, जो मोस्तोय वेस्की के उपन्यासों का एक जीता जागता पात्र है। मेहता प्यारे और महेश पंत ने बी.ए. की परीक्षा प्राइवेट दी थी। लेखक ने अपने एक-एक मित्र का प्रसंग के साथ चित्रण किया है। उर्दू बोलने वाले मित्र, अंग्रेजी बोलने वाले मित्र और हिंदी बोलने वाले गुरुओं का भी चित्रण किया

है। लखनऊ लेखक संघ की बैठक अक्सर यशपाल जी के घर में ही हुआ करती थी, जो हैवेट रोड में उस बिल्डिंग के पड़ोस में ही था, जिसमें पूरन दा रहा करते थे। कक्कड़ की कृपा से लेखक संघ का सदस्य बन जाने पर जोशी जी के लिए इसके चलते अपने लेखकीय और पारिवारिक व्यक्तित्व का इकट्ठा निर्वाह सम्भव हुआ। जोशी जी लेखक संघ की जिस बैठक में पहली बार गये, उसी में उनके द्वारा कहानी पाठ भी कार्यसूची में शामिल था। जोशी जी ने-'मैडिरा मैरून' शीर्षक अपनी एक नयी कहानी पढ़ी, जिसमें उन्होंने अपनी भावुकता तजकर व्यंग्यात्मक तेवर आजमा देखा था। जोशी जी की कहानियों में, तीन बुजुर्ग लेखकों के अलावा, नागर जी के 'रंग वाली' कहानी थी। यह बात अलग है कि तब तक जोशी ने नागर जी की कोई भी रचना नहीं पढ़ी थी। बताया जा चुका है, जोशी जी हिन्दी लेखक बन चुके थे। यह बताना रह जाता है कि वह हिन्दी साहित्य में तब भी शिखर पर थे और अब भी हैं। लखनऊ में साहित्य से जुड़ने वाले जो गुरु उनको मिले वो थे अमृतलाल नागर। ये भेंट लखनऊ लेखक संघ के माध्यम से हुई और ये बैठक अक्सर यशपाल जी के घर में हुआ करती थी। जोशी जी ने इससे पहले किसी लेखक के साहित्य को नहीं पढ़ा था लेकिन दसवीं की कक्षा में वाद विवाद प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किए जाने पर जिनमें उन्हें अज्ञेय की 'एक जीवनी' नामक पुस्तक दी गयी थी, जो साहित्य में बहुत रुचि रखते थे और अज्ञेय द्वारा संपादित त्रैमासिक पत्रिका प्रतिक को मंगवाया करते थे। नागर जी ने जब जोशी को गले लगाया और कहा कि मुझे एक नया लेखक मिल गया जो आगे चलकर लखनऊ विश्वविद्यालय का सर्वश्रेष्ठ लेखक अवश्य बन गया। ये बात इन्होंने इसलिए कही थी क्योंकि जोशी जी के मित्र मार्क्सवादी थे और नागर जी के सात मित्र का असर इन पर भी होगा इसका परिणाम यह हुआ जोशी जी वैज्ञानिक बनने गये थे और लेखक बन गये। इस प्रकार जोशी जी ने अपने आपको लेखक संघ से जोड़ दिया और नागर जी के शागिर्द बन गये। गोष्ठियों में जाने लगे। यशपाल, भगवती बाबू और नागर जी जहां रहते थे वहां रहने लगे जिससे इन सबसे इनका परिचय हो सके। सभी लेखकों के बारे में जोशी जी ने वर्णन किया है। उनका स्वभाव कैसा था, उन्हें कौन अच्छे लगते थे और कौन नहीं, कुछ रोचक घटनाओं के विषय में कुछ पारिवारिक, कुछ राजनैतिक सभी तेवरों को उन्होंने इसमें व्यक्त किया है। एकएक विद्यार्थी का वर्णन इस -एक मित्र का वर्णन एक-

संस्मरण में समाया हुआ है। रघुवीर जी हों या शमशेर जी किसी न किसी रूप में शन भी पढ़ाने गये तो शरत चन्द्र बाबू की चित्रित अवश्य हुए हैं। जोशी जी ट्यू सभी भावुक नायिकाओं को याद किया है क्योंकि वह बंगाली मुहल्ले में बंगालन को पढ़ाने गये थे। यहां पर वह अपने आपको कोस रहे थे कि उन्होंने नागर जी, रघुवीर जी से और नरेश जी से बंगाली बोलना क्यों नहीं सीखी किसी भी तरह के संवादों को जोशी जी ने छिपाया नहीं है कि किसी सुन्दर लड़की से मुलाकात हो या किसी द्वारा शटप बोला जाना है। सब कुछ खुले चिट्ठे की तरह खोलकर रख दिये हैं। भाषा की तिलस्म वह जानते हैं, इसलिए घटनाओं का प्रस्तुतीकरण बहुत सुन्दर है। इसके उपरांत इन्होंने कहांकहां काम किया-, किसकिस पत्रिका के लिए - लिखा। सभी का वर्णन किया है। अपने डर को व्यक्त किया है और अंतः में जोशी जी ने अंग्रेजी का भी प्रयोग लेखन में किया है। अपनी प्रेम कहानी का चित्रण करते हुए भावुकतावश रो भी पड़ा है और एक मित्र के परामर्श देने पर कि अपने इस प्रेम कहानी को लिख डालो जोशी जी उत्तर देते हैं “कुछ ऐसे दर्द भी होते हैं जिनकी दवा न कराना ही अच्छा होता है।”

“नॉन पॉलिटिकल हिपोकेट” के आरोप से मुक्त होने के लिए जोशी जी ने एक और काम यह किया कि स्टूडेण्ट्स यूनियन के चुनाव में स्टूडेण्ट्स फैडरेशन के उम्मीदवारों के हित में प्रचार किया। प्रसंगवश ‘नॉन पॉलिटिकल हिपोकेट’ का नारा उस दौर में एस.एफ. के प्रचारक उन उम्मीदवारों के खिलाफ हिकारत भरे स्वर में लगाया करते थे जो अपने को किसी भी राजनीतिक दल से जुड़ा हुआ न बताते हों। जोशी जी ने कभी इस विडम्बना पर गौर नहीं किया कि स्वयं मैं किसी भी राजनीतिक दल से बकायदा जुड़ा हुआ नहीं हूँ। उस जमाने में छात्र यूनियनों के चुनाव में ज्यादातर ‘कांग्रेसी’ टाइप के उम्मीदवार ही जीता करते थे। इसलिए जोशी जी एण्ड कम्पनी के लिए वह दिन निहायत यादगार साबित हुआ जब एस.एफ. के उम्मीदवार कॉमरेड रॉबिन मित्रा यूनियन के महासचिव का पद जीत गये। नेकराम शर्मा-जैसे कांग्रेसी यूनियन पदाधिकारियों की तरह कॉमरेड रॉबिन मित्रा भी बाद में उत्तर प्रदेश के विधायक और अगर मैं भूल नहीं रहा हूँ तो एक संविद सरकार में मन्त्री भी बने। जब हाल में एक लखनवी ‘ओल्ड बॉय’ से यह पता चला कि रॉबिन अब ‘सहारा इण्डिया’ से जुड़े हुए थे। उनका ध्यान इस ओर दिलाया कि आप स्वयं पूंजीपतियों के अखबारों में काम कर चुके हैं।[१]

जोशी जी एक बड़े साहित्यकार के रूप में हिंदी साहित्य जगत में अपना मूर्धन्य स्थान रखते हैं लेकिन उनका यह संस्मरण पाठकों को वैज्ञानिक चरित्र से साहित्यिक चरित्र बनने की दास्तान को अवश्य समझा पाएगा।

2. कृष्ण बिहारी मिश्रा -

'नेह के नाते अनेक' कृष्ण बिहारी मिश्र जी द्वारा रचित यह संस्मरण है। सन् 2002 ई. में पहला संस्मरण आया जो भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हुआ है। इस संस्मरण के अंतर्गत उन्होंने ग्यारह शीर्षकों से स्मृतिबद्ध किया है। लेखक ने इस संस्मरण विधा के असाधारण उदाहरण दिए हैं जो साहित्य के कृति व्यक्तित्वों की जीवन घटनाओं और अनुभवों को लोकव्यापी अर्थ देते हैं। इस संस्मरण के माध्यम से साहित्यकारों और स्वयं लेखक ने किस बिंदु से चलकर राह की कितनी विकट जटिलता से जूझते हुए ये विद्वतजन कहां तक पहुंचे हैं। लेखक ने पहला शीर्षक 'काशी के अंतरंग रिश्ते को याद करते हुए' अपने जीवन की स्मृतियों को रेखांकित किया है किस प्रकार लेखक पढ़ाई करने के लिए काशी आये और बी.ए. तक की शिक्षा ग्रहण की। उनके कई साहित्यकारों के साथ आत्मीय संबंध थे। हिंदी साहित्यकारों का दो ही जगह जमावड़ा माना जाता है एक तो इलाहाबाद और दूसरा बनारस था।

"दुःख सबको मांजताः" आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र शीर्षक से लेखक ने विश्वनाथ जी को स्मृतिबद्ध किया है। लेखक के ये आचार्य थे। लेखक को इस बात का दुःख है कि विश्वनाथ जी को जितना सम्मान मिलना चाहिए था उतना उनकी सारस्वत महत्ता के अनुरूप उन्हें सम्मान नहीं दिया और निरूपाय होकर विश्वनाथ जी काशी छोड़कर उज्जैन चले गये। विश्वनाथ जी के विद्यावैभव का हल्ला - करीब फटकने की हिम्मत नहीं होती विद्यार्थियों के लिए ऐसा आतंक था कि उनके थी।

पुत्रदो आघात पण्डितजी ने अपनी पुष्ट आस्था से झेले-शोक के संघातिक दो- थे। दुर्भाग्यवश मैं पण्डित जी की विचलित कर देने वाली दोनों विषादघड़ियों में - काशी में ही था। मगर पण्डितजी उस तरह विचलित नहीं हुए थे। गहरे घाव को क विवेक से ढक दिया था। आदरणीय भाई शिवप्रसादजी के साथ मैं व्यावहारि पण्डितजी के यहां पहुंचा था। कहां से बात बढ़ायें, कुछ समझ में नहीं आया।

प्रार्थना की, कि तुम्हारे प्रति आस्था न शिथिल हो और मस्तिष्क पर विक्षेप का असर न हो। बाकी तो झेल लूंगा। प्रारब्ध का रहस्य बड़ा गूढ़ है तुम कब आये? मुझसे उन्होंने पूछा और फिर शिवप्रसादजी की ओर मुखातिब हो दिवंगत पुत्र चन्द्रभूषण की प्रखर मेधा का उल्लेख करने लगेदो महीने से काशी के -पिछले डेढ़-स्थान की पुरातात्विक सांस्कृतिक महत्ता के बारे में उनकी जिज्ञासा -अख्यात देव रहती थी। पहले इतनी निकटता से बात नहीं करते थे। और बतकही मुझसे चलती शिवप्रसादजी ने !अपना ही रूप दिखाकर गये। श्री कृष्णशरणं मम चन्द्रभूषण की साहित्यिक प्रतिभा की चर्चा की थी। और पण्डित जी सोफा से उठकर खड़े हो गये थे, विषाद प्रसंग के त्रासद अध्याय को बन्द करने का संकेत करते। बोझिल मन लिए हम लोग गुरुधाम से लौट रहे थे। रास्ते में भाईसाहब ने कहा था, घाव बहुत गहरा है, शायद ही पंडित जी संभल पाएँ। हम सबके मन में यही चिन्ता थी। मगर अपनी आस्था के बल पर क्रूर प्रहार किया। ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रशेखर की आकस्मिक मृत्यु से पण्डितजी की आस्था कांप गयी थी। उस विपत्ति काल में मुझे अपने निकट देखर पण्डितजी चौंके थे, आप कहां से आ गये? कहने लगे उदास आवाज में 'निवृत्तिमार्गी' बनने की तैयारी में था, परमात्मा का विधान कुछ और है। इस बुढौती में वह प्रवृत्तिमार्गी बना रहा है। अब तो बालक के संसार का भार ढोने को अभिशप्त हूँ गिरीश को निर्देश दिया है कि बम्बई की दुकान बढ़ाकर साथ रहे। बुढौती के सहारे के लिए एक लकुटी जरूरी है। गहरे विषाद में सीझते पण्डितजी गार्हस्थिक दायित्व पूरा करने के लिए एक जवान की तरह जूझते रहे। मझधार में पड़ी बालक की गृहस्थी को शोभन विधि से किनारे तो पहुंचाया, पर अतिरिक्त श्रम और गहरे अवसाद का परिणाम पक्षाघात के रूप में प्रकट हुआ। उन्हें देखने पर सुंदरलाल अस्पताल में पहुंचा तो पण्डितजी प्रसन्न हुए थे। माताजी केबिन के सामने बरामदे में टहल रही थीं। सौभाग्य के चिह्न से स्वयं को रिक्त कर एक असह्य विषण्ण मुद्रा में। माताजी की उदासी पण्डितजी की दुर्भाग्य पीड़ा को उकसाकर गहरा देती थीसौभाग्यहीन बहू को देखक -र माताजी ने यह रूप बना लिया है। गहरी वेदना के साथ पण्डितजी ने मुझसे कहा था। फिर सचेत हो गये थे। सहज भाव से मैंने पूछा था, 'पण्डितजी, कहीं दर्द तो नहीं है न?' देखो तुमको असली बात बतायें, मेरा चैत्य पुरुष पूर्ण स्वस्थ है, इसलिए मैं ठीक हूँ। शरीर को जाना है, एकएक अंग साथ छोड़े या एक साथ पूरा शरीर जाय-, यह तो विश्वेश्वर के

विधान पर निर्भर करता है। ताखे में विश्वेश्वर का चित्र था, उस ओर संकेत करते पण्डित जी ने अपना पक्ष स्पष्ट किया था।[२]

लेखक को सबसे ज्यादा आश्चर्य तब हुआ जब विश्वनाथ जी पर दो-दो आघात हुए उनके दोनों पुत्रों की मृत्यु पर इन दुखों के पहाड़ को उन्होंने कैसे अपने आप को सम्भाला था। यह बहुत कम लोग जानते हैं कि विश्वनाथ जी एक स्वतंत्रता संग्राम में चंद्रशेखर आजाद के साथ थे। संवेदनशील समय विश्वनाथ जी के जीवन में संदिग्ध साधना और प्रारब्ध विडम्बना का साक्षी है।

"ललित्य की अंतरंग आभा" पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी- इस शीर्षक से चित्रित किया है। द्विवेदी जी लेखक के आचार्य थे। द्विवेदी जी रवीन्द्रनाथ टैगोर जी को अपना आराध्य मानते थे। द्विवेदी जी का व्यवहार उच्चस्तरीय था पर भीड़ के चलते स्वधर्म साधना में बाधा महसूस करते थे तो कभी-कभी खिन्न हो जाते थे। एक बार द्विवेदी जी की पत्नी उन पर झल्लाते हुए बोलीं "सबको आप ऐसे पैसे बाटते हो मानो रुपये का कारखाना है गृहस्थी कैसे चलती है मुझे पता है।" द्विवेदी जी ने उत्तर दिया "तुम गृहस्थी समझती हो इतना तो मैं भी समझता हूँ मगर गृहस्थी से परे भी कुछ है, मैं वह भी कुछ-कुछ समझता हूँ"

एक दिन पनडब्बा खोजते माताजी पण्डितजी के अध्ययनकक्ष में पहुंची। - विद्यार्थी से बात कर रहे थे। मैं मुहूर्त की बाट जोह रहा पण्डितजी अपने एक ज्येष्ठ था। कि खाली हों तो अपना प्रयोजन निवेदित करूँ। पण्डितजी के कुर्ते की ऊपरी जेब फटकर झूल गयी थी। माताजी की नजर वहीं पड़ी। अभिभावकमुद्रा मुखर - हुई, 'फटाफूटा पहनकर बैठ जाते हैं। क्या कहेंगे लोग-?' आँख फाड़कर पण्डितजी ने माताजी को देखा और बोले, 'कुर्ताधोती के फटने से कुछ नहीं बिगड़ता-, मन नहीं फटना चाहिए।' और बड़े जोर का ठहाका लगाया। कमरे की धूल तक खिल गयी।

पण्डितजी की वाचासिद्धि अतुलनीय थी। उनके एक करीबी व्यक्ति ने एक प्रसंग सुनाया था। कुछ दिनों चण्डीगढ़ रहने के बाद पण्डितजी अपनी गृहस्थी के साथ बनारस लौट रहे थे। बनारस से माताजी ने उन्हें सचेत करते पत्र लिखा कि कोई सामान छूट न जाय। ट्रक पर सामान लदवाने के कारण पण्डितजी बुरी तरह थक गये थे। माताजी के पत्र का जवाब लिखने के बाद पण्डितजी की थकान मिटी थी। उन्हें आश्वस्त करते हुए पण्डितजी ने लिखा था, 'तुम्हारा एक भी सामान छूटा नहीं है, केवल मेरा छक्का छूट गया है।' द्विवेदी जी संन्यासी नहीं गृहस्थ थे।

हजारहजार समस्याओं से निरन्तर जूझते रहने वाले भारतीय गृहस्थ। पर - लोकयात्रा के अंतिम मुहूर्त तक उन्होंने अपने उल्लास और लालित्य को मरने नहीं दिया।[3]

सहृदयता की विरल रोशनी श्री वाचस्पति पाठक इस शीर्षक से लेखक ने पाठक जी को स्मृतिबद्ध किया है। लेखक का मानना था कि पाठक जी एक सहृदय वाले व्यक्ति थे पर वह बहुत कम लोग जानते थे और उन्हें समझते थे। शांतिप्रिय द्विवेदी जी के मुंह से पाठक जी की कभी शिकायत नहीं सुनी। कहते हैं पाठक जी सीधे नहीं थे पर संवेदनशील और सहृदय वाले थे।

पाठक जी सीधे नहीं, संवेदनशील और सहृदय थे। साहित्य और विश्वविद्यालय के जगत् से उनका सीधा सरोकार था। रणनीति रचनेवालों से अन्तरंग सम्बन्ध था। रणकौशल की सूक्ष्म पहचान थी। उनकी नेत्रगह्वर में धंसी छोटी आँखें गहराई - में क्रियाशील चालाकी की प्रच्छन्न गहरों को देख लेती थीं। टनक आवाज और बनारसी ठसक के साथ वे बड़ीड़ी हस्तियों से भिड़ जाते थे। हिन्दी स्वाभिमान ब- सदा जागरूक उदग्र। फिराक साहब से हिन्दी का पक्ष लेकर जिसने उनकी बतकही सुनी है, वही बता सकता है कि उनके व्यक्तित्व का पानी कितना तेज था। काशिकेय रईसी और विद्याचिं-व्यापार से जुड़े लोगों की हित-ता से जन्मी गतिशीलताव्याकुलता उनके व्यक्तित्व की मुखर पहचान थी। जैसे विद्याव्रतियों को - अपेक्षित आनुकूल्य उपलब्ध कराते रहने के लिए विधाता ने उन्हें धरती पर भेजा हो।

एक बार बहुत चिढ़कर उन्होंने मुझे पत्र लिखा था-'महानगर में रहते आप इतने सीधे हैं कि स्वार्थ की बात भी नहीं समझते। आपके स्वार्थ के लिए मैं इलाहाबाद आने के लिए आपको बार-बार लिखता हूँ और आप इतनी छोटी बात भी नहीं समझ पाते।' मेरी जड़ता फिर भी नहीं टूटी। एक बार बड़े गुस्से में उन्होंने मुझे कार्ड लिखा था, लगता है, मेरे पत्रों को बिना पढ़े कहीं रख देते हैं या फेंक देते हैं आपके पत्र का जवाब देते मैं बार-बार पूछता हूँ कि आपके मित्र को प्रकाशन के किस विभाग की जानकारी और अनुभव है। सही उत्तर न देकर आप एक ही राग रटे जा रहे हैं। ऐसे काम नहीं होता। भारतीय ज्ञानपीठ के कलकत्ता-कार्यालय में कार्यरत श्री मोहन गुप्त कार्यालय-स्थानान्तरण के साथ दिल्ली जाना नहीं चाहते थे, इसलिए अनुकूल विकल्प की तलाश में थे। पाठकजी की प्रभावशक्ति

को समझते मैंने मोहन गुप्त के लिए अनुरोध किया था। अन्ततः 'मोतीलाल बनारसीदास' प्रकाशन-प्रतिष्ठान में उन्होंने मोहन गुप्त की रुचि का काम तय कर दिया था। मगर नियति ने मोहन गुप्त को अन्ततः दिल्ली की राह से जोड़ा जहाँ उन्हें कालान्तर में प्रकाशन-प्रतिष्ठान का स्वामी बनना था। पाठक जी इस भीड़ में कठकरेजी जमाने के अश्लील रूप को झेलते हुए उनकी पीढ़ी को लेखक हमेशा याद करते हैं। लेखक को बरबस ही याद आ जाती है तुलसीदास जी वह उक्ति –

"अब न आँखितर आवत कोउ।"

"मौन का सर्जनशली सौंदर्य श्री सवात्स्यायन अज्ञेय .ही." शीर्षक से लेखक ने अज्ञेय जी को याद किया है। अज्ञेय जी ने जापान से आने के बाद अंग्रेजी के त्रैमासिक वॉक द्वारा पत्रिका का संपादन शुरू किया। अज्ञेय जी लेखक के बहुत करीब थे। लेखक वहां जरूर जाते जहां अज्ञेय जी का व्याख्यान होता था। लेखक का मानना था कि अज्ञेय जी दूर के देवता के समान हैं। अज्ञेय जी दूसरों की स्वतंत्रता के प्रति बहुत ही संवेदनशील थे, उनकी पीढ़ी विरल थी, उनका चिंतन स्तर निःसंदेह ऊँचा था पर तर्क सीमित नहीं था। एक बार अज्ञेय जी ने कहा "मैं बाहर से जितना शांत दिखता हूँ अंदर से उतना ही बेचैन रहता हूँ।" बेचैन का जोत एक घटिया अर्थ भी हो सकता है, उस अर्थ में नहीं लेकिन मुझको लगता है कि भीतर मुझमें काफी ऊर्जा है जिसको किसी न किसी तरफ रास्ता मिलना चाहिए। भीतर ही भीतर वह चक्कर काटती रहती है। अज्ञेय जी बहुत ही चौकन्ने क्रांतिकारी और सैनिक प्रवृत्ति के थे जो उनके भीतर सदा युयुत्सु मुद्रा में क्रियाशील था। [४]

वात्स्यायनजी की मनस्विता के तेज के साक्षात्कार का दो बार कलकत्ता में ही अवसर मिला है। कलकत्ता के रचनाकारों की एक गोष्ठी आयोजित की गयी थी, जिनसे मिलनेबतियाने के लिए वात्स्यायनजी आग्रहशील थे। बातचीत के बीच में - आरोप लगाया था कि ही एक युवा कवि ने आक्रामक मुद्रा में उन पर'मुक्तिबोध की हत्या का आपके हाथों में खून लगा है, जो अब धुलने वाला नहीं है।' और वात्स्यायनजी ने पूरी गरिमा के साथ अपना पक्ष स्पष्ट किया था। उनकी कैफियत में नैसर्गिक मनस्विता का तेज मुखर था। प्रश्नों के जवाब में उन्होंने कुछ प्रश्न किये थे, जिनका उत्तर चुप्पी के रूप में लिखा था। एक प्रश्न प्रासंगिकता की प्रासंगिकता पर केन्द्रित था। कलकत्ता वात्स्यायनजी का कार्यक्षेत्र रहा है जहां -

प्रवास करते हुए उन्होंने महत्त्वपूर्ण रचनात्मक काम किया था, और रिश्ते की नयी दुनिया अर्जित की थी। अपने प्रिय नगर की नयी रचनाकार पीढ़ी के अन्तरंग परिचय की उनकी इच्छा सहज थी। उन्हीं के आग्रह से मिलनगोष्ठी आयोजित की - गयी थी। अनौपचारिक तरीके से फर्श पर बैठकर बातचीत हुई थी। मैंने लक्ष्य किया था, वात्स्यायनजी बहुत आश्वस्त नहीं हुए थे। यही उनका सत्य था जिसे नाना विधाओं और सांस्कृतिक परिकल्पनाओं में रूपायित करने की साधना वह आजीवन करते रहे।

"सर्जन सद्भाव की सुधि" श्री ठाकुर प्रसाद सिंहश-ीर्षक से लेखक ने सिंह जी को याद किया है। लेखक कहते हैं सिंह जी सहृदय भावना के साहित्यकार थे। सिंह जी व सद्भाव के विग्रह रूप और विशिष्ट गद्यशिल्पी और काशी की - साहित्यिक विरासत के गवाह ही नहीं जीवन्त पहचान थे। सिंह जी हँसते बोलते एक दम पुराने अंदाज में थे पर उनका संवेदनशील मन बहुत दुखी रहता था। सिंह जी को जो इस संसार में मिला था उसे अपनी कठोर साधना से उन्होंने समृद्धतर किया था। सिंह जी बीमारी से परलोकगमन कर गये। साहित्यिक दुनिया में - रिक्तता आ गयी।

"जो अस जरे सो कस नहीं महके" डॉ इस शीर्षक से-शिवप्रसाद सिंह .लेखक ने शिवप्रसाद जी को स्मृति बद्ध किया है। लेखक के साथ शिवप्रसाद जी का घरेलू रिश्ता था। वह एक दोस्त और एक भाई भी थे। शिवप्रसाद जी के साथ लेखक की बंधुता की अवधि जितनी लंबी थी शायद और किसी से उतना दीर्घ मैत्री संबंध रहा हो। शिवप्रसाद जी की गंभीर मुद्रा लेखक को हमेशा बेचैन कर देती थी। शिवप्रसाद जी दम्भ का पुष्ट आधार उन्होंने कठोर साधना से रचा था मगर गंवई सरलता ही उनका मूक भाव था। तपस्या के अनुपात में शिवप्रसाद जी की कीर्ति छोटी लगती है। आने वाला संस्कृति सचेत समय उनकी सारस्वत साधना का सही मूल्य आंकेगा। कदाचित यही जगत का सनातन संविधान है कि भावी पीढ़ी ही तपस्या का मूल्य चुकाती है। साधना की सुरभि संवर्द्धनशील होती है। जायसी का साक्ष्य है -

'जो अस जरे सो कस नहीं महके'।

'अग्नेय धरातल की संवेद'नाः श्री कुमारेन्द्र।।

'पारसनाथ सिंह' शीर्षक से लेखक ने पारसनाथ जी को स्मृतिबद्ध किया है। पारसनाथ जी लेखक के मित्र थे पर उम्र में बड़े थे। लेखक का कहना था कि पारसनाथ जी उम्र में ही नहीं बल्कि विद्या में, व्यक्तित्व में, कीर्ति में, कायाकाठी - भावुकता में भी बड़े थे। पारसनाथ जी इतने भावुक थे कि हल्के से -और संवेदना स्पर्श से वह रुला देते थे। पारसनाथ जी को ब्रेन ट्यूमर हो गया था। पारसनाथ जी की प्रज्ञा इस सत्य को ठीक से समझती थी कि कालरिपु को जीत पाना - प्रताप की कोई सीमा नहीं है-लिए असंभव है। प्रतिमा मनुष्य के, लेकिन आयु की निश्चित सीमा होती है। सत्य यही हैं कि मनुष्य मृत्युंजय नहीं हो सकता। पारसनाथ जी थोड़ा जल्दी चले गये जैसे दोपहरी के तुरन्त बाद ही सूर्यास्त हो जाय। इसलिए मन का समाधान नहीं हो रहा है ......[५]

यह संस्मरण पढ़ने के बाद यह केवल अतीतस्मृति ही नहीं अपितु यह एक - म्लान पड़ रही जीवन प्रियता को रससिक्त कर पुनर्नवा करने वाला संस्मरणहै। वर्तमान और भविष्य को काफी हद तक आश्वस्त करने वाला संकटों से घिरी सृजनशील ऊर्जा की याद को ताजा करते इन संस्मरणों में लेखक ने विरासत के मार्मिक तथ्यों के माध्यम से कुछ तीखे सवाल भी खड़े किये जो नये विमर्श के लिए मूल्यवान सूत्र सिद्ध हो सकते हैं।

3. विश्व नाथ त्रिपाठी -

नंगातलाई का गाँव विश्वनाथ त्रिपाठी जी द्वारा लिखित संस्मरण है। इसमें इन्होंने दस अध्यायों के माध्यम से मानवीय संबंधों को उद्घाटित किया है। यह संस्मरण से अधिक महाकाव्य की गाथा लगती है। इस संस्मरण के अंतर्गत इन्होंने एक ओर गांव की जानकारी दी है तो दूसरी ओर लेखकों की जानकारी दी है। कुछ महिला रिश्तेदारों का भी जिक्र किया है। जमींदार, ब्राह्मण, मुसलमानों का जिक्र किया है। यह सब परतंत्रता के समय की कहानी है अर्थात आजादी के भी पहले का बखान किया गया है। लेखक ने गाँव का चित्रण किया है। उससे गाँव के लोग बहुत खुश हुए और उनकी लिखी हुई बातें उन्हें बहुत पसंद भी आई जो कुछ बातें लेखक को गाँव की काकी ने बताई थी। उन्हें जब गाँव के ही काका ने पढ़कर सुनाया तो वह बहुत खुश हुई ऐसा नहीं था। उन्होंने कहा हमने तो उन्हें अपना समझकर बताया था लेकिन उन्होंने पूरे गाँव में गंधवा दिया। लेखक को

उनका गांव हमेशा याद आता है। बचपन में अपने मांबाप के साथ रहना उन्हें - ले के बिस्कोहर गाँव में उनका जन्म हुआ बहुत भाया। उत्तर प्रदेश के बस्ती जि था। यह हिमालय की तलहटी में बसा हुआ तराई क्षेत्र है। जब भी गांव की गर्मी की बात चलती है लेखकको अपने फुलवारी में लगा इमली का पेड़ याद आ जाता है। आज भी उन्हें उस पेड़ के कटने का डर है जिसे उनके पिता जी ने कटवाया था। लेखक के गांव में कुँए और मंदिर बहुत थे। पंहजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने . इनके गांव का नाम सुनकर कहा था'विशकुप घर बिश्कोहर' अर्थात गांव में बीस कुँए रहे होंगे। गांव के बहुत सारे प्रसंगों का लेखक ने विवरण किया। आम के पेड़ के नीचे लेटना, गप लड़ाना, गिल्लीडण्डा खेलना-, शतरंज तो वहां था ही नहीं तो सोरा गोटी खेलना दशहरा दिवाली (कंकड़ पत्थर लेकर जो खेल खेला जाता है।) किस तरह वहाँ मनाया जाता है उसकी भी चर्चा है और कहते हैं इसी खण्डहर में 'कहीं कुछ दिये टूटे हुए, उन्हीं से काम चलाओ बहुत उदास है रात।'

इसमें उन्होंने गांव के लोगों का वर्णन किया है, जिसमें लख्खा बुआ के घर के सामने सबसे बड़ा जमावड़ा रहता था जहां आकर लोग बैठते थे। यहां एक टोला था जिसमें लख्या बुआ, डुडु, महेंद्र, अम्बर गोस्वामी सबके घर थे। आपस में झगड़े होते थे और सब एक साथ गालीगलौच करते थे। हर तरह के मजाक और - होती थी। लेखक के छोटे भाई के जन्म के बाद जो अत्याचार हुए उसका बातचीत भी वर्णन किया है। सच पूछो तो उन्हें इस बात का दुख भी है कि छोटे भाई के आने से मां के दूध पर कब्जा हो गया। लेखक को अपने पिता का पसीना सूंघना बहुत अच्छा लगता था, उन्हें आज भी अपने पिता के कुर्ते की सुगन्ध याद आती है। लेखक को संगीत से भी जुड़ाव है इसलिए वो उसका जिक्र करते हैं।

द्वितीय अध्याय में पं जगदम्मा प्रसाद पाण्डे उपनाम .'जगेश' हैं। उनकी कविता का वर्णन है और उस समय के आये समाज में सनातनी धर्म कांग्रेसी मुस्लिम लीग इत्यादि की भी चर्चा उसमें की है। इसी अध्याय में वर्णन भी आया है तथा कई चरित्रों के माध्यम से अपने परिवार का भी वर्णन किया है। अगले अध्याय में लख्खा बुआ के बारे में बताया है। लख्खा बुआ के घर जब पहली बार गये थे तो छः सात वर्ष के थे। उनका घर कच्चा जरूर था लेकिन अच्छा लिपा-पुता, साफ सुथरा सुसज्जित था। लेखक ने गांव में ऐसा सुसज्जित कमरा पहली बार देखा। लख्खा बुआ पच्छु टोला की नगर वधू थी। उनके पान की दुकान पर

सबसे ज्यादा भीड़ होती थी। गांव का कोई ऐसा आदमी नहीं था जो उनकी दुकान पर पान न खाए। लोग उनके सौंदर्य से बहुत प्रभावित थे इसलिए लेना न देना जरा देख तो लेना। लख्खा बुआ बिस्कोहर में ही पैदा हुई, वही मां बनी रही, बूढी हुई, वहीं मर भी गयी। लख्खा बुआ का प्रेम प्रसंग भारी था उससे दो बच्चे हुए और इस प्रकार लख्खा बुआ ने अपने मायके में ही वैवाहिक जीवन जी लिया। लख्खा बुआ बिस्कोहर टोले की सबसे प्रिय महिला मानी जाती थी।

अगला अध्याय बल्दी बनिया के नाम से लिखा गया है जो पच्छु टोले में रहता था। बलदेव बनिया रहा होगा। बिस्कोहर में बनिया जाति को डरपोक और कंजूस माना जाता था। उस गांव में होली धूल, कीचड़ से खेली जाती थी। बल्दी बनिया को लेखक ने उससे सम्पन्न पूर्वजों से जोड़कर याद किया है और कहते हैं -

'हाथी छोरा घोरा छोरा, महिष वृषभ छोरो,
छरी छोरो, सोवै सो जगाओ जागि जागि रे।'

ये दृश्य उस समय का है, जब बल्दी बनिया के घर में आग लगाई गयी। लेखक उस समय बच्चा था। उनका भरा पूरा घर सवेरे तक शमशान हो गया था, उसी गांव के कुछ लोग आग लगवाते थे। जिनके बारे में लेखक की मां बताया करती थी। उसी अध्याय में किन्नी बाबा तिवारी का परिवार, मीजा जी बाबा का झगड़ा तथा विदेशी हिप्पियों के किस्से का वर्णन मिलता है। नेपाल मानेर शमशेर प्रधान आदि का भी जिक्र मिलता है। विस्कोहर गांव अयोध्या के नजदीक है उस गांव में अनेक जातियां थीं। पतेर जाति, ठाकुर, ब्राह्मण, बनिये इत्यादि रहते थे। बनिया जाति में अनेक प्रकार के चरित्र थे। नाथे बाबा को लोग खासतौर से इसलिए जानते थे क्योंकि वह बच्चों को बड़ी तन्मयता से खिलाते थे। एक विशेष प्रकार की ध्वनि निकालते थे जैसे लू-लू -, चूचू-, इइ-, पूपू। यहां मैला साफ करने-वालों की एक जाति थी, जिसे भंगी कहा जाता था। यह अध्याय दलितों की बहू बेटियों पर ठाकुर और ब्राह्मण की निगाह रहती थी। इसका जिक्र करते हुए लेखक ने अगला अध्याय बाभन और मुसलमानों के बारे में है किस प्रकार वह बस्ती में गांव में अपने त्यौहारों को मनाते हैं एवं जीवनयापन करते हैं। बिस्कोहर का क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ था। बली दी जाती थी, हत्या की जाती थी, एक दूसरे से रिश्तेदारी भी निभाई जाती थी। मुसलमानों के साथ भी रिश्तेदारी बनाने वाला

सामान लेखक के घर आता था और सब में भाईचारा रहता था। इस प्रकार इस अध्याय के अंतर्गत मिली जुली स्मृति है। अगले अध्याय के अंतर्गत अब आजादी नहीं मिली थी। इसमें लेखक ने यह बताया है कि विस्मोहर गांव में स्वाधीनता आंदोलन का प्रभाव लोगों की सक्रियता नहीं थी उन दिनों कांग्रेसी एवं आर्य सनातनी होते थे। आर्य समाज का काफी प्रचार था। बस्ती जिले में किसानों का आंदोलन बहुत तेज हो गया था। करीबन 24 कि.मी. दूर बीलरामपूर है जो रियासत के रूप में जाना जाता था। वह एक ऐसा नगर था जो छोटे होते हुए भी कांग्रेस कार्यकर्ताओं की सक्रियता में बहुत आगे था। लेखक का विचार है कि अहिर और कुर्मी अपराध के कार्य तो खूब करते थे, लेकिन स्वाधीनता आंदोलन के नेताओं के नाम जानते तो थे सम्मान भी करते थे लेकिन राजनीति के पचड़े में नहीं पड़ते थे। अगले अध्याय में लेखक ने बिस्कोहर की भाषा की बात की है। इस गांव में विकलांग व्यक्ति के लिए अलग से नाम दिया जाता था। उच्चारण इस तरह के किये जाते थे कि लेखक को दुबारा सोचना पड़ता था। बूढी औरतें कंडक्टर को कण्डेवर, ड्राइवर को डेवर कहती थें। अश्लील शब्दों का प्रयोग ऐसे खुले रूप में किया जाता था। मानो वह पारिवारिक भाषा हो। अगले अध्याय में गांव की जनक दुलारी का वर्णन है जो खेतों में काम करती थी और उसकी मां मर चुकी थी। उसके पिता सर्कस में काम करते थे। जनक दुलारी बहुत हिम्मती है। एक बार उनके पिता को जब थानेदार पीट रहा था तब उसने कहा था थानेदार होंगे अपने घर के 'बाप को पीट रहे हैं का बतावे लड़का होती तो खून-कतल होई जाता।' "जनकदुलारी का रौब मच गया। आदमी हो तो थाना-पुलिस पीटे। कुछ हो, गांव-जंवार एक हो तो जवान लड़की को बेइज्जत करने की हिम्मत पुलिस में नहीं। जनकदुलारी काकी बोलते-बोलते खिलखिलाने लगी। हंसते-हंसते दुहरी हो गई- बिसनाथ बाबू ई तो जानत हो कि लखाही गांव में हिजड़े रहते हैं। सच मानो बाबू वे भी पुलिस को खदड़ने लगे। दौड़े तो उनकी साड़ियाँ फसर-फसर इधर-उधर हों।" ६

'अब कौन कह सकता है कि लखाही में हिजड़े रहते हैं काकीलेकिन तुम ! फिर सूसे काका के कहने में कैसे आई' बिसनाथ ने पूछा।

सब किस्मत का चक्कर। भाई हो गए बड़े, बड़के भैया की शादी हो गई, मेहरारू किनबस। हम समझ गए कि बस-किनाही। बड़के भइया मेहर-, अब हमारा

दानापानी उठ गया। एक दिन बाप को खिला रही थी तो पू-छाबप्पा हम न रहें - तो तुम्हें बहुत तकलीफ होगी न। बप्पा ने सर ऊपर उठाया, गौर से घूर कर चेहरा देखते रहे, बोले-तो दोपहर में जाना होगा तो दोपहर में जाना रात जाना होगा-बिरात नहीं, उमिर तुम्हें काटनी हैऔर हमारी ओर से न हाँ-, न ना। बपई वह दिन देखने को रह भी नहीं गए। न खाँसा, खूँसा। ऐसे पड़ेपड़े एक दिन देह छूट गई। - हम अनाथ हो गई। काकी रोने लगी, जोर से नहीं। बस रोती और नाक छिरकतीं, मानो जुकाम हो गया और नाक बह रही हो। बस यह सुसवा एक दिन नोंन-भेली बेचने आया। बोला बहिनी ऐसे कब तक काटोगी, अपना घर अपना घर होता है, ऐसे न हो देस-दुनिया सादी-ब्याह क्यों करे। तब का करी साहू! के करे साधे उढ़िर जाई। अरे बहिनी का बात करती हो तू हां तो करी, एक से एक बैठे हैं। हमने बिस्कोहर में ही राजा बाबू हैं-का नहीं है, खेत बगिया, अपना हिस्ट-पुस्ट 20 साल के उमिर, सोना जैसी घुट्ठी तिवारी की है, एक झाँपड़ मारै तो बड़े-बड़े मूत मारै। हम बिना देखे-सुने का कहैं।

लेखक हिम्मती और स्वाभिमान चरित्रों से बहुत प्रभावित दिखाई देते हैं। अगले अध्याय में अम्मा और दादा के विषय में लिखा है। लेखक अपने पिता को दादा कहते थे और मां को अम्मा, बड़ी बहन का नाम चंद्रप्रभा था। लेखक 1948 ईमें सत्याग्रह के आंदोलन में जेल गये तब वह सोलह साल के थे। पिता ने तब . बड़े काका उन्हें दूसरी बार देखा था। घर में, छोटे काका आदि भी थे। पढ़ाई के मामले में लेखक की खूब तारीफ होती, चौथी कक्षा पास करने के बाद छोटे काका से उसके पिता ने कहा था कि अगर पढ़ना है तो जहां पढ़ेंगे, वहीं खाएंगे, यही कारण है कि लेखक कहीं गये नहीं गांव में ही मटरमस्ती करते रहे। अपने मां के अनुभवों को लिखा है जिन्होंने अभाव ग्रस्त जीवन में भी व्यवहारिक कुशलता को बनाया रखा। लेखक ने अपने पिता के अंतिम शब्दों को भी लिखा है, जब लेखक पिता के पांव छू कर चले तब गुस्से से लगभग चीखकर कहा था 'बिटिया की शादी में तनिक कम खर्च करना।' उनके पिता का सन् 1980 में ही देहांत हो गया। पिता की मौत के ग्यारह महीने बाद उनकी मां का भी देहांत हो गया। कुछ वर्षों बाद जब लेखक अपने गांव वापस आये तो सब कुछ बदला हुआ था। गांव में बिजली आ गयी थी, सोवियत यूनियन की पुस्तकें आने लगी थीं। लेखक ने रेनू की कहानी में पंचलाइट पढ़ी थी उसे याद किया, गांव के लोगों से मिले, सभी लोगों

से बातचीत की, गांव के किस्से सुने भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया था। लोग बागों को बेच रहे थे, कटवा रहे थे, दुकान बनवा रहे थे कुछ बातें निराशा पैदा कर रही थीं। पूंजीवाद के विकास से सामंतवाद मिल रहा था, एक दूसरी बात यह भी स्कूल, अस्पताल खुल रहे थे। इसलिए लेखक को भी संतोष हुआ। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि लेखक ने इस संस्मरण के माध्यम से अपने गांव बिस्कोहर का जीता जागता चित्र उपस्थित कर दिया है, वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता के पूर्व की गांव की स्थितियों को भी, चरित्रों को वहां ग्रामीण भाषा एवं संस्कृतियों को अपने वर्णन से जीवित कर दिया है। [७]

4. विष्णु कांत शास्त्री -

'पर साथसाथ चल रही याद-' विष्णुकांत शास्त्री जी द्वारा रचित संस्मरण है। स्मृति की सर्जनात्मक प्रकृति के दबाव और रचनाकार की निर्विकर तटस्थता तथा भावुकता के कारण उन व्यक्तियों को ही नहीं लेखक स्वयं भी संस्मरण में आते गये हैं। इस संस्मरणों के माध्यम से लेखक ने नौ शीर्षकों का उल्लेख किया है। इस संस्मरण के अंतर्गत रामविलास शर्मा, अमृतराय नागार्जुन, बच्चन डॉनगेन्द्र ., डॉजगदीश गुप्त ., डॉरामस्वरूप चतुर्वेदी ., अपने नामी मां को और सूरीनाम को भी स्मृतियों में घेरा है। उन्होंने इस संस्मरण में पहले बच्चन जी को याद किया है। 'श्रद्धा और बुद्धिवाद की रस्साकसी बच्चन' शीर्षक से बच्चन जी को याद किया है। लेखक ने अपने यादों में बच्चन जी के जीवन का ताना यदि भावना है तो बाना बुद्धि के रूप में याद किया है। बच्चन जी कविता और जीवन दोनों में पर्याप्त सफल रहे किन्तु वह अगली छलांग नहीं लगा सके जो महानता के लिए अनिवार्य होती है। लेखक का बच्चन जी के साथ मिलना कवि सम्मेलनों में होता था, जब कुछ दिन वह मिल नहीं पाते तो बच्चन जी लेखक को पत्र लिखते बहुत दिन से मिलना नहीं हुआ। बच्चन जी कांग्रेस में शामिल हो गये थे। उनका शामिल होने का तात्पर्य बस इतना था कि इंदिरा जी अधिक प्रगतिशाली तत्वों के साथ है। एक बार बच्चन जी नेहरू जी के साथ सम्मेलन में गये थे। बच्चन जी नीचे खड़े थे। नेहरू जी ने बोला 'बच्चन यहां आओ', बच्चन जी ने कहा 'पंडित जी मैं पहले ही छोटा आदमी हूं आपके साथ खड़े होकर और भी छोटा हो जाऊँगा'। बच्चन जी ने कहा था कि 'दिल्ली में तभी तक रहना चाहिए जब तक आदमी की कोई हस्ती

हो खाली साहित्यकार के लिए वहां कोई जगह नहीं है।' अंतिम समय में बच्चन जी ने कविता को लेकर कहा कविता का स्रोत सूख गया है, अतः कविता नहीं लिख सकते पर अपनी आत्मकथा तो पूरी कर सकते हैं। तीसरा खण्ड तो आपने लिखना शुरू भी कर दिया था। वो बोले, 'वह भी बेकार का काम लगता है अपने साधारण से जीवन को कितना फैलाऊँ?' फिर यह भी है कि तीसरे, चौथे खण्ड में जो कुछ जिन लोगों के बारे में लिखना चाहता हूँ वह बहुतों को बहुत बुरा लगेगा। यदि वह न लिखूं तो फिर लिखकर क्या होगा? मैं जीवित विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में अब अधिक लिखकर वितंडा खड़ा करना नहीं चाहता। इस पर मैंने कहा, 'आप लिख तो डालिये भले मौर्देश दे जाइयेगा कि इसका प्रकाशन आजाद की तरह नि . मेरी मृत्यु के25-30 वर्षों बाद हो।' वे बोले, यदि लिखूंगा तो ऐसा निर्देश अवश्य दे जाऊँगा। फिर दर्द भरे स्वर में बोले, अब मैं जीना नहीं चाहता। डेथविश मुझे घेर रही है। मेरे जीवन का अब कोई कारण या आधार मुझे (मरणेच्छा) हीं होता। दोनों लड़के बड़े हो गये हैंप्रतीत न, अपनेअपने क्षेत्र में सुप्रतिष्ठित हैं-, उनके लिए अब मैं अनावश्यक हूँ। मेरे यह कहने पर किन्तु तेजी जी के लिए वे गमगीन स्वर में बोले, मेरी उम्र पर पहुंच कर आपको भी शायद लगे कि एक उम्र के बाद नारी भी अनावश्यक हो जाती है। नारी के लिए शायद पुरुष भी आवश्यक नहीं रहता। हां, यदि आध्यात्मिक उपलब्धि हो तो शायद मेरे लिए जीने का अर्थ बन सकता है। पर मेरा जैसा स्वभाव है, उससे मुझे लगता है कि न तो मैं पूर्णतः विश्वास कर सकता हूँ, आत्म समर्पण ही। बड़ेबड़े विज्ञापति-, प्रचारित महात्माओं से मिलकर मुझे लगता है कि ये लोग धर्म का व्यवसाय ही करते हैं। सच्चे महात्माओं तक मेरी पहुंच नहीं है। जो हो, बहुत जी चुका, अब जी कर क्या करूँगा। शब्द अब मेरे लिए काफी नहीं हैं, इसलिए लिखना मुझे निरर्थक लगने लगा है।

'हृदय धर्मी, जनकविः नागार्जुन' शीर्षक से लेखक ने नागार्जुन जी को याद किया है। नागार्जुन जी परस्पर विरोधों के अद्भुत पुंज लगते थे, वह परंपरा में पले बढ़े, उससे उत्कट विद्रोह भी किया, परन्तु फिर भी उससे नाता बनाये रखा। वह मार्क्सवादी थे पर राष्ट्रीय गरिमा पर आघात करने में झिझके नहीं। लेखक ने नागार्जुन जी से पहली मुलाकात कोलकाता में आयोजित कवि सम्मेलन में की थी। नागार्जुन जी को सम्मेलनों में कम बुलाया जाता था क्योंकि उनके तीखे

व्यंग्यों से वे दिन भी अर्थकष्ट में थे। उनको कुछ राहत मिल सके, इसकी चेष्टा में मैं रहता था। कितनी पीड़ा भरी सच्चाई है यह, कि केवल कविता लिखने से जीविका चलाना बहुत मुश्किल है। कवि सम्मेलनों में कुछ दक्षिणा कभीकभी - जरूर मिल जाती थी, पर कठिनाई यह भी थी कि नागार्जुन सामान्य अर्थों में कवि सम्मेलनी कवि नहीं थे। लोक रिझाऊ कविता वे लिखते नहीं थे। अतः समृद्ध वर्ग के मनोसम्मेलनों में वे कम बुलाये जाते थे। अपने विनोदार्थ आयोजित कवि- -कभी सद्भाव व्यक्तियों को भी नाराज कर देते थे-तीखे व्यंग्यों से वे कभी

कौआ करे गंग असनान, हर गंगा।
फिर हड्डी का टुकड़ा दान, हर गंगा।।

या

तरुणों को डाकू बनने दो, फिर करवाना आत्मसमर्पण।
अपराधों की राख मलो तो चमके प्रजातंत्र का दर्पण।।

या

श्रद्धा का तिकड़म से नाता जय है भिक्षुक जय है दाता।
पियो सन्तु हुगली का पानी, पैसा सच है दुनिया फानी।।

जैसी उनकी तीखी पंक्तियां कई श्रोताओं को चुभ जाती थीं। फिर भी नागा बाबा सच को सच कहने से नहीं चूकते थे।

'कविवर वही जो अकथनीय कहे' जगदीश गुप्त शीर्षक से लेखक ने जगदीश जी को स्मरण किया है। कविवर जगदीश जी की वाणी बहुत बार की तरह लक्ष्यवेध करने में सफल हुई है। लेखक का मानना है कि जगदीश जी की कविताएं हृदय को भेद कर ही नयी कविता के जुझारू उन्नायक के सहयोद्धा के रूप में भले ही प्रचारित है किन्तु उनके संस्कार जीवन और कविता दोनों स्तरों पर परंपरा की समृद्धता को समाहित किए हुए हैं। जगदीश जी कवि के साथसाथ वह - एक बहुत बड़े चित्रकार भी थे। जगदीश जी के पत्र कवितामय होते थे और चित्रमय भी। एक बार जगदीश जी ने लेखक को कुछ बकाए का भुगतान करने के लिए आग्रह किया।

पत्रकार कृतार्थ हूँ भाई।
किन्तु मैं शुद्ध स्वार्थ हूँ भाई।।
है इसी बात का गिला मुझको।

चेक अभी तक नहीं मिला मुझको।।

मामला हो चुका पुराना है।

आपको याद क्या दिलाना है।।

इसी प्रकार बहुत से पत्र लेखक के पास संरक्षित हैं।

'निश्छलता और स्वाभिमान के पर्यायः अमृत राय' शीर्षक से लेखक अमृतराय जी को नागपुर के अधिवेशन में मिले थे। लेखक कहते हैं कि मिलते ही नहीं लगा वो पहली बार मिले हैं। लेखक के मन में अमृतराय जी के लिए सम्मान पहले से ही था कि वह प्रेमचंद जी के पुत्र हैं। अमृतराय जी को सत्य पसंद था। यदि उनके सामने कोई नाटकीय रूप रेखा प्रस्तुत करे तो वह आक्रोश में आ जाते थे। 1975 में आपातकाल घोषित कर दिया, श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपनी गद्दी बचाने के लिए। मुझे इससे बहुत क्षोभ हुआ। कोलकाता में और बाहर की गोष्ठियों में भी मैं अपना क्षोभ व्यक्त करता रहा। जगदीश जी भी इस घटना से क्षुब्ध थे। उन्होंने एक चुटीली कविता लिखी, जिसकी बेधक पंक्तियां थीं -

काले बालों के सिरे पर

काँपती सफेद लट!

देश के भाग्य को जहरीली नागिन एक डंसकर गयी उलट!!

सहृदय जानकर देख सकते हैं कि जगदीश जी ने इन पंक्तियों में सूरदास जी के मार्मिक पद 'पिया बिनु नागिन कारी रात। कबहूँ जामिनी उवति जुन्हैया, डंसि उल्टी है जात', का कितना रचनात्मक उपयोग किया है। उन दिनों अपने अनेक व्याख्यानों में मैंने ये पंक्तियाँ सुनायी थीं।

उत्तर प्रदेश में जनता पार्टी के मुख्यमंत्री थे श्री रामनरेश यादव। उनके कार्यकलाप से जगदीश जी असंतुष्ट थे। उन्होंने उस सम्बन्ध में अपना क्षोभ प्रकट करते हुए और मुझे प्रयाग आने का आमंत्रण देते हुए 30.04.1978 के अपने कवितामय पत्र में लिखा-

यह सुखद अवसर आया

कि हाथों हाथ पत्र भिजवाया

जनता का उत्तर प्रदेश में होता जा रहा है सफाया,

रामनरेश ऐसा रावणराज्य फैलाया-

राम तेरी माया, कहीं धूप, कहीं छाया,

कब आ रहे हैं?

अपन तो अभी से आँखें बिछा रहे हैं।

आँख भर देखा कहाँ, आँख भर आयी

ओ मेरे कलकतिया भाई।

किसी व्याख्यान में अमृतराय जी जाते तो व्याख्यान के बाद लेखक से साहित्यिक, राजनीतिक आदि की चर्चा करते। कठिन चुनौतियों को स्वीकार कर उनसे जूझने वाले, उनका समुचित प्रत्युत्तर देने वाले निर्भीक, निश्छल, स्वाभिमानी अमृत भाई और स्नेह की प्रतिमूर्ति उनकी पत्नी से अब स्मृतियों में ही भेट सकती है अमृतराय जी के बहुत से काम अधूरे रह गये पर किसके काम पूरे होते हैं।

'तू मेरी बुलबुलमेरी बड़ी नानी मां :' शीर्षक से लेखक ने अपनी नानी मां को स्मृति बद्ध किया है। लेखक जब तीन वर्ष के थे उस समय वह कुछ अस्वस्थ थे जिसके कारण उनको कष्ट हो रहा था। जो उनकी नानी मां थी वह लोरी गा कर लेखक को सुनाती। वह कुछ राहत महसूस करते और सो जाते। लेखक को वह स्मृति उनके स्मृति में बंध गयी है। लेखक के नानी के साथ बिताए बहुत सी स्मृतियां थीं वे कहते हैं नानी मां यदि किसी कारण नाराज हो जाती थीं तो वह ज्यादा देर नाराज नहीं रहती थीं उनका हृदय इतना कोमल था कि वह तुरंत शांत हो जाती थीं।

नानी माँ का एक और रूप याद आ रहा है। किसी छोटीसी बात पर वे - अचानक नाराज हो गयी हैं। सामने वाले पर धुंआधार बिगड़े जा रही हैं, कहनी अनकहनी कहे जा रही हैं। ऐसे समय वे आपे में नहीं रहती थीं, भूल जाती थीं कि जिसके बारे में वे यह सब कहे जा रही हैं, उसको यदि कुछ हो गया तो सबसे ज्यादा वे ही दुःख पायेंगी। उनका बिफरता हुआ क्रोध कोई अवरोध नहीं मानता था। कुछ समय तक बरस लेने के बाद ही वे शान्त होतीं। कभी तुष्ट, कभी रुष्ट उनके रूप को देखकर बचपन में मैं हकबका जाता था। पर धीरेधीरे समझ में - आने लगा कि क्रोध उनकी आगन्तुक विकृति है, वात्सल्य उनका स्थायी भाव है। हम लोग चार भाई, एक बहन थे। बिना किसी प्रतिवाद के, भय के, मैं कह सकता हूँ कि मुझ पर वे सबसे अधिक भरोसा करती थीं, प्यार तो सभी को समान ही करती थीं। तुलसी बेटू कहती थी और कभीकभी बिगड़ते रहने पर भी बात - मानकर चुप हो जाती थीं। बचपन में तो नहीं, किन्तु जैसेबड़ा होता नया और जैसे-

धीरे समझ पाया कि क्यों था -वैसे धीरे-परिवार की स्थिति को जानने लगा। वैसे अस्तित्व-नानी मां में विरोधी गुणों का ऐसा सह, करुणा और उग्रता, कोमलता और कठोरता का ऐसा अद्भुत संगम। गम्भीर मनोवैज्ञानिक कारणों को समझ पाना तो मेरे लिए सम्भव नहीं हो पाया, पर इतना तो स्पष्ट हो ही गया कि एक बड़ी सीमा तक इसके लिए जिम्मेदार था, उनका परिवेश, उनका पारिवारिक विपर्यय।

मुझे उनका अनूठा प्रेम मिला था। मैं भी सहज रूप से उनसे हिला हुआ था। इसका एक बड़ा कारण यह था कि मैं कहानियों का आग्रही श्रोता था। नानी की कहानियां अब मुहावरे में ही सिमट गयी हैं, ऐसा लगता है। आजकल की नानियों के पास न इतना समय है, न शायद उन्हें इतनी कहानियां ही आती हैं कि वे दोहते दोहतियों-को समेट कर कहानी सुनाती रहें। आजकल के दोहते दोहतियों भी शायद टीपास कहानियों देखने के शौकीन ज्यादा हैं। जो हो मेरी नानी मां के .वी. का अनन्त भण्डार था। मेरे और भाई अधिक चंचल थे, उन्हें खेलकूद ज्यादा प्रिय था पर मैं नानी मां से चिपका ही रहता था, उनकी सरस कहानियां सुनता ही रहता था। रामायण, महाभारत, भागवत तथा अन्य पुराणों की प्रमुख कहानियां मैंने बचपन में ही उनसे सुन ली थीं। मां बताती थीं कि हम लोगों के जन्म के पहले वे नौकरों को बैठाकर कहानियां सुनाया करती थीं और कहानी सुनने के लिए उन्हें पैसे भी दिया करती थीं। [८]

लेखक की नानी को कैंसर हो गया था जिसकी वजह से बहुत पीड़ा होती थी उनकी पीड़ा देखकर लेखक को भी कष्ट होता था। लेखक को आश्चर्य लगा यह देख कर कि नानी का मनोबल बढ़ता जा रहा था।

‘अपने से भी ज्यादा अपनाः सूरीनाम, सूरीनाम’ इस शीर्षक से लेखक ने अपने यात्राओं का वर्णन किया है। लेखक सूरीनाम गये थे वहां पर जहां उनको लगा ही नहीं कि वह अपने देश में आये हुए हैं वहाँ चली पूरी रात राम नाम का भजन ने उनका मन मोह लिया था। ‘माता गौरी संस्था’ ने तुलसी पंचशती के अवसर पर एक अंतर्राष्ट्रीय तुलानी सम्मेलन का आयोजन किया था।

सूरीनाम के ‘माता गौरी संस्थान’ ने तुलसी पंचशती के अवसर पर एक अन्तर्राष्ट्रीय तुलसी सम्मेलन 6,7,8 अगस्त 1998 को सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में आयोजित किया था। संस्थान के निर्देशक बाबू महातम सिंह ने कोलकाता विश्वविद्यालय से ही हिन्दी में एम.ए. किया था वे मुझसे एक वर्ष वरिष्ठ

थे। एम.ए. करने के बाद वे हिन्दी प्रचार के सिलसिले में ही सूरीनाम गये और फिर वहीं बस गये। 1979 में सूर पंचशती के आयोजन में भी मुझे सूरीनाम जाने का सुअवसर मिला था। उस समय महातम सिंह जी ने मुझे अपने घर बुलाकर आप्यायित किया था। बाद में जब वे भारत आये थे तो मेरे घर भी पधारे थे। स्वाभाविक रूप से उन्होंने मुझे इस सम्मेलन में आमंत्रित करते हुए फरवरी 1988 में ही पत्र लिखा और उसमें 'आधुनिकता की चुनौती तथा तुलसीदास' विषय पर आलेख पढ़ने का अनुरोध भी किया। मैंने आलेख भेजते समय उन्हें लिख दिया कि मेरा आना तभी सम्भव होगा जब भारत सरकार अपने प्रतिनिधि मण्डल में मुझे वहां भेजे। उन्होंने भारत सरकार को लिखा। मेरे सौभाग्य से भारत सरकार ने पण्डित विद्यानिवास मिश्र, यशपाल जैने के साथ मुझे भी सूरीनाम भेजने का निर्णय किया।

सूरीनाम से लेखक ने अलगअलग जगहों का भ्रमण किया। लेखक पूरी तरह - से भावविभोर हो गये थे। वहां से विदा लेते समय लेखक भावुक हो गये थे। वह - कहते हैं

हो रहा है तन ही विदा मन तो यहीं है।

मन जहां हो मनुज भी मानो वहीं है।।

यह संस्मरण स्मृति की सर्जनात्मक प्रकृति के दबाव और रचनाकार की निर्विकार तठस्थता तथा सतर्क भावुकता के उन व्यक्तियों को ही नहीं जिसके संस्मरण हैं बल्कि उनके समय को भी परिभाषित करती है रचना की यही चारितार्थता इस संस्मरण को महत्पूर्ण बनाती है इसलिए यह संस्मरण अपने समय को भी परिभाषित करती चलती है और मूल्यों का संकेत भी देती रहती है।

5. केशवचन्द्र वर्मा -

'सुमिरन को बहानो' केशवचंद्र वर्मा जी कृत यह संस्मरण सन् 2004 ईमें . लोकभारती इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है।केशव जी के संस्मरणों में व्यक्ति के परिचय गुण और प्रभाव के उल्लेख से होती है। लेखक उनके साहित्यिक सांस्कृतिक उल्लेख तथा व्यक्ति विशेष के रहने के नगर और मुहल्ले के साहित्य सांस्कृत्य सांस्कृतिक के वर्णन से होती हुई व्यक्ति और रचनाकार की समकालीनता में पसर जाती है। साही जी के शब्दों में कहेंगे कि केशव जी के संस्मरणों में आत्मपरक-वस्तुपरकता है -वस्तुपरकता आत्मपरकता नहीं है।

निश्चय ही यह संस्मरण रचनात्मक कौशल में केशव सिद्ध है। केशव जी ने अपने संस्मरणों के अंतर्गत तेरह शीर्षकों से उल्लेख किया है। किन्तु कमल सबका सरताजः श्री नारायण चतुर्वेदी शीर्षक से लेखक ने श्री नारायण जी को स्मृतिबद्ध किया है। लेखक श्री नारायण जी को हिंदी के भीष्म पितामह मानते हैं। श्री नारायण जी ने इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स विद्यालयों में हिंदी कविता की अतांक्षरी प्रतियोगिता अनिवार्य कर दी थी। इस प्रतियोगिता में श्रेष्ठ काव्य रचनाओं की प्रस्तुति उनकी मनोरंजन अभिव्यक्ति तथा तुलश टेकनीक निर्णायक हुआ करता था। इस प्रतियोगिता से यह लाभ होता था कि जो छात्र साहित्य का नहीं है पर उसे तमाम अच्छी कविताओं का ज्ञान और उन कविताओं को कंठाग्र करने का अभ्यास सहज ही कर लेता था। चतुर्वेदी जी संगोष्ठी के बहुत शौकीन रहे हैं।

चतुर्वेदी जी कवि सम्मेलनों के बड़े ही शौकीन थे। सही तो यह था कि उस समय साहित्यिक हलचल और आंदोलनों का तथा काव्य की प्रतिष्ठा का एक ही पैमाना था-वह था अखिल भारतीय कवि सम्मेलनों में किसी नये कवि का प्रतिष्ठित कवियों के साथ बैठकर कविता पढ़ना और उनकी वाहवाही प्राप्त करना। पहले तो उस मंच पर ही घुस पाना बड़ा कठिन था और दूसरे वहां शास्त्रोक्त ढंग से सवैया घनाक्षरी जैसे छन्दों में काव्यरीति का निर्वाह करते हुए अपनी रचना पढ़ पाना। वह किसी भी नये कवि के लिए बहुत बड़ी चुनौती थी। कविता के लिए आवश्यक था कि वह समस्या पूर्ति के पैमानों से बंधी हो अथवा कवि सम्मेलन में जो विषय निर्दिष्ट हो उसी पर केन्द्रित हो। अरम पढ़ने की इजाजत नहीं थी। ऐसे मान्यता प्राप्त निष्कर्ष के अनुसार ही गवर्नमेन्ट इण्टर कॉलेज फैजाबाद के कवि सम्मेलन आयोजित होते थे। उनमें निमंत्रित कवियों की सूची चतुर्वेदी जी स्वयं बनाया करते थे। स्थानीय कवियों की सूची भी वे स्वयं ही सही करते थे। इसलिए उन कवि सम्मेलनों में अपार भीड़ होती थी जो रात के दो तीन बजे तक बैठकर काव्य का रसास्वादन करती थी अक्सर चतुर्वेदी जी ही इन कवि सम्मेलनों की अध्यक्षता करते थे। वे दो-तीन अपनी खास कविताएं भी जनता के आग्रह पर सुनाते थे। एक उसमें से थी-'वियना की सड़क' और दूसरी थी 'शतदल कमल' । इसके अतिरिक्त वे कुछ हास्य रस के भी छन्द सुनाते थे। 'शतदल कमल' नाम कविता वे अंग्रेजी गाने की तर्ज पर सुनाते थे जिससे श्रोताओं को बड़ा आनन्द मिलता था। उनकी ये कविताएं हमारे जैसे विद्यार्थी अन्त्याक्षरी में इस्तेमाल करते

थे और ट्रॉफी जीत ले जाते थे। वे अपनी रचना-'घनश्याम देख' सस्वर बड़े मनोयोग से सुनाते थे। कई बार मुझे उनके सभापतित्व में दो चार मिनट की कविताएं सुनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस बार 'रैन' समस्या थी। दिग्गज कवियों ने 'रैन' को अनेक वियोगी और शृंगारी रसों में बांधकर सवैया घनक्षरियों की लड़ी लगा रखी थी। चतुर्वेदी जी ने मेरी पीठ थपथपाकर मुझसे पढ़ने को कहा तो मैंने अपने पिताजी के द्वारा संशोधित छन्द का एक दोहा पढ़ा- केशव कविता क्या करे थर्ड क्लास का मैन, वह तो पढ़ता है अभी कैट, सैट, ही रैन। जाहिर है कि मैंने अपनी थर्ड क्लास की किताब की 'किंग रीडर' का इस्तेमाल किया था। एक दूसरे कवि सम्मेलन में उनके पढ़ने के पहले मैंने उनके द्वारा पीठ ठोकने पर पढ़ा 'मेरी हूँ कविता सुना सभापति महाराज, पहिले मम नौका चलै फेरि तुम्हारा जहाज ' आदि-आदि। कवि सम्मेलनों में चतुर्वेदी जी अक्सर नवीनतम प्रतिभाओं को ढूंढकर लाते थे और उन्हें मान्यता दिलवाते थे। ऐसे ही अनेक कवियों में एक थे 'प्रदीप' जो बाद में 'बाम्बे टाकीज' में फिल्मी दुनिया में गीत लिखने के लिए चले गये (कंगन-बंधन चल-चल रे नौजवान आदि) उनके घर पर अक्सर हिन्दी के श्रेष्ठ कवि आकर रुका करते थे और वे उनके काव्यपाठ का आयोजन कराया करते थे। निरालाजी का ऐसा ही एक काव्यपाठ उन्होंने फैजाबाद के नार्मल स्कूल के हॉल में कराया था। मुझे उसकी याद है। निराला जी को पहली बार मैंने हारमोनियम पर बजाकर अपनी कविताएं गाते सुना था। वह शाम फैजाबाद के तत्कालीन काव्य रसिकों के लिए चतुर्वेदी जी द्वारा अविस्मरणीय रूप से प्रणीत हुई थी। खड़ी बोली का वह सौष्ठव ब्रजभाषा का काव्य रचने वालों के बीच चतुर्वेदी जी ने जितनी सहजता के साथ रख दिया था वह आज के साहित्यिक माहौल में समझाया नहीं जा सकता। इसी तरह के जो अन्य आयोजन वे कराते थे उसमें मेरे पिताजी तो निमन्त्रित होते ही थे उनके साथमें भी सब जगह लग लेता साथ-था।'[९]

लौट आ ओ पाँखुरीः' रामशेर, बहादुर सिंह इस शीर्षक से लेखक ने शमशेर सिंह जी को याद किया है। लेखक को इस बात का गहरा दुख है कि शमशेर जी को हिंदी आलोचना में जो जगह मिलनी चाहिए थी वह उन्हें नहीं मिली। लेखक को दूसरी तरफ यह सोचकर चित शांत कर लेते हैं कि खुद शमशेर सिंह जी को इस बात का कभी एहसास नहीं था कि उन्हें शिखर पर रहना चाहिए। शमशेर जी

बहुत निश्चल स्वभाव के थे। लेखक से उम्र में काफी बड़े होने के बावजूद उनकी शमशेर जी के साथ गहरी मित्रता थी। शमशेर जी की कविताओं का ढांचा इतना अनूठा है कि उसकी बुनावट में चाहे जिस बुलट को स्पर्श कीजिए वह अपनी एक अलग छाप लगा जाता है।

शमशेर जी बड़े ही निश्चल स्वभाव के व्यक्ति थे। चूंकि भारत भूषण अग्रवाल और नरेश मेहता दोनों से ही मेरी मित्रता प्रगाढ़ता के स्तर तक थी इसलिए शमशेर जी के साथ उम्र का फर्क होने के बावजूद मेरा उनका मैत्री का ही सम्बन्ध बना रहा। शमशेर जी अपनी कविताओं में जितने सजग, सुगठित और अतिशय तराशे हुए लगते हैं उतना ही वे अपने जीवन में निस्संग, असंयोजित और बहुत ही बेतरतीब आदमी थे। उनमें सर्जनात्मकता की प्रतिभा कितने स्तरों पर चैतन्य रहती थी इसे देखकर हम लोग रेडियो स्टेशन में आश्चर्यचकित रह जाते थे। उन्होंने बच्चों के कार्यक्रम के लिए 'एलिस इन वण्डर लैण्ड' का जिस तरह धारावाहिक रूपान्तर किया था और वह जितना लोकप्रिय हुआ उतना रेडियो के तत्कालीन कार्यक्रमों में शायद ही कोई हो। अक्सर वे कविता पाठ करने के लिए स्वर बेला कार्यक्रम में निमंत्रित होते। उन दिनों रिकार्डिंग का चलन नहीं था। जो कुछ होता था सब सहसा ही प्रसारित होता था। मैं ग्रामीण कार्यक्रम का संचालन करता था, वह आठ बजे रात तक खत्म हो जाता था। स्वर बेला का प्रोगाम लगभग एक घण्टे बाद होता था। इस बीच कवियों को जल्दी बुलावाकर उनका रिहर्सल आलेख में काट-छांट यह सब कुछ हिंदी कार्यक्रमों के निर्देशक किया करते थे जो उन दिनों भूषण अग्रवाल बाद में नरेश मेहता किया करते थे। कभी-कभी जब स्वर बेला कार्यक्रम के लिए मेरे मित्र आ जाते थे तो मैं उनसे गपशप करने के लिए अपने कार्यक्रम के बाद कुछ देर रुक जाया करता था। ऐसे ही वक्तों में शमशेर जी से भी एकांतिक मुलाकात हो जाती थी। शमशेर का कवि मन लम्बी उड़ाने भरता था। उन दिनों आल इंडिया रेडियो में हमारे केन्द्र पर ट्रान्समीटर के पास एक बहुत ऊँचा 'मास्ट' लगाया गया जिसके शिखर पर एक ट्यूब लाइट हवाई जहाजों को सुरक्षा संकेत देने के लिए लगाई गयी। रेडियो स्टेशन के गेट पर जो ढाबानुमा दुकानें थीं उस पर हम और शमशेर जी चाय पी रहे थे। एकाएक वे आसपास की ओर देखते हुए गुमसुम हो गये। मैंने पूछा, 'शमशेर जी कहां खो गये कहां पहुंच गये?' शमशेर जी ने उस मास्ट की तरफ इशारा करके मुझसे कहा, 'भाई

मैं यह सोचने लगा कि चांद इतना लंबा कैसे हो गया?' कहकर वे स्वयं खिलखिला पड़े। मैंने भी उस ओर देखा और जोर की हंसी आई और कहा वाह! शमशेर जी ट्यूब लाइट को देखकर आप ही यह सोच सकते हैं। बोले अरे तुम्हारी जमीन पर है ना! तुम हास्य-व्यंग्य लिखते हो इसलिए मैं तुम्हारी ही नजरों से चांद को देख रहा हूँ। स्टूडियो में ब्राडकास्ट के लिए जैसे ही लाल बत्ती जलती, शमशेर जी की घबराहट शुरू हो जाती थी। जैसे बेतरतीबी उनमें व्याप्त थी वह उनकी स्क्रिप्ट में भी देखने को मिल सकती थी। अक्सर वे अंतिम समय तक कविताओं में काट-छांट करते रहते थे फलस्वरूप वे किस कविता के साथ कटा हुआ या सही लिखा हुआ अंश जोड़कर पढ़ देते थे यह न तो भारत जी को पता चलता था न नरेश मेहता को और न मुझे और फिर सुनने वालों की क्या कहना। वह तो तभी पता चलता था जब स्वयं शमशेर जी स्टूडियो के बाहर आकर हम लोगों को हंसते हुए अपनी करनी सुनाया करते थे। शमशेर जी अपनी रचनाओं में काट-छाँट करते थे। उन्हें बार-बार तराशते फिर उसका एक अनोखा रूप देते। लेखक शमशेर पांखुरी, फिर फुल में लग जा।[१०] 'इति नमस्काराते नरेश मेंहता' शीर्षक से लेखक ने नरेश जी को स्मृतियों में बांधा है। लेखक नरेश जी के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए थे। नरेश जी के साथ लेखक की मित्रता काफी गहरी हो गयी थी। लेखक को इस बात का बहुत कष्ट था कि नरेश जी का जीवन काफी कष्टमय बीता है। लेखक और नरेश जी जब भी मिलते, परिमल की गोष्ठियों में जो घटता था उस पर भी चर्चा करते थे। नरेश जी भोपाल जा रहे थे वह गाड़ी के इंतजार में बैठे लेखक से बात करते करते लेखक को गले लगाकर भावुक हो गये और बोले-"अब कोई चिंता नहीं आज का वर्तमान निरर्थक हो गया है। हम दोनों के लिए हमारा अतीत जितना समृद्ध रहा है, उसकी तुलना में किसी से कोई गिलाशिकवा-, शिकायत नहीं है, जो कुछ तुमने और मैंने जी लिया है वह आज के समस्त परिवेश से भारी बैठता है। तुमसे मिलते हैं तो लगता है सचमुच इलाहाबाद आये है नहीं तो अब वह इलाहाबाद भी कहां है।"[११]

यह संस्मरण व्यक्ति के मानवीय अर्थों का निर्वचन करने में समर्थ है। इस संस्मरण को साहित्य के इतिहास संस्कृति और चित्तवृत्ति का काल पात्र भी माना जा सकता है और मुल्योन्मुखी होने के तर्क से सर्जन साहित्य कैसे प्रयोग मूल्य हो सकता है। यह इन संस्मरणों से ही हम समझ सकते हैं।

6. पंडित सूर्य नारायण व्यास -

'यादें' संस्मरण पं. सूर्यनारायण व्यास जी द्वारा लिखित संस्मरण है। इसमें उन्होंने लेखों के रूप में अपने संस्मरण को संग्रहित किया है इस संस्मरण में एक ओर जहां अभिमान रहित व्यक्तित्व है, वहीं दूसरी तरफ राष्ट्र नायक, उद्योगपति, संत, क्रांतिकारी, कलाकार आदि व्यक्तियों को चित्रित किया है। 'सूर्य स्मरण' से यह संस्मरण आरंभ होता है जो रवीन्द्रनाथ टैगोर की काव्य पक्तियां हैं। सूर्य नारायण व्यास जी एक इतिहास के रूप में पुरातत्वों के रूप में क्रांतिकारी संपादक निबंधकार कवि अकादमी के संस्थापक, ज्योतिष, पद्भूषणा प्राप्त साहित्य वाचस्पति व्यक्तियों के धनी थे। संपादक स्वयं भ्रमित हैं कि उसके किस रूप की चर्चा करें दो देव दूता शीर्षक से लेखक ने भारत वर्ष की महाविभूतियों को याद किया है। गांधी जी और नेहरू जी दोनों ही पटुवक्ता नहीं थे लेकिन उनकी भाषा हृदय की भाषा होती थी। लेखक ने दोनों का आपसी जुड़ाव बताया है और इसी को युग पुरुष शीर्षक से आगे बढ़ाया है। महात्मागांधी को युग पुरुष की उपाधि दी है और बताया है कि गांधी जी की सबसे महत्त्वपूर्ण देन राजनीति में नैतिकता ही है।

महात्मा जी युगपुरुष रहे हैं। उन्होंने अपने युग को व्यापक रूप से प्रभावित-स्थिर-आन्दोलन से सागर के पार किया है। उनके खादी और स्वदेशी के 'लंकाशियर' और मैनचेस्टर चिन्तित हो उठे थे। मिल वस्त्रोद्योग आतंकित था। हरिजनों के उत्साथ का अभियान आरम्भ किया तो रूढ़िवादी धार्मिक जनता में खलबली मच गयी थी। 'भारत छोड़ो' की आवाज के साथ विदेशी जनता ने बोरे-या थाबिस्तरे समेटना शुरू कर दि, इंग्लैण्ड में साम्राज्य समेटने की चिन्ता व्याप्त हो गयी थी। जिस ओर उन्होंने दृष्टि फेंकी उस ओर चेतना की लहर दौड़ जाती थी। प्राण प्रेरित हो जाते थे। जिस तरफ गांधीजी के पैर उठ जाते थे, लाखों करोड़ों पैर उसी तरफ मुड़ जाते थे। उन्होंने साहित्य को प्रेरित किया, प्रभावित किया, भाषा के प्रश्न पर नवजागृति की। पुरुष और महिलाओं के साथ-, युवा और किशोर पीढ़ी भी उनके इंगित मात्र पर आन्दोलित हो उठती थी। उन्होंने देश के विभिन्न क्षेत्र के उच्चस्तरीय बुद्धिजीवियों को अपनी ओर आकर्षित किया था। विश्व कवि रविन्द्र हों, सर पीराय हों .सी ., राधाकृष्णन हों, उनके चुम्बक क्षेत्र में खिंचे चले जाते थे। कला को भी नयी दिशा दी थी, समाज को सोते से जगा दिया था, और निर्भय बन

बढ़ने को प्रोत्साहित किया था। लॉर्ड इर्विन वायसराय ने नमक सत्याग्रह के महत्त्व को इसलिए कम आंका कि गिने हुए कुछ साथियों को लेकर एकान्त ग्राम में नमक बनने वाला गांधी कैसे समस्त देश को उत्तेजित कर सकेगा। परन्तु जब सारे देश में नमक सत्याग्रह की आंधी फैल गयी तब उसे संभालना सम्भव न हो सका था। डॉक्टर अम्बेडकर की जिद पर जब गांधीजी ने अनशन आरम्भ किया, ब्रिटिश साम्राज्य भी क्षण भर के लिए कम्पन करने लगा था। देश भर संवेदनशील हो गया था। अन्त में मैकडोनाल्ड की सरकार को अपना तीर तरकस में वापस लेने को बाध्य होना पड़ा था, अपने समय में 'भारतवर्ष' का दूसरा पर्याय 'गांधी' हो गया था। गांधीजी के व्यक्तित्व का जादू अनेक अवसरों पर देखने को मिलता था। लाहौर कांग्रेस का अधिवेशन था, कांग्रेस कार्यकारिणी के खुले अधिवेशन में 'नेहरू रिपोर्ट' पर चर्चा हो रही थी। उस समय श्री सत्यमूर्ति ने नेहरू रिपोर्ट पर वाक् प्रहार करते हुए तीव्र आलोचना की। गांधीजी हाथों से तकली चला रहे थे, और सरदार वल्लभ भाई, मोतीलाल नेहरू तथा सरोजिनी नायडू से परस्पर चर्चा भी करते जा रहे थे। आलोचक सत्यमूर्ति ने कहा है, 'जवाहरलाल गांधीजी के लाडले हैं, इसलिए गांधी जी उनकी आलोचना को भी सुनना नहीं चाहते। वे आपासी बातों में मशगूल हैं।' गांधी जी ने सुना, और सत्यमूर्ति की ओर देखकर जोर से खिलखिलाकर हंस पड़े। केवल गांधी जी की इस 'हंसी' में ही सत्यमूर्ति का जोश-कोष शिथिल पड़ गया। परन्तु सत्यमूर्ति के जोशीले भाषण समाप्त हो जाने के बाद गांधीजी को भाषण आरम्भ करने के लिए अनुरोध किया गया। गांधीजी ने अपने चश्मे को अपनी नुकीली नाक से हटाकर सिर पर चढ़ा लिया और तेज बरसती हुई आंखों को जनता की ओर केन्द्रित कर भाषण शुरू किया, तब समस्त सदस्य, और दर्शक चकित-स्तम्भित हो गये कि सत्यमूर्ति के एक-एक प्रहार को यथाक्रम अपनी तर्क श्रवण शैली में निरस्त कर डाला। स्वयं सत्यमूर्ति भी चकित हो गये कि चर्चा में लीन गांधी जी ने उनकी पूरी आलोचना तो सुनी नहीं थी, किन्तु उसका क्रम भी सावधानी से भाषण में रखा था। अन्त में सत्यमूर्ति ने खड़े होकर क्षमा मांग ली थी, वह दृश्य अविस्मरणीय था। स्मरण रहे कि सत्यमूर्ति अपने समय के प्रखर वक्ता थे। वायसराय की असेम्बली में उन्होंने एक विषय पर लगातार तीन दिनों तक पूरे समय अपना भाषण जारी रखकर भाषण का 'रिकार्ड' बनाया था। [१२] निर्भयता रही है और आत्मविश्वास रहा है महामना मालवीय

जी के प्रथम दर्शन लेखक को कैसे हुए उसका भी वर्णन किया है। ऋषितुल्य व्यक्तित्व से वाले मालवीय जी मिले। वह बहुत प्रभावित हुए और बोले आप तो स्वयं विश्वविद्यालय हो हमें आशीर्वाद दीजिए कि काशी में विश्वविद्यालय स्थापित कर सकें। सूर्य नारायण जी ज्योर्तिविज्ञान के तीन अंगों के प्रकांड पंडित थे और उनके छात्रों की संख्या 6000 से ऊपर थी। लोकमान्य तिलक जी जो गणित और खगोल विषय के मर्मज्ञ थे वह व्यास जी को बहुत सम्मानित करते थे। राजर्षि टण्डन जी के दर्शन व्यास जी को हिंदी साहित्य सम्मेलन भरतपुर में हुए। बाद में मध्यभारत में एक स्वतंत्र हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इसके पश्चात जब हरिद्वार में हिंदी साहित्य का सम्मेलन हुआ था तब व्यास जी के कहने पर महामना मालवीय जी ने विज्ञान की अध्यक्षता की। इस अधिवेशन में संपादक ने एक साहित्य भाषण दिया था जिसे सुनकर व्यास जी ने अपने बेटे को गले लगाते हुए कहा था मेरी आत्मा प्रसन्न हो गयी बधाई। राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के बारे में बताते हुए उन्होंने लिखा है कि एक बार गांधी जी ने कहा था कि अमृत पीने वाले बहुत हैं पर मेरे पास अकेले राजेन्द्र बाबू ही जहर पीने वाले हैं वह जहर से घबरा गये तो जहर कौन पियेगा। राजेन्द्र बाबू बड़े ही सरल और कई बार हलाहल पीने वाले व्यक्ति हैं इसलिए व्यास जी के प्रति सदैव आत्मीयता हित कामना ही व्यक्त की है।

बाबूजी की सादगी तो हर दर्जे की ही थी। प्रायः उनकी जनेऊ ऊपर झूला करती थी। राष्ट्रपति बनने के पूर्व जो स्थिति थी, वह बाद में भी बनी रही, जब कहीं बाहर जाना होता, ऑफिस में रहना होता तो उनके सेवक सीताराम, या अन्य आप्तजन टोपी के अन्दर चुटिया को दबा देते थे और जनेऊ को कपड़े के अन्दर रख देते थे। एक रोज की बात है, कपड़े पहनकर ऑफिस में जाने को तैयार हो गये थे और सदा की तरह जनेऊ कोट के ऊपर ही झूल रही थी। हम लोग भी बाबूजी के कमरे में ही थे। इतने में सीताराम ने निकट जाकर जनेऊ को ऊपर लटकते देखा तो उसे अन्दर कर दिया। बाबूजी सहज मुस्करा दिये। मेरी ओर देखकर कहने लगे, 'अब हिन्दुत्व शेष ही कितना रह गया है। महज जनेऊ और चोटी में बाकी दिखाई देता हो, सो उनका प्रदर्शन इस तरह हो जाता है, पर इन लोगों को यह थोड़ासा प्रदर्शन भी पसन्द नहीं है।-' मैंने कहा कि बाबूजी सीताराम इस कारण सर्तक है कि आप धर्म-निरपेक्ष शासन के प्रमुख हैं। इस पर सभी

उपस्थित जन हंस पड़े। जब महात्मा जी चम्पारन में गये थे और उनके साथ निलहे गोरों के विरुद्ध शिकायतें राजेन्द्र बाबू और अन्य मित्र वकील लोग संग्रह कर रहे थे, सभी को अपना काम अपने ही हाथों करना पड़ता था। क्योंकि गांधीजी स्वयं हाथों से झाड़ू लगाते थे, अपने कपड़े अपने ही हाथों से धोते थे, तब उनके साथ रहने वाले कैसे अपने काम नौकरों से करवाते। सभी के नौकर धीरे-धीरे हटा दिये गये थे और सभी लोग अपना काम स्वयं अपने हाथों करने लग गये थे। उन दिनों राजेन्द्र बाबू पटना हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील थे। आमदनी भी अच्छी रहती थी। कुछ दिनों गांधीजी के साथ रहते हुए भी उनका नौकर साथ था, पर उसे हटा देना पड़ा। उसी समय एक रोज के लिए बाबूजी को पटना जाने का काम आ पड़ा। उनके पास एक छोटा डिब्बा था, जिसमें खाने के लिए कुछ रख लेते थे। वह चम्पारन में भी साथ ही था। बहुत दिनों से पड़ा रहने के कारण मैला हो गया था, सो बाबूजी ने उसे निकाला और पास के कुएं पर जाकर मलकर साफ करने लगे, इतने में गांधी जी उधर से निकल पड़े। उन्होंने बाबूजी को डिब्बा मलते देखा तो हंस पड़े और कहने लगे आज हमको बहुत खुशी हुई कि पटना हाईकोर्ट के वकील से हमने बर्तन मलवा लिये। राजेन्द्र बाबू इस घटना का स्मरण करते आज भी हंस पड़ते थे। गांधी जी ने जिन्हें कठिन कसौटी पर कसा, और सौ टंच सही पाया, तभी बर्तन मलने की मजूरी राष्ट्रपति पद के रूप में प्रदान कर दी थी। [१३]

7. डॉ- काशीनाथ सिंह .

एक विराट व्यक्तित्वः नामवर सिंह हिन्दी साहित्य जगत में अपनी अलग पहचान बना चुके हैं। उनके विषय में काशीनाथ जी ने 'घर का जोगी जोगड़ा' में ऐसा चित्रण किया है जो पाठक को गाँव से दिल्ली जाने वाली सड़क का पथ प्रदर्शित करता चलता है। आज का व्यक्ति गांव और शहर के बीच में झूलता हुआ दिखाई देता है लेकिन जिन्हें विकास का पथ ज्ञात होता है वो अपने मार्ग का आरम्भ अपनी जड़ों से ही करते हैं और तब दिल्ली तक विकसित होते चले जाते हैं। काशीनाथ सिंह जी ने अपने संस्मरण 'घर का जोगी जोगड़ा' में इसी बात को चित्रित किया है। यह संस्मरण 2006 में राजकमल प्रकाशन हुआ है। [१४]

'घर का जोगी जोगड़ा' संस्मरण की शुरुआत जीयनापुर से हुई है जो नामवर जी का गांव है। लेखक नामवर जी के छोटे भाई हैं। लेखक को जब नामवर जी

की याद आती है तो उनके समक्ष हजारीप्रसाद जी का विचार जो कबीर प्रसंग में लिखा है। वह याद आ जाता है 'प्रतिभा जन्म लेने के लिए किसी कुल विशेष का इंतजार नहीं करती'। लेखक को लगता है हजारीप्रसाद जी यह कहना भूल गये कि वह कभीकभी इंतजार भी करती है लेकिन टीले या ऊसर में एक विराट व्यक्तित्व - का उदय होता है। यह हमारे देश के लिए एक गर्व की बात है। लेखक को वह गरमी की भोर जिसमें महुआ बीनना याद आता है। सब लोग अपने एक दो पुश्तों को याद रखते हैं पर लेखक ने अपनी चार पुश्तों का ही उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं -

लेखक 16 अगस्त, 1942 में नामवर जी से पहली बार मिले थे। तब उन्हें पता चला कि उनका बड़ा भाई नामवर जी है। यह उनकी धुंधली याद है जब बर्मा में लड़ाई छिड़ी थी और उसी समय धानापुर कांड हुआ था। उसमें नामवर जी शामिल थे। यह भी लेखक को धुंधली सी याद है।

लेखक का इसी पुस्तक के अंतर्गत दूसरा अध्याय कह सकते हैं 'गरबीली गरीबी वह' नामवर जी ने उपलोक सभा चुनाव लड़ा था। उसी समय वक काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक थे। नामवर जी ने चुनाव प्रचारप्रसार के लिए एक कर - दिया था। उसके बावजूद चुनाव नहीं जीत पाये थे। उसी समय उनको विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया था। इतने तिरस्कार के बावजूद नामवर जी अपने कमरे में बैठकर अगले लेख की तैयारी कर रहे थे। यहदेखकर लेखक को बहुत आश्चर्य हुआ। कोई इतनी सहजता से कैसे पराजय को स्वीकार कर सकता है और अपने जीवन को सहज नामवर जी ही बना सकते हैं।

एक बार नामवर जी चम्मच से चाय में शक्कर घोल रहे थे। उनके पास बैठी उनकी माँ बोली 'बचवा चार पाँच चम्मच, गांव के लि भी ले देना' काहे माँ ने कहा (लेखक बोले)'अरे चुनाव में अबकी रमलोचना गया तो खाते चम्मच मांग बैठा चम्मच था ही नहीं कहां से देती? घर की इज्जत चली गई!' फिर बोले 'चीनी में जैसे कुछ मिला हुआ है। जितना भी डालो चाय मीठी ही नहीं होती।' लेखक बोले 'हर चीज मिलावट की है, क्या कीजिएगा?' नामवर जी बोले 'ठीक कहते हो। अब तो शुद्ध मूर्ख भी नहीं मिलते।' अब उन्हीं को देखाइनमें भी धूर्तता ! और अविश्वास आ गया है।[१५]

लेखक को एक वाक्य याद आया। नामवर जी नहाकर आये और अपने बालों को कंघी कर रहे थे, तभी लेखक पूछ बैठे 'रूसी साहित्य जी समुदायिक खेती पंचवर्षीय योजनाओं पर लिखा जा रहा है उसके बारे में आप क्या सोच रहे हैं' नामवर जी एकदम गंभीर मुद्रा में रहकर बोले 'इस समय तो मैं अपने बालों की रूसियों के ही बारे में सोच रहा हूँ' नामवर जी की नौकरी नहीं और घर की स्थिति जस का तस था लेखक को जो वजीफा मिलता उसी से घर चलता था। वजीफा भी बंद होने वाला था। लेखक को बाद में व्याकरण में नौकरी मिल गई जिसमें उनको 200 रुमिलते थे। भारत और चीन का युद्ध छिड़ा हुआ था। चीन में . साहित्य पढ़ना तो दूर कीबात थी घर में रखना ही नहीं था। नामवर जी को पुलिस तलासने लगी। नामवर जी भागेभागे फिरने लगे-, उन्हें जेल से डर नहीं लगता। उन्हें भद्दे आरोप से डर था जिसकी उन्हें सात जन्म से भी कल्पना नहीं की थी।

एक बार लेखक के हाथ में किताब देखकर नामवर जी पूछ बैठे 'इस समय क्या पढ़ रहे हो' लेखक ने कहा 'कज्जाक तोलस्तोय की किताब' नामवर जी ने कहा 'क्या किस्मत होती है आलोचकों की तुम तो 'तोलस्तोय' को पढ़ने के लिए कितने स्वतंत्र हो और मैं कचरा कहानियों को पढ़ने के लिए अभिशप्त हूँ।' ऐसे ही एक बार सब लोग बैठकर बातें कर रहे थे उसमें से एक ने नामवर जी से पूछा नामवर जी 'मुहब्बत और इश्क में क्या अंतर है?'

नामवर जी बोले 'जी हाँ है' कैसे? फिर नामवर जी बोले 'मुझे इस देश से मुहब्बत है पर यह कोई नहीं कहता कि मुझे अपने देश से इश्क है।'

बत्तीस साल के बाद नामवर जी बनारस आये थे लेखक ने उन्हें देखा तो उनको यह महसूस हुआ मानो दिनभर जुताई करने के बाद बैल चरनी पर आता जैसे दिनभर उड़ते रहने के बाद पंछी अपने घोंसले में लौटता है जैसे दिनभर बाहर धूप में खेलने के बाद बच्चा माँ की गोद खोजता है लेखक को ऐसा ही लगा नामवर जी को देखने के बाद। लेखक नामवर जी के लिए चाय बना कर लाये। नामवर जी देखते ही बोले 'क्यूं भाई ये नया तरीका है चाय पिलाने का' लेखक की नजर ट्रे में पड़ी तो देखा उसमें पेचकस था लेखक देखकर हंसने लगे। नामवर जी कहते हैं "सोचा मत, डोन्ट थिंक राइट" सोचेंगे तो सोचते रह जाओगे। समाज में हर जगह सास-बहू का किस्सा है किसी को किसी से प्रेम रखना आसान नहीं हैं।

एक ही समय और हिंदी की तीन महान् विभूतियां आचार्य शुक्ल, प्रसाद जी, प्रेमचंद जी की आपस में ईर्ष्या द्वेष की कोई गुंजाइश भी नहीं थी। एक आलोचक, दूसरा नाटककार, तीसरा कथाकार नामवर जी अपने आप को रोक नहीं पाये और शेर सुनाया -

दुविधा पैदा कर दे दिलों में

ईमानों को दे टकराने।

बात वो कर एक इश्क कि जिससे

सब कायल हो कोई न माने।।

नामवजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। लेखक ने डॉक्टर को घर पर ही बुलाया था। वहां इंतजार करते -करते शाम हो गयी डॉक्टर नहीं आया। वह बोले-

वो आते हैं आ रहे हैं आ रहे होंगे।

इसी ख्याल में राते गुजार दी हमने।।

नामवर जी के स्वास्थ्य में सुधार नहीं हो रहा था। वह डायग्नोस्टिक करा कराकर थक गये थे। वह सोचते डॉक्टर कुछ बता क्यूं नहीं रहे हैं वह भावुक हो जाते थे। नामवर जी बहुत चिंता भरे स्वर में बोले 'काशी जीमै दाल का टुकड़ा ढूंढ रहा हूं जो खो गया है।'

नामवर जी बीमारी से नहीं न जाने जिंदगी में किससे थक गये थे वह कहते हैं 'काशी जी मैं बहुत थक गया हूं।' नामवर जी के गाँव में सम्मेलन था, नामवर जी को बोलना था। वह भाषण देते हुए रो पड़े थे और उन्होंने कहा, 'कबहुंक मन विसराम न मान्ये' और उन्होंने तुलसी, कालीदास के जीवन संघर्षों का जिक्र करते हुए कहा 'बचपन में ही माँबाप का प्यार छूटा-, पत्नी छोड़ा, बनारस में दुरदुराये गये तो उसके बाहर अस्सी पर बसे और चार चने के दानों को ही चार फल माना।'

'डासत ही गयी बीत निसा

सब कबहूं न नाथ नींद भर सोये।'

कहते हैं बिछौना और सोने की तैयारी में सारी रात बीत गयी जाना ही नही कि नींद क्या होती है? अब मैं विश्राम चाहता हूं। अपने चित्त को विश्राम देना चाहता हूं, है कोई ऐसी जगह जहां मन की थकान मिटे? विश्राम मिले? आज भी चक्कर काट रहा हूं उसी की खोज में, बाबा को तो विश्राम 'राम' में मिला था मैं कहां जाऊँ? वहां हजारों की संख्या में उपस्थित जन सभी के आँखों से आँसू बहने

लगे थे। बहुत देर तक सब सिसकियां लेते रहे। नामवर जी का गला रुँध गया था, कैसा माहौला रहा होगा मैं तो पढ़कर अपने चित्त को रोक नहीं पा रही हूं रोने से।

नामवर जी की रिपोर्ट आ गयी थी, उनकी बीमारी का पता चल गया। उनके फेफड़ें में फोड़ा हो गया था। अब उनकी खूंटे में अटकी दाल मिल गयी थी और वह राहत महसूस कर रहे थे। पुराने पत्रों में से महत्त्वपूर्ण पत्रों को छांटते हुए उन्होंने लेखक से कहा -'काशी जी मैं एक बार गोर्की एवं तोलस्तोय से मिलने उसके घर गया, उस समय तोलस्तोय झाड़ू लेकर एक छिपकली को भगा रहा थे, छिपकली छत के एक कोने से दूसरे कोने में भागती रही और वह भद्दी गालियाँ देते रहे।' गोर्की दरवाजे पर खड़े थे। उन्होंने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, फिर वह थक कर बैठ गये और कहीं से एक शीशी और डंडा लेकर आए। शीशी टूट कर दूर जा गिरी। देखते ही बोले आप फिजिक्स के नियम के विरूद्ध काम कर (गोर्की) रहे है। तोलस्तोय ने कहा जाओ यहां से चाय नहीं पिलायेंगे तुम्हें, तुम शीशी का टूटना देख रहे हो, मेरे अंदर क्या टूट रहा है यह नहीं देख रहे हो आप। ऐसे ही कई किस्से लेखक को स्मरण आए। नामवर जी की बीमारी की सूचना लेखक दिल्ली उनकी पत्नी को देना चाहते थे, पर नामवर जी ने मना कर दिया, यह कह कर कि मैं आपको कितना बुद्धिमान समझता था पर आप इतने बड़े मूर्ख हो मैं नहीं जानता था। इसी के साथ 'घर का जोगी जोगड़ा' का समापन किया गया है पाठक को संस्मरण पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है मानों ये सभी दृश्य उसके जीवन में घट रहे है और वह मूक द्रष्टा बन आनंद लेता है ऐसी कोई घटना नहीं है, जो उनके लिखते समय छुटी हो इतने सुंदर ढंग से एकएक का उल्लेख किया - है ऐसा लगता है जैसे फिल्म देख रहे हैं। [१६]

8. रविन्द्र नाथ त्यागी -

वसंत से पतझड़ तक यह संस्मरण रविन्द्र नाथ त्यागी जी द्वारा लिखित संस्मरण है, जिसके अंतर्गत उन्होंने अपने बचपन से लेकर जीवन के सभी उतार-चढ़ावों को शामिल किया है। इसमें उन्होंने व्यंग्य हास्य के माध्यम से वक्रोक्ति में व्यंजना के माध्यम से भाषा का चमत्कार भी पैदा किया है। एक ओर उन्होंने अपनी यादों में अपनी पहली किताब को शामिल किया है, दूसरी ओर गांव और दफ्तर को। रिश्तेदार, नौकर, डॉक्टर, चपरासी, संपादक तथा आकाशवाणी से होते हुए

पहाड़ी यात्राओं को भी चित्रित किया है। साहित्यिक लोगों के व्यक्तित्व और कृतित्व को भी प्रस्तुत किया है, साथ ही सरकारी संस्मरण भी शामिल किये गये है। इनका शीर्षक 'वसंत से पतझड़ तक' अपने रूप में इसी अर्थ में छुपाए हुए है कि आरंभ से अंतिम पड़ाव तक का जीवन संस्मरण के माध्यम से व्यक्त किया गया है। लेखक त्यागी जी अपने बचपन के विषय में कहते हैं कि अधिकतर लोग तभी अपने बचपन को चित्रित करते हैं जब वह अभिजात्य वर्ग के होते हैं, लेकिन उनके वे अपने पिता जी की बीमारी के कारण गांव में रहने लगे थे और वहीं उन्होंने शिक्षा प्राप्त की, नौटंकी देखी, वहां के रहने वालों से प्रभावित हुए। उन्हें एक वाक्या याद है जब बचपन में सच बोलने के कारण उन्हें दुख मिला। अपनी शरारतों को भी निःसंकोच व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है बचपन में मुझे लड़कियां बहुत पसंद थीं उनकी कमर पर गुलेल मारा करता था। इस बात से बाद में मुझे खूब गालियां मिलती थीं। मुझे याद है कि बचपन में हमारे गांव में एक जादूगर आया था। उसने रूमाल गायब करने और मुंह से कील निकालने के करतब दिखाये थे। उस जादूगर ने घोड़ा ऐसा गायब किया कि दो दिन तक पता ही नहीं चला। हुआ यह कि एक दिन खेल के बाद पहलवान ने जादूगर से एकाध खेल सिखाने के लिए कहा जिसे जादूगर ने, जैसा कि जाहिर था, मना कर दिया। पहलवान था रोबदार आदमी, जब जादूगर ने उसकी बात सुनीअनसुनी कर दी तो - उसने उसका घोड़ा गायब कर दिया। यह जादू ऐसा था कि सिर पर चढ़कर बोला। कहने का तात्पर्य यह है कि जब आंगर में पहलवान साहब भारी भीड़ के सामने यह कह रहे थे कि उन्होंने जादूगर का घोड़ा (का कोई घोड़ाया किसी भी किस्म) जिन्दगी में कभी देखा ही नहीं था।'गर्दिश के दिन' शीर्षक से उन्होंने अपने पारिवारिक दुखों का चित्रण किया है और गांव से प्रयाग जाने की बात बताई है। प्रयाग पहुंचकर साहित्यकारों से मुलाकात तथा साथ ही साथ हास्य और व्यंग्य लेखों का आरंभ भूत और पिशाचों वाली गली शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने अपनी बारहवीं की पढ़ाई के समय रहने वाले क्षेत्र में मकान पड़ोसी आदि का जिक्र किया है। 'जीवन में क्या बनना चाहता था' शीर्षक के माध्यम से उन्होंने यह बताया है कि रेलवे का गार्ड बनने की इच्छा रखते थे लेकिन ये बात अपने पिता को बताने से डरते थे। इसके अंतर्गत उन्होंने अपने कस्बे के बड़ेबड़े लोगों का जिक्र किया है - और बाद में साहित्य का धंधा बताते हुए उनकी कठिनाइयों का वर्णन किया है।

'मेरी पहली किताब' के अंतर्गत उन्होंने किस तरह से लेखन कार्य आरंभ किया है किन का उन पर प्रभाव पड़ा, और कौनसी रचनाओं का चित्रण किया है। एक ऐसे प्रकाशन का भी जिक्र किया है जिसमें उन्हें समझाया था यदि किताब लिखना चाहते हो इसे छपवाना चाहते हो तो ये बात दिमाग में रख लो हम एक दिन कवि अवश्य कहलाएँगे लेकिन बीवी, बच्चे भूखे मरेंगे कई प्रकाशकों के चक्कर काटे लेकिन उनके संग्रह को किसी ने नहीं छापा करीबन दो वर्ष तक ऐसी ही अपनी किताब लेकर प्रकाशकों के पास जाते रहे तब बाद में लेखक की पहली पुस्तक भारती भण्डार से छपी। बधाइयों के पत्र आए। इस प्रकार लेखक में दिलचस्पी बढ़ी आज कुछ अपने बारे में शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने लिखा है, कि देखते ही देखते न जाने कितने साहित्य के डॉक्टर हो गये, समीक्षकों का जिक्र किया गया है लेखकों का जिक्र है तथा युवा कलाकारों का भी। बागडपुर हाल्ट शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने रेल यात्राओं का वर्णन किया है। यूनिवर्सिटी जाने पर मेरे सपनों का क्षितिज बहुत बड़ा हो गया। अब मैं दिलीपकुमार बनना चाहता था। 'नदिया के पार' और 'जोगन' , इन दो चित्रों ने मुझे पागल बना दिया था। मैं एक कान्फ्रेंस में भाग लेने मुम्बई गया तो दिलीपकुमार से मिलकर आया। उसी यात्रा के दौरान मैंने राजकपूर, नरगिस, निगार सुलताना और मुकरी से भेंट की। जहां तक अशोक कुमार का प्रश्न है, स्थिति यह रही कि काफी कोशिश करने के बावजूद वे 'अशोककुमार' के स्थान पर 'शोक कुमार' ही रहे। प्राण और ओमप्रकाश को हमने पास से देखा और गीता राय से भी मुलाकात की। बड़ी सुन्दर युवती थी। पृथ्वीराज कपूर को मैंने पहले से इलाहाबाद में ही देख रखा था और उनको दुबारा देखने की कोई इच्छा नहीं थी कि 'देवदास' के दिलीपकुमार, 'तीसरी कसम' के राजकपूर 'परिणीता' के अशोक कुमार और 'गाइड' के देव आनन्द को मैं जीते जी कभी नहीं भुला सकता और सबसे बड़ा था मोतीलाल जिसने 'देवदास' में चुन्नीलाल का रोल इतनी शान से अदा किया कि लगता था जैसे विमल राय जो थे वे शरत् बाबू से भी आगे निकल गये। मुझे सारी जिन्दगी यही अफसोस रहेगा कि मैं मोतीलाल, वुडहाउस और स्तालिन को नहीं देख पाया। सुंदर उदाहरणों के माध्यम से फिल्मों के नाम बताए हैं तथा ठाकुर साहब की रियासत की चर्चा की है, बादलों का गांव, दफ्तर का एक दिन, आज मैं रिटायर हो गया, मेरे कुछ दिलचस्प रिश्तेदार, मेरे कुछ मल्लेदार, घरेलू नौकर, जिन मकानों में खाकसारा रहा इत्यादि शीर्षकों के माध्यम से उन्होंने

अपनी यादों को ताजा किया है। किसकिस तरह से दिल्ली में नौकरी की सरकारी - बीच में शेरो शायरी का प्रयोग -कान में रहे इत्यादी बातों को बताया है। बीचम किया है, व्यंग्य का प्रयोग किया है। जो भाषा को याद करते हुए अपने संस्मरण के अंतर्गत उन्होंने जीवन में आये हुए किसी भी संबंध को अपनी चित्रण में समाहित अवश्य किया है। अकविता, पत्रिका का भी उल्लेख किया है। हिंदी दिवस संवादकों का सहयोग, पहाड़ी यात्राएं, मसूरी जाना, कश्मीर जाना, दक्षिण की यात्रा करना इन सभी चीजों को इस संस्मरण के अंतर्गत चित्रित किया है। कुछ दिलचस्प बड़े लोग शीर्षक के अंतर्गत पं. गोविंद बल्लभ पंत उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री को बल्लभपंत, संपूर्णानंद, अमरनाथ झा, फिराक साहब, जयप्रकाश नारायण, सुमित्रानंदन पंत, उपेंद्रनाथ 'अश्क' एवं सतीश देव बंगाली आदि का शीर्षक उल्लेख रोचक ढंग से किया है। साहित्यकारों में बाबा नागार्जुन, उग्र जी, अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजाकुमार माथुर, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, त्रिलोचन एवं शमशेर बहादुर सिंह आदि का जिक्र बड़ी सुंदरता से किया है। राजेश्वर बाबू एक अद्भुत व्यक्ति थे शीर्षक से उनके साथ प्रथम भेंट में क्या-क्या घटा, कैसा लगा आदि बातों का जिक्र किया है तथा शेरो शायरी के माध्यम से अपनी भावना व्यक्त की है। रात गहरा रही है गौरव के क्षण में मेरे बड़े सफरसर और सरकारी संस्मरण एक दो यह एक बात का यह इस बात का परिचायक है कि लेखक अपने समय में जिसजिस के सान्निध्य में आये वह - जब उनकी स्मृति पर छाये है। कुछ-जब साहित्यिक संस्मरण संक्षिप्त में लिखा है, जिसके अंतर्गत उन्होंने बच्चन, जैनेंद्र कुमार नागार्जुन, सर्वेश्वर दयाल, मोहन राकेश, नामवर सिंह एवं लालशुक्त आदि का जिक्र किया है। अत्यंत संक्षिप्त कुछ साहित्यिक संस्मरण के अंतर्गत उन्होंने दुष्यंत कुमार, मुद्राराक्षस, गोयलका, कवित गोविंद चंद्र पाण्डे जी का चित्रण किया है। वो दिन इलाहाबाद के शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने प्रयाग को एक अनुपम स्थान बताया है तथा प्रयाग विश्वविद्यालय काफी प्रतिष्ठित माना जाता है। प्रयाग के आसपास का भी परिचय दिया है और अंततः - अपनी इच्छा व्यक्त की है। प्रयाग विश्वविद्यालय का उपकुलपति बन जाऊँ जिससे सिनेट हॉल की गौरवशाली घड़ी की मरम्मत करवाँ सकूं। जिसके शीशे टूटे है लेखक चूंकि व्यंग्यकार है। इसलिए उन्होंने बड़ी मधुरता के साथ सभी को सही मार्ग पर चलने के लिए प्रशस्त किया है। पूरब का ऑक्सफोर्ड इस संस्मरण का

आखिरी शीर्षक है जो हिंदी जगत की पत्रकारिता का पूरा चित्रण करता है तथा साथ ही व्यंग्यात्मक शैली में लेखक ने भी बता दिया है कि उनके जमाने में हिंदी साहित्य का जो सुंदर माहौल था वह आज नहीं है इसलिए वह प्रार्थना करते हैं -[१७]

हवा बदली है कुछ ऐसी जमाने की।

दुआएँ माँगता हूँ होश में न आने की।।

9. जे.एन. कौशल (जितेन्द्र नाथ कौशल) –

जे.एन. कौशल (जितेन्द्र नाथ कौशल) जी संस्मरण 'दर्द' आया था दबे पाँव में उन्होंने अट्ठाइस शीर्षकों का चयन किया है। कौशल जी रंगमंच के प्रतिभाशाली शिक्षक के साथ-साथ निर्माता और लेखक भी थे। प्रस्तुत सभी संस्मरण प्रायः चर्चित रंग कर्मियों, लेखकों उनके परिवार और कुछ अवसरों, को स्मृतिबद्ध करते हैं। नाटक एवं फिल्म निर्माता निर्देशक ब.व. कारन्त जी के साथ काम करने वाले लेखक ने उनके साथ बिताई गई सुखद अनुभूतियों को रेखांकित किया है। इस संस्मरण के माध्यम से पता चलता है कि कारन्त जी को कितना परिश्रम करना पड़ता था एक तरफ नाटक का अभ्यास कराना, फिल्म बनाना उसके बाद शाम को जब काम से मौका मिलता तो संगीत भी बनाते। उनका संगीत बनाने का मुख्य कारण यह था कि पैसे का अभाव था। 'मुझ जैसा दिखने वाला लेखक' विजय तेंदुलकर लेखक से मिलते जुलते दिखे। लेखक की पहली मुलाकात तेंडुलकर जी एक नाटक के समारोह में हुई। उनकी पहचान उनसे बहुत गहरी नहीं थी। तेंदुलकर जी की नाटकों का प्रस्तुतियां लेखक ने हिंदी में ही देखी हैं। तेंदुलकर जी के नाटक अंग्रेजी, हिंदी के अलावा कई भाषाओं में अनुदित किये गए हैं। 'यायावर शाह का जाना' बी.एम.शाह शीर्षक से लिया है। शाह जी और लेखक राष्ट्रीय नाटक विद्यालय में एक साथ पढ़ाई करते थे। दोनों ज्यादा समय साथ-साथ रहते, लोग को भ्रम होता कि कौन शाह है और कौन कौशल। अक्सर लोग कौशल जी से पूछ बैठते आप शाह हैं और हमेशा लेखक को जवाब देना पड़ता नहीं। शाह जी एक सिद्धहस्त अभिनेता थे। 5 जून 1998 को शाह जी दुनिया छोड़ गये। लेखक के मन में हमेशा यही था कि यदि यमराज शाह जी को ढूँढते हुए मुझे पूछता, क्या तुम वी.एम.शा. हो? मैं बिना झिझक कह देता, 'हाँ' ! परंतु वह तो यमराज था, नाट्य विद्यालय के टीचर नहीं, जो ऐसी भूल करते। बहुरूपी-बहुआयामी मनोहर

(मनोहर सिंह) लेखक सिंह जी को प्रतिभाशाली कलाकार मानते थे। लेखक का सिंह जी से मिलना जुलना होता था पर गप और गोष्ठी अधिक होती थी। रंगमण्डल के कलाकारों को संभालना मेंढक तौलने के बराबर होता था। पर सिंह जी इस कार्य में माहिर थे। उनके अंदर व्यक्ति परख के आधार पर साम, दाम, दण्ड, भेद में उचित प्रक्रिया का प्रयोग करते। सिंह जी का सैकड़ों रूप मंच पर देखा है। इसलिए उन्होंने उनको बहुरूपी-बहुआयामी मनोहर का नाम दे दिया।

एक विलक्षण प्रतिभा (बादल सरकार) शीर्षक से लिखा है बादल जी एक नाटक के लेखक और कलाकार थे। उन्होंने बहुत सारे नाटक लिखे हैं। उनको कई सम्मान भी मिल चुके हैं जैसे -पद्म श्री, कालिदास सम्मान इत्यादि दिये गये हैं। 'साथ जिये कुछ पल' (शम्भुमिश्र) शीर्षक से लिया गया है। लेखक का कहना है मिश्र जी की आवाज में जादू था, जब वह मंच पर होते या सेमिनार में भाषण आपस की बातचीत हो या निर्देशकीय कार्यकलाप उनकी आवाज में एक जादू था। 'हुतात्मा को नमन' (भीष्म साहनी) इस शीर्षक से स्मृतिबद्ध किया है। लेखक साहनी जी के बहुत करीब नहीं रहे पर वह दूर-दूर से भी उनको समझ गये थे। लेखक का कहना है कि वह साहजी जली को निकट से जानने का कोई दावा नहीं कर सकते क्योंकि उनका बड़प्पन हर मुलाकात में यह भाव मन में जरूर पैदा करता है मानो लेखक उनके मित्रों में से एक है लेखक का मानना था कि साहनी जी एक जितने बड़े लेखक थे उतने ही बड़े आदमी वह एक हुतात्मा थे। 'दास्तान-ए-सफर' शीर्षक भाटियां (शीला भाटिया) को इस शीर्षक से याद किया है लेखक ने भाटिया जी को दास्तान-ए-सफर बहुत ही रोचक ढंग से बयां किया है। जब भाटिया जी नाटक का निर्देशन करतीं तो मानो उसमें रम ही जातीं। उनका अगला शीर्षक है कुछ छायाएं, कुछ स्मृतियां इस स्मृति में उन्होंने अपनी शिक्षिका को याद किया है। उनका नाम शांता गांधी था। वह एक अच्छी प्राध्यापिका के साथ-साथ एक अच्छा मेकअप भी करती थीं। किसी ने यदि संस्कृति के श्लोक गलत बोल दिये तो उसे शुद्ध उच्चारण कराती थी। एक दुर्लभ बन्धु (पंचानन पाठक) पाठक जी की लेखक के प्रति बड़ी आत्मीयता थी। लेखक कहना है कि पाठक जी के अंदर कौन सी खूबियां नहीं थीं। आवाज लोक संगीत और नाट्य संगीत के विशेषज्ञ थे। वह एक अच्छे प्राध्यापक, गीतकार संगीतकार, अभिनेता, निर्देशक, रूपांतरकार, अनुवादक इत्यादि। न जाने कितने पुरस्कारों से सम्मानित किये गये।

व्यक्तित्व अनुभव और ध्येय (इब्राहिम अल्काजी) अल्का जी एक जमे हुए रंगकर्मी तो थे ही साथ ही वह एक चित्रकार भी तो थे पर एक समय ऐसा आया कि उन्हें एक ही कार्य चुनना था उन्होंने चित्रकला को अपना जीवन बनाया 'रंगमंच' से दूर हो गये। 'धीरे से बोलता हूँ, चुपके से सुनता हूं' (रतन मिश्रा) लेखक की मुलाकात थियम जी दिल्ली में हुई थी। नाटक में हुई थी। नाटक रंगमंच पर के सिलसिले में वह मणिपुर से दिल्ली आये थे। उनके माता-पिता भी मणिपुर के प्रसिद्ध युगल थे। रतन थियम जी को 'पद्मश्री' मिला था। पर वह राष्ट्रपति से क्षुब्ध थे इस वजह से अपना पद्श्री सम्मान को लौटा दिया। 'दर्द आया था दबे पाँव' (ब.व.कारन्त) लेखक ने इस शीर्षक के माध्यम से कारन्त जी को विस्तार पूर्वक याद किया है।

कौशल जी ने कुछ संस्मरण के शीर्षक 'स्मृति के झरोखे से' इसके अंतर्गत उन्होंने कुछ उनके और करीब रहे सदस्यों को लिया है। जैसे -'मुन्नी बेटी बिटिया गुड़िया लाडो लाडली' इसके अंतर्गत उन्होंने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के भूतपूर्व डायरेक्टर इब्राहिम अल्का जी की पुत्री को संस्मरण बद्ध किया है। 'हर दिन एक नया प्रयोग' इसके अंतर्गत प्रसिद्ध नाटककार मामा वरेरकर जी को याद किया है। कहते हैं कि वरेरकर जी इतने वरिष्ठ कलाकार होने के बावजूद बड़ी सहजता से सबसे बात करते। 'अभिनय का जादू' इस शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने मिले जुले सभी लोगों को चित्रित किया है। उस समय जितने लोग अभिनय करते सबके अभिनय का चित्रण किया है। लेखक ने अपने अभिनय का भी चित्रण किया है। लेखक कहते है "मैं कद में छोटा तो था ही, आवाज भी मिनमिनीसी थी।-" जिसके कारण लेखक कहते है मैं अभिनेता नहीं बन सकता था क्योंकि लेखक पढ़ाई के दौरान जब नाटक की परीक्षा देते तो उनको 20 से 25 प्रतिशत ही परीक्षा फल आता पर थियरी में उनको 70 से 80 प्रतिशत तक परीक्षा फल मिलता। लेखक को पहले ही पता चल गया था कि वह अभिनय नहीं कर सकते। 'धरती को छू कर अभिवादन' इस शीर्षक के अंतर्गत लेखक मणिपुर गये थे वहां के कलाकारों को स्मृतिबद्ध किया है। उन्होंने उनके अभिनय और उनके व्यवहार का चित्रण किया है। वह कहते हैं कि उत्तरबम्बई जैसे -पूर्व के कलाकारों में दिल्ली-महानगरों के कलाकारों की तरह अकड़ नहीं है। वह हवाई किलों में नहीं रहते हैं। इतने विनम्र कि अभिवादन करते समय धरती को छूकर उससे जुडे होने का

हैं। एहसास जगाये रखते'इनके लिए भी कुछ गुलदस्ते' शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने उन लोगों को समेटा है। जिस पर अक्सर लोगों की नजर नहीं जाती। रंगमंच को जो सुंदर और वरीयता देते हैं वह है वाइटिंग वाले, मेकअप वाले, दृश्य परिकल्पना, वस्त्र विन्यास, मंचकलाएं, मास्टर टेलर और कहर इत्यादि लोगों का चित्रण किया है। 'अभिनेताओं के बीच राजनेता' इस शीर्षक के माध्यम से लेखक ने अभिनेताओं से जुड़े राजनेताओं का चित्रण किया है। जिस समय जवाहरलाल नेहरू थे उस समय का भी चित्रण किया है। राजेन्द्र कुमार, लालबहादुर शास्त्री जी इत्यादि राजनेताओं को चित्रित किया है 'कुछ और प्रसंग' रंगमंच से ही संबंधित यह भी शीर्षक है। इसके अंतर्गत उन्होंने सन् 1971 के भारतपाक युद्ध के दौरान - सीमावर्ती क्षेत्र में जाकर सैनिकों का मनोरंजन करना उसे भी शीर्षस्थ किया है'वे दिन भी दिन थे।' के अंतर्गत लेखक ने जब रंगशाला में थे उस समय वे लोग कैसे नाटक के डायलॉग कैसे याद करते थे उसको चित्रित किया है। 'हैलो मिस्टर खर यस डियर सर' यह शीर्षक इनके संस्मरण का है। नाटक द्वारा जो डायलॉग बोले जाते थे उसको इसके माध्यम से उल्लेख किया है।

'कुछ संदर्भ ये भी' इसके अंतर्गत लेखक 'पार्श्व-रंगकर्म का परिदृश्य, (आजादी के पचास वर्ष)' पहचान और परख, साहित्य कला परिषद तथा रंगमंच, दक्षिण की स्मृतियां, मदुरैः नये नाटक-आंदोलन की शुरुआत, पच्चीस साल बाद इत्यादि शीर्षकों का भी उल्लेख किया है। [१८]

अतः इतना कह सकते हैं कि कौशल जी का यह संस्मरण आजादी के बाद उभरे जिन व्यक्तियों ने भारतीय रंगमंच को नई दिशा दी है उन्हें जानने समझने में लेखक की यह महत्त्वपूर्ण कृति पाठकों के लिए निसंदेह सहायक सिद्ध होगी और संस्मरण प्रायः चर्चित रंगकर्मियों से संबंद्ध है या फिर कुछ अफसरों को रेखांकित करते हैं। बेहद रोचक और आकर्षक शैली में लिखे गये इन संस्मरणों को पढ़ते हुए लगता है जैसे घटनाएं दृश्य चित्रों के रूप में बड़ी नाटकीयता से हमारे सामने आकर ग्रहण कर रही हैं। इसके माध्यम से भारतीय विशेष कर हिंदी रंगमंच का चालीस वर्ष का इतिहास एक भिन्न रूप में हमारे सामने प्रस्तुत हुआ है।

10. पदमा सचदेव -

'लता मंगेशकरऐसा कहाँ से लाऊँ :' नाम संस्मरण डोंगरी कवियत्री पद्मा सचदेव जी द्वारा लिखित है। लेखिका ने इस संस्मरण की शुरुआत गालिब की शायरी से की है-

आईना क्यों न दूँ कि तमाशा कहें जिसे।
ऐसा कहाँ से लाऊँ कि तुझसा कहें जिसे।।-

यह शायरी गालिब ने लता जी के कही थी। आज लेखिका के लिए यह सच दिखाई देता है।

इस बार मुंबई मैं जैसे उड़कर गयी। ट्रेन बहुत धीरे चलती रही। मेरे ख्यालों की उड़ान कई बार दीदी के घर की मुंडेर पर जाकर बैठ आयी। आखिर मुंबई पहुंची और एक दिन अपनी सास की इजाजत लेकर पोटली सीन से चिपकाये 'प्रभकुंज' में रह रही उस जादुई रोशनी के घर का द्वार खटखटाने लगी। द्वार पर उनके हाथ से लिखा हुआ था। 'लता मंगेशकर'। हाँ, यही घर होना चाहिए। द्वार एक बेवकूफ से दिखाई देने वाले नौकर ने खोला। बड़े अक्खड़ तरीके से बोला, 'क्या है बाई, किससे मिलना है?' मैंने कहा, 'बाल साहेब से।' वह बोला, 'बाल साहेब अभी सोया है। तुम शाम को आना।' मेरा सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। पाँव जैसे बर्फ में जम गये। तभी वहां से मीना खडिकर निकली। उन्होंने पूछा, 'कोण आहे?' मैंने मनये मेरा अन्तिम चान्स है। आगे बढ़कर कहा-सोचा मन-ही-, 'मैं जम्मू से आयी हूँ। वहां से इन्द गोयल जी ने बाल साहेब के लिए मैसेज भेजा है।'

मीना दीदी ने बड़ी शालीनता से द्वार खोलकर कहा, 'आप अन्दर बैठिए। मैं अभी बाल को जगाती हूँ।'

मैंने भीतर जाकर शुक्रिया अदा किया। थोड़ी देर बार उनींदे से भाई साहेब हाथ में दांत का मंजन मशरी लिये हुए आये, और बैठ गये। वे मेरी तरफ मुखातिब हुए तो मैंने पोटली देते हुए उन्हें कहा, 'मैं जम्मू से आयी हूँ। ये पोटली इन्दर गोयल जी ने भेजी है।' इन्दर गोयल का नाम सुनकर भाई साहब खुश हो गये। फिर पूछा, कैसे हैं इन्दर?

मैंने कहा, वे ठीक हैं। बात खत्म हो चुकी थी, मैंने अपनी आवाज की सारी ऊर्जा लगाकर पूछा, 'क्या मैं कभी दीदी से मिल सकती हूँ?' उन्होंने कहा, 'शाम को कभी फोन करके आ जाइए।' तभी उनके ड्राइंग रूप से एक तरफ कमरे का

दरवाजा खुला। कमरे में जड़ी हुईवत् वे खड़ी थी। भाई साहेब ने बतायासी मूर्ति-, इन्हें इन्दर गोयल ने भेजा है। वह मुस्कुरायी। मैंने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने कहा, मैं रिकार्डिंग पर जा रही हूँ। हृदयनाथ भाई साहेब ने मराठी में ही कहा, ये तुम्हें मिलना चाहती है। दीदी ने मेरी ओर मुस्कुराकर देखा और बोली, "आप शाम को कभी भी फोन कर आ जाइए।" [१९]

चार दशक से अधिक समय हो गया, जब लेखिका मुंबई आयी थी वहां पर स्वरधीरे -साम्रज्ञी लता मंगेशकर जी से लेखिका की मुलाकात हुई थी और धीरे-लेखिका उनके घर आँगन की एक सक्रिय सदस्य ही बन गयी एवं लता मंगेशकर लता जी की रिकॉर्डिंग पर आया जाया करती थीं उनकी दीदी बन गयी। लेखिका लेखिक ा ने लगभग एक हजार रिकॉर्डिंग देखी और सुनी हैं। लेखिका ने लता जी को गानों का परिचय इस संस्मरण में दिया है।

आएगा आने वाला।

आएगा आएगा आएगा।।

यह गाना लेखिका ने तब सुना था जब वह जवानी की दहलीज पर खड़ी थी। लता जी ने बाहर के देशों में भी गाना गाया है। एक बार वह गा रही थीं। लेखिका रेडियो आकाशवाणी में काम करती थी। लेखिका ने मुंबई के माहौल को चित्रित किया है। लेखिका जैसे कि डोंगरी भाषा है उनको लता दीदी से अपनी भाषा में गीत गाना था लता जी ने गाया लेखिका और डोंगरी भाषा के लोग बहुत खुश हुए। लता जी का मानना है कि जितना प्यार और स्नेह हिजड़ों में होता है उतना और किसी रिश्ते में उन्होंने नहीं देखा था। एक दिन हिजड़ों की बातें चल रही थीं। दीदी अचानक खुश होकर कहने लगीं, पद्मा, जो स्नेह, ममता व सेवाभाव - कहीं नहीं देखा। जब हम पैडर रोड के घर में रहने आये हिजड़ों में होता है वो मैंने तो इत्तिफाक से घर के बाहर ही कुत्ते का एक पिल्ला भी साथ आया। माई ने कहा, 'ये शुभ होता है, कुत्ता कई बरस इस घर में रहा फिर मर गया। कुत्ता चला जाता है तो बड़ा दुख होता है।' अब उन्हीं दिनों एक इत्तेफाक हुआ। एक बृहन्नला भी आया और कहने लगा, 'दीदी, मैं आपके पास रहूंगी आपकी सेवा करूंगी।' उसके कहने का ढंग ऐसा था कि मैं ना नहीं कह सकी। वो कितने ही दिन मेरे पास रही। दीदी बता रही थी, उन दिनों रिकार्डिंग रात को हुआ करती थी। मैं रिकार्डिंग करके कभी रात के तीन बजे भी लौटती थी। ये बृहन्नला जागता रहता। मेरे आने पर एकदम

गरमागरम रोटी खिलाता। सारा दिन घर में जो होता उसकी रिपोर्ट देता। वह - औरतों की तरह गाल पर हाथ रखे टांगे पसारे बैठा रहता। रात के अंधेरे में रोशनी की तरह उसकी आवाज आती। मां ने ये कहा, उषा दीदी ने ये कहा, मीना दीदी ने ये किया। फलां आया था, चाय पी, खाना खाया। हंसते हुए दीदी ने बताया। एक दिन कहने लगा, 'दीदी मैं बाहर जाता हूँ लड़के मुझे छेड़ते हैं। दीदी तुम मेरी नजर उतरवा दो, मुझे इन सब लोगों की नजर लग जाएगी।' अब जिस मटक के साथ वह सब्जी लाने घर से निकलता था तो लोग देखते होंगे। उसमें मैं क्या कर सकती थी। उस बृहन्नला की असमय ही मृत्यु हो गयी।[२०]

इस संस्मरण में लेखिका ने लता जी की बहनें मीना जी, उषा जी, आशा जी का चित्रण किया है। लता जी की मां और पिता जी का भी उल्लेख मिलता है। इस संस्मरण में और फिल्मी हस्तियां भी आ गयी हैं। लता जी के पिता के पिता जी के गाने का जिक्र किया है उनकी फिल्मों का जिक्र किया है। पद्मिनी कोल्हापुरी का जिक्र मिलता है। लता जी अपने पिताजी के जाने के बाद उनकी कंपनी को कैसे संभाला उसका भी लेखिका ने जिक्र किया है। जीमोहली .एस., कल्याण जी शंकर जयकिशन, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल, सचिय प्रभाकर माचवे इत्यादि का भी इस संस्मरण में जिक्र मिलता है। लता जी मन्ना डे को अपनी सबसे ज्यादा फैन मानती हैं। लेखिका से लता जी कहती हैं कि "उन्तीस सालों से यहां काम कर रही हूं पर मैं कभी अपने आपके लिए जिन्दा नहीं रही हूँ मैं जिन्दा रही हूं तो गीतों, धुनों और सांजों के लिए।" मुहम्मद रफी साहब, मजरूह साहब, पंचम दा, हेमन्त कुमार जी, हृदयनाथ जी, प्रदीप जी, मराठी कविताम्बे जी, दिनकर जी, सरदार जी, पंनरेंद्र शर्मा ., नवभारत टाइम्स के अधिकारी का भी चित्रण किया गया है। लेखिका को जब भी मौका मिलता लता जी के घर या स्टूडियो चली जाती या हर रोज उनके साथ ही रहती।

गवर्नर साहब, प्रेस कॉफ्रेंस साबरमती का भी लेखिका ने जिक्र किया है। अंततरू लेखिका ने लता जी को मिले सम्मान, पत्र इत्यादि का भी चित्रण किया है इस पुस्तक के अंत में लता जी की कुछ तस्वीरें, उनके पिता जी की तस्वीरें और लता जी से जुड़े लोगों की तस्वीरें दी हुई है।

लेखिका ने बड़ी सुंदर ढंग से इस संस्मरण को शुरू करके अंत किया। मैं काले पानी या अंडमान गयी थी। तो सावरकरी की कोठरी के सामने खड़ी होकर

सोचती रही थीयहां वह कैसे रहते होंगे। पर वह लेखक थे-, कवि थे, यह मैं नहीं जानती थी। बड़ी दीदी ने बताया, पद्मा, वीर सावरकर की कविता मैंने गायी थी। उस समय वह काले पानी से लौटकर घर आ चुके थे। तब हर रोज शाम को मैं, माई, हृदयनाथ, उषा, मीना उनके घर उन्हें मिलने जाते थे। वीर सावरकर को एक स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में ही सब जानते हैं। उनका लेखक होना ज्यादा लोग नहीं जानते। उन्होंने अपनी आत्मकथा भी लिखी है। उसका नाम है 'माझी जन्मठेप' उसका हिंदी में भी अनुवाद छपा है, तू पढ़ना। उसमें काले पानी का उनका इतिहास वहां कैसे रहे, कैसे रखे गये, कैसे अत्याचार हुए, वह सबकुछ लिखा हुआ है।[२१] और लता जी के साथ बिताई घटनाओं को चित्रित किया है इन मोतियों को भलीभांति पिरोया है। इसकी भाषा सरल और रोचक है।

प्रस्तुत संस्मरण 'इन बिन' डोंगरी भाषा की सुप्रसिद्ध लेखिका पद्मा सचदेव जी द्वारा लिखित है। इस संस्मरण में उन्होंने किसी प्रभावशाली व्यक्तित्व को केंद्र में न रखकर अपने घर के सभी काम करने वाले, जन सामान्य कहलाने वाले नौकर, चाकरों का वर्णन किया है। प्राचीन काल में एक प्रथा सी चली आई थी कि एक ही नौकरी एक ही घर की कई पीढ़ियों की सेवा करती है और बचपन से लेकर बुढ़ापे तक यदि कोई व्यक्ति एक ही घर में रहता था तो वो वहां का सदस्य हो जाता है यही कारण था कि ये नौकर जब बुजुर्ग हो जाते थे तो घर के मामलों में सलाह भी देने लगते थे। धनी लोगों की यह मानसिकता है इनके बिना घर गृहस्थी चला पाना कठिन ही नहीं असंभव भी है। इस संस्मरण में पद्मा सचदेव जी अपने घर में काम करने वाले उन सभी नौकरों का वर्णन किया है जिन्होंने भले ही कुछ समय के लिए या अधिक समय के लिए उनके घर में काम किया। पद्मा जी ने अपने जीवन में शायद इस बात को महसूस कर लिया था कि बिना नौकरों के गुजारा नहीं हो पाएगा, इसलिए संस्मरण का शीर्षक बड़ा सार्थक प्रतीत होता है 'इन बीन' अर्थात नौकरों के बिना।

लेखिका का तीसरा घरेलू कर्मचारी उनकी ससुराल का था। उसका नाम निक्कू था। लेखिका का मानना है कि उसका नाम शायद उनकी ससुराल में ही पड़ा होगा। जब निक्कू घर में आता पहले कुछ खाता नहीं बिना काम करके खाने को हराम का खाना समझता था। इसलिए काम करके ही खाता था। घर को पूरी तरह से संभाल रखा था। लेखिका की सास से शिकायत करता कि मेरी शादी क्यों

नहीं करवा देती मेरी बीवी आयेगी आपकी सेवा करेगी। आपकी बहुएँ तो घर में टिकती ही नहीं। निक्कू की भी कहानी बहुत दिलचस्प थी। जब निक्कू छोटा था तब दूसरे महायुद्ध के समय की बात वह पर्दा खींचने का काम करता था कहता 'जब मैं पर्दा खींचता तब मैं नाचती थी।' उससे जो पैसा मिलता गांव में भेजता वह नौ साल का था तभी उसकी शादी हो गयी थी। गांव वालों को लगा कि वह अब लौट कर नहीं आयेगा। निक्कू की पत्नी को उसके भाई ने रख लिया था और जो पैसे यह भेजता उससे एश करता। वह भाग कर दिल्ली आ गया और तभी से वह वहां पर काम करता था। उसको गुस्सा आये तो सबको धोबी बोलता था।

लेखिका की ससुराल में दूसरी घर संभालने वाली आ गयी थी घर संभालती घर का सारा काम करती और लेखिका की सास से दिन भर बातें करती रहती थीं। एक और आती थी आँगन साफ करने के लिए। वह आंगन क्या साफ करती कूड़ा उठा कर चली देती वह कभी सुनती ही नहीं थी। एक दिन जब वह अंदर आयी तो लेखिका ने मुख्य द्वार पर ताला लगा दिया ताला देख वह भड़क गयी। लेखिका बोली 'जब तुम आंगन चमकाओगी तभी ताला खुलेगा' उसे बहुत बुरा लगा फिर बाद में आँगन धोया।

जब लेखिका मुंबई आ गई वहां पर बर्तन धोने वाली रखी लेखिका ने देखा वह थाली में थूक कर बर्तन साफ कर रही है। लेखिका कुछ बोली नही वहां पर खड़ी हो गयी बर्तन वाली बोली क्या है बाई मैं तो ऐसे इच साफ करती तुमको चाहिए तो बोलो नहीं तो मैं जाती उसके बाद लेखिका ने बर्तन वाली नहीं रखी।

लेखिका जब सायन में गयी वहाँ पर उन्होंने मरियन नाम की कर्मचारी रखी थी जो घर अच्छे से संभाल कर रखती। लेखिका आकाशवाणी चली जाती और वह घर का ख्याल रखती। उसकी सास का पूरी तरह से ख्याल रखती उसने लेखिका का मन मोह लिया था, पर उसका साथ ज्यादा समय तक नहीं रहा। लेखिका ने अल्टामाउन्ट रोड पर मकान ले लिया। मरियल वहीं रह गयी। वहां पर अपनी सास की देखभाल के लिए एक गणेश नाम का लड़का रखा। वह लड़की से प्यार करने लगा था। लेखिका ने सोचा चलो अच्छा हुआ काम छोड़कर नहीं जायेगा पर उल्टा होने लगा लेखिका के घर से चीजें गायब होने लगीं तब लेखिका ने उसको घर से निकाल दिया था। ऐसे कई वाकयों के बीच लेखिका घिरी हुई है। मुंबई में ऐसे कई कर्मचारियों को रखा और कुछ-कुछ वजह से उन्हें निकालना पड़ता। जब

लेखिका की बेटी हुई थी तो उस समय भी लेखिका ने अपनी बेटी के साथ खेलने के लिए एक लड़की रखी थी। लेखिका का उस लड़की के साथ सफर अच्छा था। वह दिल्ली चली आयी वहां पर भी प्रताप नाम का कर्मचारी रखा। प्रताप अपने हिसाब से घर चलाता। दरअसल लेखिका का स्वास्थ्य सही नहीं था उसकी वजह से प्रताप का पूरे घर पर राज था।

इसी तरह जितने भी घरेलू कर्मचारी आए थे। सबकी कहानी अलगअलग - कुछ-होती कुछ बर्दाश्त करने वाली नहीं होती थी। एक और काम करने वाली आकरजाकर काम करती थी उसका नाम चमेली था। वह काम अच्छे से करती - पर आते ही बोलना शुरू करती और जाने तक बोलती ही रहती। लेखिका की सकी शादी होने वाली थी लेखिका बोलीमजबूरी थी सुनना ही पड़ता। उ'चमेली तुम्हारे घर बथेरा में भी काम होगा', और नहीं तो क्या बीजी मैं तो एक ही काम करूंगी। चाहे घर का काम करवा लो चाहे बाहर का। शादी करूँगी, बंधुआ मजदूर नहीं। लेखिका बोली 'वाह चमेली तू तो औरतों का जीवन सुधार देगी।' ऐसे ही कई संवाद हैं जिससे उनकी मानसिकता पता चलती है।

इस प्रकार पद्मा सचदेव का संस्मरण जहां एक ओर नौकरों की मानसिकता को दर्शाता है वहीं दूसरी ओर समाज के अनेक पहलुओं को भी खोलता चलता है। नारी पुरुष का आकर्षक और शारीरिक संबंधों को अनैतिक ढंग से किस प्रकार अंजाम दिया जाता है इसका खुला चित्रण इसमें प्राप्त होता है। नारी को सहारा बिना स्वार्थ लोलुपता के हासिल नहीं होता, कहीं न कहीं यह भी दृश्य उजागर होता है। घर के बाहर कामकाजी महिलाएं नौकरों पर अपनी निर्भरता यदि न बनाएं तो कार्य करने की सामंजस्यता में बाधा पड़ने की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए पद्मा सचदेव जी का यह संस्मरण 'इन बिन' समाज के अभिजात्य वर्ग की यथार्थता का बोध कराता है एवं नौकरों के जीवन की गिरोह को भी साथ ही साथ खोलता चलता है।

11. पांडेय बेचेन शर्मा उग्र -

पं. डॉ बेचेन शर्मा उग्र का परिशिष्ट नामक संस्मरण भवदेव पाण्डेय जी ने उग्र का परिशिष्ट नाम से संस्मरण के दो खण्ड निकाले हैं जिसमें से प्रथम खण्ड के अंतर्गत मतवाला और उग्र का अतः संदर्भ काशी चेतना का महाभाष्य तथा

गंगा माता के शीर्षक से अपनी यादों को समेटा है। खण्ड दो में इनकी असंकलित रचनाएं हैं जिसके अंतर्गत कहानियां, लेख, संपादकीय एवं पत्र साहित्य शामिल हैं। हमारे इस शोध कार्य के लिए इनका प्रथम खण्ड उपयोगी है, जिसके अंतर्गत इन्होंने संस्मरण के केन्द्र में मतवाला जैसे शीर्षक को रखा है। इसमें इन्होंने आस-पास के समाज को चित्रित किया है। इस संस्मरण का अधिकांश भाग तर्कपूर्ण तथ्यों के साथ अपनी बात को कहने का दावा करता है और प्रमाणित भी हुआ है। वैसे तो उग्र का स्वभाव काफी खुलापन लिए हुए है लेकिन यह भी सच है कि मनुष्य कितना भी खुल जाय, कोई न कोई हिस्सा गोपनीय रखता है। ठीक इसी बात को ध्यान में रखते हुए भवदेव पाण्डेय जी ने उनके आंतरिक गोपनीय पहुलओं को भी उजागर किया है।

'मतवाला-काल' के उम्रदराज और दर्शक (प्रतिभाशाली) साहित्यकारों का पांडेय बेचेन शर्मा 'उग्र' और बाबू महादेव प्रसाद सेठ (मतवाला) से अप्रसन्न रहना अकारण नहीं था। 'मतवाला' में दूसरी बार आने के बाद उग्र 'मतवाला' के बीस पृष्ठों पर बेतरह छा गये। नाम और छद्म नाम दोनों तरीकों से 'मतवाला' के विकल्प बन गये। महादेव प्रसाद सेठ का भी कहना था, बका का नाम कोई भूलकर नहीं लेता, तेरे तरीके ने चैंका दिया जमाने को। उग्र के कारण मतवाला बलंद पर्वाज हो गया। 'मतवाला' और 'उग्र' एक दूसरे के विकल्प बन गये। वे अकेले ही 'मतवाला' को 'मत' वाला बनाने का संघर्ष करने लगे। इसके कई कारण थे। मुख्य कारण तो यह था कि उस अवधि में शिवपूजन सहाय 'मतवाला' को छोड़कर 'माधुरी' (लखनऊ) में चले गये थे। इसी अवधि में 'भावों की भिड़न्त' से और नये-नये अगम्भीर लेखक 'उग्र' को बाबू महादेव प्रसाद सेठ द्वारा दिये जाने वाला अतिसम्मान से 'निराला' भी आहत थे। 27 सितम्बर, 1924 को 'मतवाला' के मुखपृष्ठ पर उनकी आखिरी कविता छपी, 'दीन' शीर्षक से। यह कविता एक ऐसा दस्तावेज है, जिसमें उनके प्रति महादेव प्रसाद सेठ की अन्यमनस्कता और 'उग्र' की अपेक्षा से अधिक खातिरदारी के कारण उनकी मानसिक अशान्ति सतर-ब-सतर लिखी हुई है। जब यह कविता उनके काव्य-संकलन 'परिमल' में संकलित की गयी तो मूल (मतवालाः 27 सितम्बर, 1924रू मुखपृष्ठ) की दो पंक्तियां बदल दी गयीं, मिसाल के तौर पर 'दिवस का यही मधुर

उत्थान।' को बदलकर 'दिवस का अरुणादेय उत्थान।' तथा 'दिवस का कर्मकुटिल - अश्रान्ति' के स्थान पर 'दिवस का कर्म कुटिलतमभ्रांति-' कर दिया।[२२]

इस संस्मरण को इसलिए विशिष्ट कहा जा सकता है क्योंकि इसमें मतवाला मंडल के अंत संघर्षों को उजागर किया गया है। उग्र जी उल्टीगंगा बहाने में माहिर थे ठीक वैसे ही जैसे तुलसीदास ने कहा है उल्टा नाम जप्त जग माहीसमाना।-

'उग्र' जी ने केवल लेखक कार्य ही नहीं किया वह दो बार जेल भी गये हैं और यह जल राष्ट्रीय तीर्थ यात्रा के समान था जिसे उन्होंने अपनी यात्रा वृतांत में लिख दिया है। लेखक ने उग्र जी के साथसाथ जेल जाने वाले अन्य लेखकों की - काफी चर्चा की है और उग्र जी के लेखक की काफी चर्चा रही और लेखक का ऐसा मानना है कि वे केवल अंग्रेजी के लिए चुभन का कारण नहीं थे लेकिन निराला के लिए भी यह किरकिरी बने। प्रथम खण्ड के प्रथम अध्याय की समाप्ति में लेखक ने बताया है कि उनका आत्मकथात्मक उपन्यास फागुन के दिन चार और उनके अंतिम उपन्यास को पढ़ा जाना आवश्यक है।

दूसरे अध्याय में उन्होंने इसी आत्मकथात्मक उपन्यास को चित्रित किया है और तीसरे अध्याय में अंतिम उपन्यास 'गंगामाता को'। इस प्रकार आत्मकथा और उपन्यास में 'उग्र' जी ने हर उस महत्त्वपूर्ण बात का चित्रण किया है। जिसे पढ़कर उनके लेखकीय व्यक्तित्व के बारे में जाना जा सकता है। ऐसी कोई हिंदी साहित्य की विधा नहीं है जिस पर उन्होंने कलम नहीं चलाई।

12. राजेन्द्र जोशी -

'नंदबाबा फकीर से वजीर' शीर्षक से एक संस्मरण सन् 2010 ईमें आया . जिसे राजेंद्र जोशी जी ने संपादित किया है। इनके अंतर्गत वैरागी जी के विराट व्यक्तित्व का दिग्विजय सिंह से लेकर नामी गिरामी लेखकों ने भी अपने रिश्ते के जुड़ाव को पात्र प्रस्तुत किया है। यह संस्मरण उपयोगी इसलिए बन पड़ा है क्योंकि नंदाबाबा अर्थात बाल कवि वैरागी जी जिन्होंने अपना जीवन लोककथा के नायक सा जिया है। उन्हें पाठक कवि के रूप में राजनीतिक एवं समाजसेवी के रूप में केवल जान सके हैं इसलिए उनके बचपन और किशोरावस्था को समाज तक पहुंचाने में उनके साहित्यिक एवं राजनीतिक मित्रों ने मदद की। इस संस्मरण का आरंभ साहित्य केन्द्र और पहली मुलाकात से होता है। जिसके अंतर्गत यह बताया गया है कि पहली बार कवि सम्मेलन के मंच पर वैरागी जी आये थे तब लेखक

नौकरी की तलाश में भोपाल आये थे। सन् 1963 में उन्होंने अपना गांव छोड़ा और भोपाल के मंच से जुड़ गये। चीन, पाकिस्तान, भारत का युद्ध इन्हीं दशकों मंे हुआ था। राष्ट्रीय प्रेम की भावना को जागृत करने के लिए जगहजगह कवि सम्मेलन - आयोजित किया जाता था। राजेन्द्र जोशी जी ने पहली बार बाल कवि जी को सम्मेलन में सुना तो बहुत प्रभावित हुए उन दिनों इन्हें मालवीय के रूप में पहचाना जाता था।

मैं आश्चर्यचकित था कि पूर्व में एकदो बार कवि सम्मेलन के मंच-ोंं पर यूं ही मामूली तौर पर हैलोहाय होती रही थी-, किंतु मुझ जैसे अदने से कवि-लेखक तक को आमंत्रण भेजकर उन्होंने अपने और नजदीक पहुंचने की मुझमें का पहला अवसर हिम्मत बढ़ा दी थी। वह श्री बैरागी से मुलाकात का मेरे जीवन था। उसके बाद विधानसभा के इसी कार्यकाल में वे श्यामचरण शुक्ल मंत्रिमंडल में राज्यमंत्री बने तो उन्हें सूचना तथा प्रकाशन विभाग का उत्तरदायित्व मिला। मुझे सन् 1964 में सूचना प्रकाशन विभाग में नौकरी मिली थी। मेरे लिए यह एक सुखद संयोग था कि श्री बैरागी को यही विभाग मिला। मुझ पर उनका स्नेह बढ़ता चला गया। जब श्री बैरागी को राज्य मंत्री के रूप में भोपाल में शाहजहांनाबाद क्षेत्र का पुतलीघर बंगला आवंटित हुआ तो उन्होंने मुझे किराए का मकान छुड़वाकर पुतलीघर बंगले के परिसर में ही रिक्त पड़े एक मकान में निवास करने के लिए बुला लिया और मेरे परिवार को श्री बैरागी और आदरणीय भाभी सुशील चंद्रिकाजी का तब तक संरक्षण मिलता रहा जब तक वे मंत्री पद पर भोपाल में रहे। तीन वर्ष की अवधि मेरे जीवन के शुरुआती दौर की महत्त्वपूर्ण अवधि थी, जिसमें बैरागीजी के सान्निध्य से मुझे कला, साहित्य संस्कृति, फिल्म और राजनीति के विशिष्ट महानुभावों के संपर्क में आने का अवसर मिलता रहा। इस अवधि में मुझे लेखन के अपने क्षेत्र में निरंतर आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा मिलती रही और प्रोत्साहन भी मिलता रहा। बाद में वे राजनीति से जुड़ गये और जनता के समक्ष कविता पढ़ना, भाषण देना और इनके अद्भुत शैली के प्रभाव से लोगों का भावविभोर हो उठना। इनके कवि होने की धारणा प्रतिष्ठित करती है उनके मन में कांग्रेस पार्टी के प्रति सम्मान था। लेखक और बैरागी जी कवि सम्मेलन के मंच पर मिलते रहे लेकिन बाद में वह विधानसभा क्षेत्र से कांग्रेस के उम्मीदवार के रूप में चयनित हेकर आये थे 1967 ई. की घटना है मंचों पर

मुलाकात कई बार हुई लेकिन धीरे-धीरे बैरागी जी विजय हासिल करते-करते मुख्यमंत्री पद पर जो बैठे उसके बाद उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ाई कि धीरे-धीरे सभी कवियों को जोड़कर समारोह करने लगे। उनका निवास स्थान साहित्यिक केंद्र बनता चला गया और चूंकि सारी गतिविधियाँ भोपाल में हो रही थीं इसलिए संपादक उनसे जुड़ते चले गये। मंत्री पद का कवि मन पर हावी नहीं होने देकर अपनी लगन ईमानदारी और निष्ठा को आंच नहीं आने दी। ग्रामीणों के प्रश्न तथा सरकारी विभागों की समस्याएं सभी का निवारण वह कर दिया करते थे। वह अपने आपको मंत्री, कवि, साहित्यकार मानने में फक्र महसूस करते थे। भोपाल में खूब चर्चा थी क्योंकि उन्होंने अपने सहकारी विभाग से सभी साहित्यकारों को जोड़ने का कार्य किया था। सूचना प्रकाशन विभाग की प्रसिद्धि इसलिए भी थी क्योंकि इस विभाग में मंत्री बैरागी जी थे और उनसे जुड़ने वाले लोग बड़ेबड़े कवि-लेखक एवं राजनेता थे। राजनेता के अलावा राष्ट्रकवि भी बैरागी जी के घर मेहमान बनकर रहे बैरागी जी जब तक अपने बंगलों में रहे वहां कला साहित्य, संस्कृति और फिल्म जगत से जुडी महान् हस्तियां सदैव आती रहीं।

राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर जब भोपाल आये तो दस बारह दिन बैरागी जी के मेहमान बनकर रहे। बैरागी ने संपादक का परिचय दिनकर जी से करवाया। संपादक अपनी खुशनसीबी मानते हैं कि बैरागी जी से जुड़कर साहित्य से जुड़कर दिनकर जी से मिलने का अवसर प्राप्त किया है।

मुझे दिनकर जी जैसे महान् कवि के सम्मान में बैरागी निवास पर एक ऐसी गोष्ठी आयोजित करने का अवसर मिला, जिसमें भोपाल की नई-पुरानी पीढ़ी के कवि और शायर एकत्रित हुए थे। डॉ. चन्द्रप्रकाश वर्मा, दुष्यंत कुमार, अनिल कुमार, शेरी भोपाली, जीवनलाल वर्मा 'विद्रोह' , राजेन्द्र अनुरागी, भीष्मसिंह चैहान, अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव जो भाषा विभाग और सूचना-प्रकाशन विभाग में कार्यरत थे। दिनकर जी की गरिमामयी उपस्थिति से भोपाल के ये सभी कवि और शायर अत्यंत प्रसन्न थे। वे सभी बार-बार बैरागी जी को धन्यवाद दे रहे थे, क्योंकि बैरागी जी के माध्यम से सब लोगों को राष्ट्रकवि से मिलने का सुखद संयोग जो मिला था। जितने भी दिन दिनकर जी भोपाल में रहे, बैरागी जी प्रात उठकर सबसे पहले उनका अभिवादन करते और पूछते दादा आपको कोई तकलीफ तो नहीं। दादा तुरंत मेरी ओर देखकर हंसते हुए कहते-बैरागी, हमें क्यों और कैसे तकलीफ

हो सकती है। जब राजेन्द्र जैसे दिलदार कवि को तुमने मेरे साथ लगा दिया है। बैरागी जी ने मुझसे कहा- राजेन्द्र तुमने दादा को पूरा भोपाल घुमाया कि नहीं? जब मैंने कहा कि आज हमारा यही कार्यक्रम है, बैरागी जी बोले- वो हीरो भी आता ही होगा, उसे भी साथ ले जाना। दिनकर जी ने पूछा यहां कौन हीरो आने वाला है भई! तभी बैरागी जी ने कहा कि जब आएगा दादा तो आपको पता चल जाएगा। थोड़ी ही देर बार वहां बैरागी जी का हीरो सामने था। दिनकर जी बोल पड़े अरे, यह तो दुष्यंत है। बैरागी जी बोले हमारा यह सुंदर-सा कवि हीरो से कम है क्या? दिनकर जी भी कम मजाकिया नही थे, उन्होंने दुष्यंत की तरफ देखकर कहा-हीरो कमिंग विदाउट हीरोइन। एक ठहाका लगा और आनंद का एक अच्छा-खासा माहौल बन गया। बैरागी जी ने हमसे कहा-तुम दोनों दिनकर जी को आज शहर घुमा लाओ। हम तीनों जैसे ही गाड़ी में बैठे, दुष्यंत जी ने कहा दादा यहां एक टाकीज है-रंगमहल। उसमें एक नई फिल्म आई है-चलो आज उसका मेटिनी शो अपन लोग देख लें। दिनकर जी ने कहा अरे भाई मुझे फिल्म देखने का ज्यादा शौक नहीं है। उसका स्वभाव उतना ही सरल होता है इसके उपरांत मन्ना को सदैव संरक्षक माना। अपने मित्रों के प्रति विशेष सहिष्णुता दिखाई।[२३]

बैरागी जी ने उत्तर प्रदेश में संबंधित जिले के कलेक्टर के माध्यम से दुष्यंत जी को ढुँढवाकर भोपाल बुलवाया। दुष्यंत कुमार को लगा आखिर क्या माजरा है कि उन्हें प्रशासन के माध्यम से ढूंढकर सरकार ने भोपाल बुलवाया है। आखिरकार दुष्यंत जी को भोपाल आना ही पड़ा। भोपाल आकर उन्हें जानकारी मिली कि उनके पक्ष में शासन ने निर्णय ले लिया है और उन्हें तत्काल पदभार ग्रहण करने की आदेश की प्रति दी जानी है। दुष्यंत कुमार समझ गए कि यह विभाग के नए मंत्री बैरागी जी का चमत्कार है वे फौरन बैरागी जी के पास गए और तमतमाते हुए बोले-बैरागी जी मुझ पर कोई एहसान जताने के लिए तो यह आदेश जारी नहीं कराया गया है? यदि ऐसा है तो संभालो अपने इस आदेश को, मैं तो ये चला। श्री बैरागी ने उनसे साफसाफ कहा दुष्यंत जी इसके पीछे एहसान जताने जैसी - यह तो आपका अधिकार था बात नहीं है।, जो आपको मिल रहा है। उन दिनों साहित्यजगत और प्र-शासनिक क्षेत्र में खूब चर्चाएं रहीं कि मित्रों के प्रति बैरागी जी के संयोगात्मक रूख की वजह से दुष्यंत कुमार पुनः सम्मान अपनी ड्यूटी पर लौट आए।

पुतलीधर बंगले में निवास के दौरान एक और वाकया हुआ, जिसका मैं प्रत्यक्ष गवाह हूँ विख्यात गीतकार पंडित अनंदी सहाय शुक्ल और उनका परिवार बैरागी जी का मेहमान बनकर रहा। अनंदी सहाय परिवार के लिए पुतलीधर बंगला एक ऐसा माध्यम भी बना, जहां रहते हुए उनकी बड़ी बेटी आशा का विवाह होशांगाबाद निवासी विख्यात कवि श्री सुरेश उपाध्याय के साथ संपन्न हुआ। श्री बैरागी जी और मान बाबू की पहल से ही यह वैवाहिक बंधन संभव हो सका। उन दिनों श्री बैरागी के सान्निध्य से अपने ऊपर घिरे संकटों से शुक्ल परिवार को मुक्ति की राह मिली। [२४]

लेखक ने त्यागपत्र दिया जिस पर बैरागी जी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। क्रिया, प्रतिक्रिया, और अभिव्यक्ति के अंतर्गत सत्ता और संगठनों का चित्रण किया है। भोपाल का दूसरा प्रभाव सन् 1980 में इसका परिदृश्य एक दम बदल गया। पुरातन पीढ़ी के लोगों और नई पीढ़ी के लोगों के बीच वैरागी जी अपने आय को बड़ी सफलता से एडजस्ट कर लेते हैं। इसके उपरांत संपादक जी ने डायरी में आत्मकथा, यादों का सफर खुले अतीत के भाव, प्रधान पृष्ठ, आत्मीय रिश्ते, पारिवारिक और सामाजिक अंतरंग बातचीत तथा साक्षात्कार विधि इसके बाद पत्र साहित्य आदि को शामिल किया है। इन सबसे वैरागी जी को पढ़कर पाठक अच्छी तरह से संभाल तो लेगा लेकिन मेरे विषय से ये सभी सीधे संबंधित नहीं हैं।

इस संस्मरण का दूसरा हिस्सा महापुरुषों से जुड़ा हुआ है जिन्होंने देश के लिए कार्य किया और बैरागी जी को अपना मित्र माना है। इन संस्मरण की उपयोगिता यह है कि जो पाठक समाज से प्रेम करते हैं या शासन से प्रेम करते हैं उन्हें ये पढ़कर ऐसा लगेगा कि मानो एक ही पुस्तककार रूप में उन्हें राजनेता तथा साहित्यकार प्राप्त हुए।

13. रामशरण जोशी -

रामशरण जोशी का संस्मरण 'अपनों के पास अपनों से दूर' कल्याणी शिक्षा परिषद नई दिल्ली द्वारा 2010 ई. में प्रकाशित हुआ है। लेखक का वरिष्ठ पत्रकार एवं समाज विज्ञानी है। पत्रकार होने के नाते उनको भारत एवं दूर दराज देशों की भी यात्रा करनी पड़ती है। इस संस्मरण के अंतर्गत यात्राओं पर आधारित अपने अनुभवों को कैनवास पर उतारा है। लेखक अलग-अलग देशों में गए और उन-उन

देशों को शीर्षार्थ किया है। 'पाकिस्तानः 1987 अपनों के पास, अपनों से दूर' शीर्षक से स्मृतिबद्ध किया है। उसके अंतर्गत कई शीर्षक दिए हैं। 'अपने ही विरुद्ध हिंसा में लगे लोग' इस शीर्षक से लेखक ने भारत और पाकिस्तान के रिश्तों को उजागर किया है। उनके बीच युद्ध को भी चित्रित किया है। दोनों शहरों में जगह-जगह सुरक्षा के टापू बने हुए थे। हर बड़ी बिल्डिंग और होटल के गेट पर किलों का अंदाज लगाने के लिए -हथियारबंद तैनाती। पाकिस्तानी शहरों के सुरथा दिल्ली, चंडीगढ़, अमृतसर, जालंधर आदि शहरों की तस्वीर आंखों में उतारी जा सकती है। अतिरंजना न कहें तो नई दिल्ली व इस्लामाबाद के साथसाथ काबुल -और कोलंबो भी इस नियति की गिरफ्त में मिले। इस वर्ष मुझे अफगानिस्तान से लेकर पाकिस्तान, हिंदुस्तान और श्रीलंका में जातीय संघर्ष और आतंकवाद एक 'युगधर्म' के रूप में उभरते हुए दिखाई देते हैं।

पाकिस्तान में जहाँ भी गया, जिससे भी मिला, जातीय तनाव और आतंकवाद भारत के बोफोर्स व फेयरफैक्स की तर्ज पर बातचीत का मुद्दा बनते रहे। लोगों ने इनके संबंध में एक संजीदा रुख भी दिखाया और हल्के-फुल्के ढंग से इसे उड़ा भी दिया। ज्यादातर इन तनावों और आंतक से परेशान थे। उनकी मनोदशा को जातीय संघर्ष या आतंक को एक 'फोबिया' या 'ऑबेसेशेंस' कहकर खारिज नहीं किया जा सकता। भारत में खालिस्तानी आतंक, श्रीलंका में तमिल चीतों का आतंक और अफगानिस्तान में मुजाहिदीन का आतंक एक 'हकीकत' माने जाते हैं। पाकिस्तान में भी सिंधी-पंजाबी, पंजाबी-मुहाजिर, अल्पसंख्यक मुस्लिम वर्ग अहमदिया व कादियानी, बहुसंख्य सुन्नी व शिया मुसलमान, बिहारी मुसलमान, मुहाजिर व अन्य मुसलमान, अफगानी मुजाहिदीन शरणार्थी, स्थानीय जनता, पठान व पंजाबी-सिंधी व मुहाजिर जैसे जातीय अंतर्विरोध और संघर्ष आज के पाकिस्तान की एक 'ऐतिहासिक सच्चाई' है। लाहौर से कराची तक इसके प्रभाव स्पष्ट दिखाई दिए। इसी प्रकार कई शीर्षक दिए हैं। 'वे आधे-अधूरे सचों के सहारे चल रहे हैं' भारत और पाकिस्तान के बीच रिश्तों को उजागर किया है। जो पाकिस्तान में दंगे होते हैं उनको लगता है ये दंगे भारत करवा रहा है।

लाहौर में मंदिर भी है। यह सही है कि वे अच्छी हालत में नहीं हैं, टूट चुके हैं। मरम्मत की व्यवस्था नहीं है, परंतु सरकार ने उनकी सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी है। कहाँ नहीं मिल जाएंगे रामजन्मभूमि और बाबरी मस्जिद के अंधे -

जेहादी? ग्रंथ भी रखे गए हैं। लाहौर में हिंदू भी रहते हैं, परंतु बहुत कम संख्या में सरकारी दफ्तरों में काम करते हैं। यह जानकारी मुसलमानों के अलावा कराची में हिंदुओं ने दी। रावलपिंडी में भी दिखाई दिए। यह भी पता चला कि कुछ मुस्लिम परिवार मंदिरों में रहते हैं, परंतु उन्होंने मूर्ति के स्थान को यथावत रखा है, एकदो - वार दीपक तक जलाते हैं।परि

कराची में हिंदुओं के कई मंदिर और बस्तियां हैं सिंध में स्थिति बिल्कुल अलग है। कराची की एक हिंदू बस्ती में जाने का अवसर मिला। कराची मे बसे इंदौर के एक मुस्लिम परिवार के सहयोग से मंदिर में भी गया। इंदौर के युवा नेता अनवर की भानजी और उनके पति कादरी पुरानी कराची स्थित सिंधी हिंदुओं की एक बस्ती में भी ले गए। एक हिंदू परिवार से बातचीत कराई। एक शिक्षित युवती उषा ने निःसंकोच पहला आरोप दागा, 'भारत से हमें बहुत शिकायत है।' संभलते हुए मैंने पूछा, किस तरह की शिकायत?

आप लोगों का कोई धर्म नहीं है। आपकी सरकार नास्तिक है तने हुए तेवरों से उषा बोली। 'भारत में अनेक धर्मों को मानने वाले रहते हैं। एक धर्मनिरपेक्ष राज्य भारत में है, और हमें इस बात का गर्व है।' मेरा जवाब था। इस आधे अधूरे-सच से उनकी जिन्दगी चल रही है। 'वैसा नहीं है जैसा कहा जाता है लेखक ने इस शीर्षक से यह बताया है कि लगता है पाकिस्तान में हिन्दू धर्म को जगह नहीं है पर ऐसा नही है वहां पर भी मंदिर हैं और कुछ मंदिरों में मुसलमान देखरेख करते हैं।' मौलवियों की जमात भी रोक सकेगी औरतों की आजादी इस शीर्षक से लेखक ने हिंदुस्तान और पाकिस्तान की औरतों का चित्रण किया है और कहते हैं दोनों देशों में औरतों की हालत अजीबो गरीब है। [२५]

कट्टरपंथियों के लिए औरत अपने ढंग की एक उपभोग वस्तु है। किश्वर नाहीद, आसमां जहांगीर, हिना जिलानी जैसी महिलाओं ने हर स्तर पर औरत की 'उपभोगवादी छवि' तोड़ने की चुनौती स्वीकार की है। लेखक के साथ विस्तार से बातचीत करते हुए नाहीद ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश की यादों से गुजरते हुए बताया कि उनके माता-पिता ने पांच साल की उम्र में ही उन्हें बुर्के में ढक दिया था और पाकिस्तान में एम.ए. तक बुर्का ओढ़े रखा। 'जब मेरे लव अफेयर का पता माता-पिता को चला तो आधा घंटे में मेरा निकाह करा दिया गया।' जब पहली दफे किसी पत्रिका में मेरी फोटो छपी तो घर में कोहराम मच गया। औरतों का शायरा

या अदीब होना, औरतें राजनेता हैं, अफसर हैं, वकील हैं, कलाकार हैं पाकिस्तान में औरतों की आजादी का दौर शुरू हो चुका है। उसे रोका नहीं जा सकता। मौलवियों की जमात भी उसे नहीं रोक सकेगी। पाकिस्तानी अदब में औरतों की बेदारी लिखी जा रही है। औरतों में आर्थिक मुक्ति के साथसाथ चेतना भी बढ़ेगी। मैं तो यह -
-कहूंगी कि समाज को पूरी तरह से आजाद करने के लिए यह जरूरी है कि स्त्री पुरुषों का पूरा नजरिया बदला जाए। सिर्फ वर्गहीन समाज की बात करने से काम नहीं चलेगा, बल्कि लिंगमानसिकता से भी मुक्त होने की जरूरत है। मैं रूस और -
चीन में देख चुकी हूँ समाजवादी समाजों में भी मर्द औरतों को समान स्तर पर रखना पसंद नहीं करता। कभी सोचा है, इस्लाम हो या हिंदू धर्म या दर्शन, कोई पूरी तरह से मुकम्मल नहीं है क्योंकि हर मजहब और दर्शन के मर्दों में अपनी पचास फीसदी आबादी को ध्यान में रखकर उसे लिखा है। औरतों के वजूद को बिल्कुल नकार दिया गया है। आज पाकिस्तान की औरतें अपने इस वजूद की लड़ाई लड़ रही हैं। हिना और आसमां ने इस जंग को कानून की जमीन पर शुरू कर रखा है। सरकारी और मजहबी अदालतों में औरतों को इंसाफ दिलाना दोनों बहनों का एक 'मिशन' है। इनकी मुख्य चिंता अभिजात वर्ग की महिलाएं नहीं हैं, निम्नमध्यम वर्ग की खुरदरी जमीन पर चारों तरफ की मार बर्दाश्त करती तथा -
मोटे बुर्के के अंदर ही अपनी दुनिया जीती औरतें हैं। जब मैं पहुंचा, दोनों बहनें लाहौर के गाँवों की औरतों से घिरी हुई थीं। ये औरतें अपने पति, परिवार वालों, पुलिस मौलवियों और अदालत के कारण जेलजीवन का शिकार भी हो चुकी हैं। -
न्याय इन औरतों को मिले, दोनों बहनों ने इसकी मुहिम चला रखी है। [२६]

पाकिस्तान में भी पांच सितारा होटलों और आधुनिक बस्तियों में महिलाओं का एक अलग पाकिस्तान दिखाई देता है। 'कानून मर्द के पक्ष में है' शीर्षक से हमें लेखक ने यह बताया है कि पाकिस्तान का कानून मर्दों के पक्ष में है। यदि किसी और के साथ बलात्कार होता है और वह गर्भवती हो जाती है तो सजा औरत को मिलती है उस गुनहगार को नहीं। 'फौजी हुकूमत और प्रेस' इस शीर्षक से लेखक ने पाकिस्तान में फौजी सरकार का वर्णन किया है और पाकिस्तान की तरक्की का वर्णन है कहते हैं जितनी पाकिस्तान में गाड़ियाँ दिखती हैं उतनी भारत में नहीं हैं। 'बगैर उनकी इजाजत, ये नामुमकिन है' इस शीर्षक के अंतर्गत अफगानिस्तान के संबंध में पाकिस्तान नीति को पाकिस्तान विरोधी बताया है

और कहते हैं कि पाकिस्तान जैसे सैनिकशाही वाले देश में अभिव्यक्ति को एक नई देह के रूप धारण करने की आवश्यकता है 'रेत होती जिंदगी का दर्द और हुकूमत का रहम' इस शीर्षक के अंतर्गत लेखक के अनुसार भारत और पाकिस्तान की साझेदारी सांप्रदायिक दंगों तथा सरहदी जंगी तक ही ठहरी हुई नहीं है। इस साझेदारी ने दोनों देशों के जीवन के दूसरे पक्षों को भी जकड़ रखा है। 'एक चंबल पाकिस्तान में भी' इस शीर्षक से लेखक ने चित्रित किया है कि पाकिस्तान में भी चंबल है। पाकिस्तान ने पार के अकाल से निपटने के लिए 5 करोड़ की राशि की घोषणा की थी पर मुसलमानों को 500 रु और हिंदू को 300 रुपए की राशि दी जा रही थी। 'भारत के प्रति पाकिस्तानियों का दृष्टिकोण' भारतवासियों के लिए क्या है चित्रण किया है पाकिस्तान में भारत की कुछ ऐसी संस्कृति है जिससे यह पता लगा पाना मुश्किल है कि आप भारत में हैं या पाकिस्तान में। 'काश हम लांघ पाये भूगोल के भय को' शीर्षक के अंतर्गत विभाजन का चित्रण किया है। लेखक ने बताया है कि लाहौर के कृष्णनगर में रहने वाले डार भारत-पाकिस्तान विभाजन को एक हकीकत तो क्या एक ख्वाब मानने की तैयार नहीं हैं। पाकिस्तान 1988-89 इस शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने 'संगीनों' के साथ से लोकतंत्र के आँचल के अंतर्गत पाकिस्तान के लोकतंत्र का वर्णन किया है। जीया शाही के बाद बेनजीर सरकार का पाकिस्तान पर राज था। पाकिस्तान में एक तरफ तानाशाही की मजबूत विरासत है, दूसरी ओर आधुनिकता के लुंजपुंज टापू, एक ओर आत्म निर्भरता के लिए सामाजिक-आर्थिक राजनीतिक दबाव है, दूसरी ओर योरो-अमेरिकी और अरब पेट्रो डॉलर पर आश्रित अर्थ व्यवस्था, एक ओर स्वतंत्र आत्मनिर्भर पाकिस्तान के निर्माण की ललक इत्यादि सब की विवेचना की है। 'पाकिस्तान 1990' के अंतर्गत 'लोकतंत्र' पर नापाक निगाहें शीर्षक में लेखक ने पाकिस्तान के लोकतंत्र पर गलत इरादे रखने वाले उन्हीं के मुल्क की तानाशाही है।

'क्या आप समझते हैं कि पाकिस्तान में जम्हूरियत रहेगी?' मैं पूछ बैठता हूँ। जवाब दिलचस्प है, 'सच बात तो यह है कि हमारे मुल्क में आज भी जागीरदाराना जेहनियत है। यहां कभी भी असली जम्हूरियत नहीं आई।' कभी फौज की तानाशाही रही, कभी एक पार्टी की। चाहे फिरोज खां नून रहे हों या भूट्टो साहब या मोहतरमा भुट्टो, किसी ने भी जम्हूरियत को पनपने नहीं दिया। मैं तो कहता

हूँ कि अगर यहाँ असली डेमोक्रेसी नहीं रही हो तो आज बंगलादेश नहीं बना होता। 1970 तक बंगालियों को पंजाबी और सिंधियों ने मिलकर गुलाम बनाएँ रखा। अरे भाई, 1970 में जब मुजीबुर्रहमान को की आवामी लीग का बहुमत मिल गया, तब उसे हुकूमत सौंप दी जानी चाहिए थी। ऐसा नहीं किया गया। इसका अंजाम सभी ने देख लिया। भुट्टो साहब की वजह से ही पाकिस्तान टूटा है। दरअसल, पाकिस्तान पर पागल कौम का राज है। हमारे सियासी फैसले गलत होते हैं। हमारी प्राथमिकताएँ हैं, काबुल में मुल्लाओं की सरकार बनवाना, तुर्की में इस्लाम की हुकूमत बनवाना, मास्को में क्रेमलिन को गिरवाना। हम हर काम में अमेरिका के मोहरे बन जाते हैं, लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि अब अमेरिका को पाकिस्तान की ज्यादा जरूरत नहीं है। उसकी प्राथमिकताएँ बदल चुकी हैं। फौजी हुक्मरान को यह समझ लेना चाहिए।

पेशावर शहर से दूर अफगानी मुजाहिदीनों के शिविर हैं। हजारों की तादाद में अफगानी मुजाहिदीन अपने परिवारों के साथ इनमें रह रहे हैं। साथ चल रहे एक अन्य पेशावरी गाइड बता रहे हैं कि इन मुजाहिदीन का इस्तेमाल सियासत में भी किया जाता है। सियासी पार्टियां इनसे कई तरह के काम लेती हैं। वैसे, ये लोग जियाशाही के समर्थक रहे हैं। मोहतरमा को खास पसंद नहीं करते। 'मगर, कुछ भी कहिए, साहब, इन लोगों ने हमारे शहर, हमारे सूबे को तबाह कर दिया है। तूफान मचा रखा है।' गुस्से से उसने कहा। बकौल गाइड के, 'मुजाहिदीन के आने से शहर में अपराध बढ़ गए हैं।' नशीले पदार्थों की तस्करी की जा रही है। इससे हमारी औलादें बर्बाद हो रही हैं। इस्लामाबाद की निजाम अपने ओछे स्वार्थ के लिए इन्हें पाले हुए है। काबुल 1987 दूर के पड़ोसी इस शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने काबुल दौरे का चित्रण किया है। 'पहल एक रंगभरी सुबह की' शीर्षक से लेखक ने जब पहली बार काबुल गए थे वहाँ का चित्रण किया है। लेखक जहाँ भी काबुल में गए उन्हें वहीं पर हर जगह राष्ट्रीय सुलह के प्रतीक पोस्टर व झंडे दिखाई दिए।

काबुल प्रांत के कुछ उन गांवों का दौरा भी किया, जहाँ लौटे शरणार्थियों को बसाया गया है। ऐसे ही एक जाफर गाँव में बताया गया कि वापस आए अफगानियों को गुजर-बसर के लिए जमींने दी गई हैं। खेतों में काम दिया गया है। दूसरे रोजगार उपलब्ध कराएँ गए हैं। आम माफी के तहत शरणार्थियों और सशस्त्र विद्रोहियों को आत्म-समर्पण के पश्चात् पुनर्वास की पूरी सुविधा दी जाती

है, यहाँ तक कि उन्हें गांवों की रक्षा के लिए गठित आत्मरक्षा टुकड़ियों में भर्ती किया गया है।

इस संस्मरण के अंतर्गत लेखक ने उन सभी देशों के जन जीवन में झाँककर सही तस्वीरें उतारने का सराहनीय कार्य किया है। पर पाकिस्तान का चित्रण इस संस्मरण के अंतर्गत विशेष रूप से किया है। इन संस्मरण में लेखक ने समाज शास्त्रीय दृष्टि का भी प्रयोग किया है जिससे संस्मरण गंभीर बन जाता है और संदर्भ सामग्री के रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

14. उषा महाजन -

'जिन्हें मैंने जाना' उषा महाजन जी द्वारा लिखित संस्मरण है। लेखिका ने इस संस्मरण को दो भागों में बांटा है। पहला महिला, लेखिका, समाजसेवी, राजनीतिक इत्यादि को चित्रित किया है। दूसरे भाग में पुरुष साहित्यकार, समाजसेवी राजनीतिक इत्यादि हैं। 'श्यामा चोनाः बेमिसाल हिम्मत' शीर्षक से लेखिका ने श्यामा जी को याद किया है। लेखिका कथाकार और साथ में ही पत्रकार भी थीं। लेखिका की मुलाकात श्यामा जी से तमन्ना नामक मानसिक रूप से बाधित बच्चों के विशेष स्कूल की इमारत का अनावरण के दौरान। श्यामा जी की जीवन त्रासदी ने आंतरिक दृढ़ता से अपनी शक्ति में परिवर्तन कर लिया था। श्यामा जी की एक बच्ची थी जो देख नहीं सकती और उसकी गर्दन भी नहीं बैठती जिससे उसका मानसिक विकास नहीं हो पाया था, श्यामा जी कहांकहां - उसको इलाज के लिए ले गयीं पर हर जगह से उनको निराशा ही हाथ लगी।

यह सत्तर के दशक के आरंभिक दिनों की बात थी। वे बच्ची को लेकर चंडीगढ़ के पीइ .जी.ंस्टीट्यूट गईं। वहां उन्हें बताया गया कि बच्ची को 'सेरेब्रल पाल्सी' (प्रमस्तिष्कीय अंगघातहुआ था और उसका विकास बाधित होने वाला (था। वे उसे लेकर दक्षिण भारत में वेलौर के क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज भी गईं, जहां उनके उपचार की कुछ संभावना थी, पर वहां से भी निराश ही वापस लौटना पड़ा। उन्हें तब ऐसा लगा, मानो उनके जीवन का लक्ष्य ही समाप्त हो गया था। एक बिंदु पर तो घरवालों ने भी कहना शुरू कर दिया कि बच्ची को 'चेशायर होम' में दे दिया जाए, क्योंकि वे उसे पाल नहीं पाएगी, पर श्यामा ने हिम्मत नहीं हारी। बच्ची को लेकर, सबके विरोध के बावजूद वे अमेरिका चली गईं। तब वह लगभग

सात साल की थी। वहां उन्होंने तमन्ना को इस प्रकार की समस्या वाले बच्चों की विश्वप्रसिद्ध संस्था 'एस्पैरेंजो' में भर्ती कराया और खुद भी वहां प्रशिक्षण लेने लगीं। वहां दवाओं द्वारा नहीं, वरन् मस्तिष्क की कोशिकाओं को तरहतरह की थैरेपी द्वारा - पुनजीर्वित कर बच्चों को जीवन जीने लायक बनाया जाता था। अमेरिका में प्रशिक्षण पूरा होने के बाद वे तमन्ना को लेकर दो सालों तक लंदन में भी रहीं, जहां 'ब्लाइंड एसोसिएशन ऑफ कॉनवेल्थ' के चेयरमैन जॉन विल्सन ने उसका इलाज किया।

अमेरिका के 'एस्पैरेंजो स्कूल' और 'ब्लाइंड एसोसिएशन ऑफ कॉनवेल्थ' से प्रशिक्षण और अनुभवों से लैस होकर श्यामा चोना भारत वापस लौटी और 1984 में अपने अर्जुन नगर के अपने निवास के पास ही एक तंबू में कुल छह मानसिक बाधित बच्चों के साथ उन्होंने 'तमन्ना' विशेष स्कूल की शुरूआत की।

शादी के समय वे राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में लेक्चरर थीं। बंगलुरू, चंडीगढ़, असम और पुणे के कॉलेजों में भी पढ़ाती रहीं, लेकिन अपनी बच्ची की बाधा को देखते हुए उन्होंने अपने कॉलेज के करियर को तिलांजलि दी और दिल्ली पब्लिक स्कूल की आर पुरम् शाखा में पढ़ाना शुरू किया और .के.1992 में वहां की प्रधानाचार्य बनीं।

शिक्षिका नौकरी के साथसाथ लगातार दौड़धूप कर मानसिक विकलांग - बच्चों की अपनी संस्था और अनन्य संस्था'तमन्ना विशेष स्कूल,' 'नई दिशा' और 'स्कूल ऑफ होप' से जुड़ी रही। 'तमन्ना विशेष स्कूल' में तरहतरह की थैरेपी द्वारा - चार से सत्रह साल के मानसिक विकलांगों का उपचार किया जाता है। इन बच्चों में लगभग40 प्रतिशत बच्चे झुग्गीझोपड़ियों से लिए जाते हैं। उन्हें देखकर सहज - ही अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता कि वे अच्छे घरों से नहीं थे।

'दिनेश नंदिनी डालमियाः मुझ पर बाकी थी जिनकी देनदारी' शीर्षक से लेखिका ने नंदिनी जी को स्मृतिबद्ध किया है। लेखिका नंदिनी जी के काफी करीब थीं। दोनों का रिश्ता घरेलू था। लेखिका ने यह संस्मरण भी बतौर साक्षात्कार ही रचा है। नंदिनी जी राजस्थान की रहने वाली थीं। वहां की रीति रिवाज से उन्हे पर्दे में रहना पड़ा पर उन्होंने पर्दे के अंदर से ही लेखनी का कार्य शुरू कर दिया था।

लेखिका ने बताया किस प्रकार कुसुम जी ने अपने आप को उन सब बातों से अलग किया और लेखन का कार्य शुरू कर दिया। आज वह कामयाब लेखिका है।

'वसुंधरा राजे सिंधियाः अब मेरे पास क्या नहीं है' शीर्षक से लेखिका ने वसुंधरा जी को स्मृतिबद्ध किया है। वसुंधरा जी का वैवाहिक जीवन तहस-नहस हो गया वह अपने बेटे को लेकर अपनी ससुराल में ही रहीं। वसुंधरा जी की शिक्षा-दीक्षा बोर्डिंग स्कूल में हुई। वसुंधरा जी ने लोगों की मदद से चुनाव लड़ा और वह जीती भी। आज वह कामयाब राजनीतिक हैं। वसुंधरा जी के पुत्र दुष्यंत सिंह जी आज सांसद हैं।

'श्रद्धा माताः नेहरू मुझे उपराष्ट्रपति बनाना चाहते थे' शीर्षक से श्रद्धा माता का चित्रण किया है। श्रद्धा माता नेहरू के समय से थीं। नेहरू उन्हें उपराष्ट्रपति बनाना चाहते थे। श्रद्धा माता ने अस्वीकार कर दिया था। श्रद्धा माता धर्मनिरपेक्ष राज्य नहीं चाहती थीं।

'तू नहीं जानती उन्हें?' बड़ी पहुंची हुई संन्यासिन है। नेहरू तक से दोस्ती थी उनकी। मैं तो कई बार मिल चुका हूँ उनसे। दिल्ली में निगम बोध घाट से मिलने गया, तो देखा खुले में धूनी रमाकर बैठी थीं। बंबई में कई बार मिला। जयपुर में हथरोई फोर्ट में रहती हैं अब तो, कई सालों से। ठहर तुझे फोन नबंर देता हूँ, हथरोई फोर्ट में उनसे मिलकर जरूर आई।

वे अपनी डायरी खोलते है और मुझे श्रद्धा माता का फोन नंबर लिखवाते हुए अपने ठेठ अंदाज में हसंते हुए बताते हैं, "मुझे तो वह बदमाश नाम से संबोधित करती हैं। कहती हैंक्या पूछने आया है मैं नहीं डरती तेरे !तू बड़ा बदमाश है। पूछ-सवालों से तुझे भी ऐसे ही हड़काएंगी पहले। तू डरी ना। जो पूछना हो, सब पूछ लाई। शुरू में ही फटकारती है। फिर सब कुछ बोलनेती हैं।बतियाने लग-"

क्याकया पूछूं-? किसी बच्चे की तरह आग्रह करती हूँ।

वे फिर ठठाते हैं, तो तूने नहीं पढ़ी पंत्र जवाहरलाल नेहरू के निजी सचिव रह चुके एममथाई की किताब .ओ., नेहरू युग जानी अनजानी बातें रेमनिसेंसेस ऑफ) उसमें एक चैप्टर है (द नेहरू एज'नेहरू एंड विमेन'। उसमें मथाई ने पद्मजा नायडू, लेडी माउंटबेटन आदि के साथ ही श्रद्धा माता पर भी काफी कुछ लिखा है। बारहचौदह साल हो गए हैं। कोई-, इस किताब को छपे। तब इस किताब ने खासा

हंगामा मचाया था। काफी पढ़ीलिखी और गजब की घनिष्ठता का जिक्र करते हुए - हरू समथाई ने तो यहां तक लिख डाला कि ने े उन्हें एक पुत्र भी हुआ, जिसे श्रद्धामाता ने दक्षिण भारत के एक कैथोलिक अस्पताल में छोड़ दिया। सरदार वल्लभ भाई पटेल ने सन् 49 में अपने एक पत्र द्वारा नेहरू जी को इस संबंध में चेताया भी था।

उनको लगता था कि उनके कंधे पर नेहरू बंदूक रख कर चलाना चाहता है। श्रद्धा माता एक संन्यासिनी थी। हथरोई दुर्ग जयपुर में रहती थी। उन्होंने वहीं पर अपना जीवन बिताया था।

'शिवानीः चर्चित होने के लिए नहीं लिखा' शीर्षक से शिवानी जी को याद किया है। शिवानी जी एक लेखिका है। शिवानी जी का भरापूर परिवार है पर वह अकेली लखनऊ में रहती थीं। शिवानी जी को शांति प्रिय बहुत अच्छा लगता है वह अपने आप को कभी अकेली महसूस नहीं करती थी।

दूसरा भाग जो पुरुषों को लेकर लेखिका ने लिखा है उनमें पहले 'खुशवंतसिंहसा कहां कोई देखा-आप :' शीर्षक से खुशवंत जी को स्मृतिबद्ध किया है। खुशवंत जी ने साहित्य को बहुत कुछ दिया है। लेकिन समाज खुशवंत जी पर भी अंगुलियाँ उठाती रही।

वे निश्छलसी हंसी हंसते हुए बोले-, 'शायद मैं जितना करता नहीं, उतना शोरशराबा करता हूँ। अगर मैं औरतों के पीछे भागने वाला होता-, तो इतना काम कैसे कर पाता, जितना करता हूँ।' मेरी छवि ऐसी बनी, क्योंकि मैंने उसे तोड़ने की, अपने बारे में फैली भ्रांतियों को काटने की कभी कोशिश ही नहीं की। मुझे किसी चीज को छिपाना नहीं आता। अगर पीता हूँ, तो पीता हूँ, तो पीता हूँ। छिपाना क्या? अगर कोई महिला खूबसूरत लगती है, तो उसके घरवाले के सामने ही कह देता हूँ। आज तक किसी ने उसका बुरा नहीं माना, लेकिन पढ़कर, लोग इससे ही अनुमान लगाने लगते हैं, तरहतरह के। वैसे थोड़ी सच्चाई तो इसमें-, इस लिहाज से कि मुझे पुरुषोंमित्र का नाम याद नहीं आता। सब की सब मित्र मेरी महिलाएं ही - हैं।चाहे जितने नाम गिना लो। सच यह भी है कि मैं किसी के पीछे कभी नहीं भागी। न ही हमारी दोस्ती में कोई लेन-देन रहा। शायद इसलिए महिलाओं को मेरी दोस्ती पसंद है वे दोस्ती के साथ-साथ सम्मान भी करती है।

सब की सब मेरी वफादार मित्र हैं। एक कारण इसका शायद यह है कि मैं एक अच्छा श्रोता हूँ। महिलाएं अपने मन की बात मुझसे खुलकर कर लेती है और मैं उन्हें शायद नेक सलाह ही देता हूँ जो वे हमेशा के लिए मेरी कोयल बन जाती हैं। खुशवंत जी को कोई झिझक नही कि मेरी महिलाएँ मित्र हैं। खुशवंत जी का परिवार चार जनों में सिमट कर रह गया। लेखिका विस्तारित उनका बहुत बड़ा है। उनको तहे दिल से प्यार करने वाले अनगिनत मित्रों का और उनके चाहने वाले असंख्य वफादार पाठकों का।

इस संस्मरण को पढ़ने के बाद हम कह सकते हैं कि यह साक्षात्कार संस्मरण है। लेखिका ने सबके साथ हुए बातचीत को दर्शाया है। यह संस्मरण आत्मीय स्वजनों को तटस्थ दृष्टि से देखना हो या बड़ी हस्तियों को संजीदगी से समझना हो लेखिका की नजर हमेशा सक्रिय रही है। यह संस्मरण एक नये अनुभव की ओर ले जाती है।[२७]

15. कृष्णा सोबती -

'हम हशमत' कृष्णा सोबती द्वारा लिखित संस्मरण है जिसके अंतर्गत साहित्य से जुड़े बड़े भिन्न विधाओं के तेवर वाले व्यक्तियों का-बड़े लोगों का भिन्न-परिचय प्राप्त होता है। इसमें कवि आलोचकों, उपान्यासकार इत्यादि ऐसे महान लोगों का व्यक्तित्व जानने का अवसर पाठकों, लेखिका ने प्रदान किया है ये कहना अतिशयोक्ति न होगा कि संस्मरण विधा में यह मील का पत्थर है। लेखक ने तटस्थ होकर एक ओर तो महान लोगों की विशेषताएं दूसरी ओर अपनी भाषायी जादू से पाठकों को एक कालजयी रचना प्रदान की है। समाज से संबंधित अनेक प्रतिबंध नारियों पर लगाए जाते हैं और अक्सर ऐसा कहा जाता है कि पुरुषों के अनुभव केवल पुरुष ही लिख सकते हैं। इस बात का खण्डन भी कृष्णा सोबती जी ने किया है। यह संस्मरण उनका तीसरा खण्ड है। जिसके अंतर्गत उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि स्त्री भी अपनी सीमाओं से बाहर जाकर मानवीय स्तर पर उसका गहन अध्ययन कर सकती है। इस खण्ड में शामिल रचनाकार भारत में ही नहीं पूरे विश्व में अपनी रचना की विशेषता हेतु जाने जाते हैं। सबसे पहले लेखिका ने सत्येन जी के बारे में बताया है जिनके घर जाकर उन्होंने लेखक की घरेलू जिंदगी को महसूस किया है। सत्येन ने एक लम्बा घूंट भरा और धीरे से

कहा देर तक बैठे रहें तो आधी रात के बाद, एक उदास सी सलोनी खुशबू यहां फैल जाती है।

हम चमत्कृत हुए। उदास सी सलोनी खुशबूइस जिन्दादिल के आन्तरिक ! कोनों से भला क्या झांक रहा है। कुछ तो गहरा। व्यक्तित्व में समझदारी और मनमौजी समरसता के बावजूद तल्खी। सत्येनमें गहन सोचनेविचारने वाले - लेखक मित्रों वाली न आत्मकरुणा और न आत्मश्लाघा। हम सावधान हुए।

देखिए हमारी जानकारी एक सैलानी की तरह ही रही। हां, जब कभी हवाएं शोर करती तो हमारी मदद मिश्रीबाई नखरों से कहतीसाहिब काइ वायरा बाजे है। - सांय कर एक दूसरे से टकराएं कि किसी -सचमुच वहां हवाएं इतनी तेज सांय अलिखित अनजानी भाषा का आभास हो। गांव के परिवार का चित्रण किया है मुन्नू की मां का चित्रणकिया है। मुन्नू की मां कर्मठ महिला थी जो घरघर काम- करके अपने परिवार का पेट भरती थी। उसके जीवन के उतार चढ़ाव का भी है। अगला अध्याय ठाकुरी बाबा लेखिका ने चित्रण किया, बिबिया, गुंगिया इत्यादि का भी वर्णन किया है। यह संस्मरण आम लोगों के बारे में लिखा गया है पर लेखिका ने उसे इतने सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है कि यह आम पात्र खास बन गये हैं इसलिए बहुत ही महत्वपूर्ण संस्मरण है।

मंजूर ने खुफिया आंख से सत्येन को टटोला जैसे कहते होंबड़े -, भाई ठीक दिशा की ओर चढ़ रहे हो। अभी सब कुछ साफ हुआ जाता है। आप राजस्थान में रहकर शिकार पर तो गए होंगे? हमने कुर्सी पर जगह बदली और दोनों का सामना किया।

भला हम कहां के शिकारी हैंर गए जरूर। दो बार दोस्तों के साथ शिकार प ! घनघोर जंगल की हवाओं और खामोशी के रंग जरूर देखे। मगर जिसने हमें सबसे ज्यादा आहत किया वह था बकरे का बंधना। सन्नाटों में धड़कती उसके रोने की आवाजदिल दहल गया। कानों को हाथ लगाया यहां फिर कभी नहीं। इस बेबस - कराहती आवाज के पास कभी देखा।

कभी शिकार करते भी देखा। देखा पहले दबीदबी बेमामूली आवाजें जैसे - खुद दहलकर खामोश हो जाती हैं। फिर एक ऐसा विराम जिसके बाद सब -ब-खुद स्थगित। लगता शिकारी शिकार को नहीं अपनी लाश को उठाएगा आगे की ओर लपक रहे हैंमांस भूनने की गन्ध के लिए बेताब ताकि पता लगे कि वह जिन्दा -

कार। सत्येन तजुरबेकार शिकारी की तरह हंसे तो आपने भी एक आध हैं कि शि शिकार तो देखा है।

सत्येन के मुखड़े का सांचा कोई और सा रंग मारने लगा हूँ आहटों को समेटने की तालीम। जानते हुए कि हम नहीं सत्येन शिकार का असल बखूबी जानते हैं, हमने बखान को किसी दूसरी ओर बदल देने का इरादा कर लिया। इसके उपरांत जयदेव जी के बारे में बताते हुए कहा है। 'तुम कहीं गुम नहीं हुए जय' इसके अंतर्गत उन्होंने बताया कि किस तरह से लेखिका जयदेव से मिलती है और उनसे बड़ी आत्मीयता से संवाद करते हैं। पिछले दो दिनों से लगातार पानी बरसता रहा था। सम्पादक की अंतिम मोहलत कानूनी तारीख की तरह मेरे सिर पर लटकी थी। यह मोहक जाल और जंजाल एक साथ। वक्त पर बुन लिया गया तो सुर्खरू होने का गहरा अहसास। फैक्स पर नहीं जा सकेगा। बिजली नहीं है लिखित पर परायी नजर मारी। इतने पन्ने दुबारा कैसे लिखे जाएंगे। हाथ से एक साफ ड्राफ्ट तो और भी किया जा सकता है न नहीं। अब हिम्मत नहीं। ![२८]

बाउलूगंज से पूछाक्या बिजली नहीं। -

जयदेव को फोन किया। अपनी परेशानी उत्साह से बोले-मुझे पहुंचा दे तो कल सुबह तक निकाल दूंगा। ठीक, घंटे भर में आप तक पहुंच जाएगा। पन्ने पिन किए। कवर में रखे और मैस में फोन कर कहा शाम की सब्जीदूध खरीद करने - का केसर बाउलूगंज जाएं तो हम कुछ जरूरी कागज उन्हे दे दें। साहिब, वह तो आधा घंटा पहले निकल गया हूँ अब? खुद ही अपने काम में जनबा, अब खुद ही वहां तक जाना होगा। चाय क्या थरमस साथ लोगे। हर्ज नहीं। जूते बदले। बरसाती और छाता निकाले। पन्नों को हिफाजत से पॉलिथीन में रखा और बाहर निकल लिये।

समरहिल की ओर जाती झुरमुरे एकान्त की यह सड़क नीचे से रेल जा रही है। अंधेरे में इस छबीली राह की अपनी ही नजाकत। बारिश में नहाती विद्या की खूबसूरत लम्बीलम्बी हरियाली पत्तियाँ। गुच्छा बनाने का मन हुआ-, फिर छोड़ दिया। जयदेव के यहां फूलों और पत्तियों की कमी नहीं, फिर भी हाथ में होते तो हशमत अच्छा महसूस करते।

पुरानी यादों को आपस में बाटते है किस तरह चाय की चुस्कियां ली थी, कैसे धुप सेकी थी, ये सारी बातें फोन पर होती हैं और पाठकों के समक्ष शब्दों के

माध्यम से एकत्र बखूबी उभरते चले जाते हैं। किस तरह से दूरदर्शन के एक चि-लिए फिल्म बनाई गयी थी कैसे जिंदगी नामा को अनुवाद करने के लिए कैफे में मुलाकात की थी। महाश्वेता देवी के लेखक को किस तरह व्यंग्य में लिया था आदि बातों को लेखिका को आठ भागों में बांटकर आठ जन्मों को साकार कर दिया है। इस तरह लेखिका ने अपनी यादों को संवादों में पिरोया है कि उनकी संसार में अनुपस्थिति उपस्थिति में बदल जाती है और एक फोन नंबर के माध्यम से लेखिका बताती हैं कि तुम्हारे नंबर के माध्यम से तुम भले ही नहीं बोलोगे। लेकिन तुम्हारी पत्नी, तुम्हारा बेटा बोलेगा ये सभी आवाजें तुम्हारी ही आवाज होंगी। क्योंकि तुम्हीं ने अपना रूप प्रदान किया है इसलिए एक बार मैं फिर दोहराती हूँ तुम यहीं हो कही गये नहीं हो। लेखिका ने पत्र के माध्यम से अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है और साथ बिताए हुए हर पल का बखूबी से खूब चित्रण किया है। लेखिका ने जयदेव को जितना जाना पहचाना उसे देखकर ऐसा लगता है कि ऐसी साहित्य छवि से अच्छे मित्र कभी भी एकदूसरे की यादों-से जुदा नहीं होते। निर्मल वर्मा की यादों को ओझल नहीं होने दिया और दिन और रात दूसरी दुनिया से आत्म निर्वासन इत्यादि शीर्षकों के अंतर्गत उसका चित्रण भी बड़ी खूबसूरती से किया है। निर्मल वर्मा की आत्मसत्य की खोज को उन्हीं के शब्दों में व्यक्त किया है।

कित्ता पानी!कित्ता !

हाथ फैल जाते हैं और नन्हे से आलिंगन में समूचा अन्तहीन समुद्र सिमट जाता है। मुद्दत पहले घर की छत पर मछलियों का खेल खेलते हुए कभी सोचा था कि एक दिन सचमुच लहरें हमारे सिर पर से गुजर जाएंगी और हम जो अब बड़े हो गए हैं बच्चों से डरतेठिठुरते हुए डेक- पर बैठ रहेंगे या लेटे रहेंगे। कम्बलों में सिकुड़े हम बंडलों से, लंच की घंटी बजेगी तो भी और डिनर की पुकार होगी तो भी। बिना हिलेडुले-, भूखे-प्यासे तपस्वियों से अधसोए अधजगे-

रात और दिन दो दिन तक समुद्री पक्षी बराबर हमारे जहाज के पीछे उड़ते रहे, धूप और आंधी में दिनरात।-

जब जहाज के किचन से बावर्ची पुरानी, बासी रोटी के टुकड़े, फलों के छिलके या बचीवले होकर टूट पड़ते। खुची गोश्त की तरकारी बाहर फेंकता तो वे उता-समुद्र में गोते लगाते हुए उन्हें निगल लेते और फिर उड़ने लगते। उस घड़ी की

आशा में जब बारह या तेरह घंटे बाद बावर्ची फिर अपना सिर किचन की खिड़की से बाहर निकालेगा। किसने कहा था कभी समुद्र पक्षी के रोमेंटिक सौन्दर्य के बारे में। छह दिन का सागर पथ है।

कोपनहेगन से आइसलैण्ड तक। हर दिन को गिनना पड़ता है समय का हिसाब रखने के लिए और समय है जिसने अपने को दिन और रात के पहियों से मुक्त करके फैला दिया है। समुद्र की अबाध नीलिमा पर। लम्बे होते हुए दिन, सफेद रातों तले चीखती लहरें। पानी के बीच धरती पाने को बिलखती प्यास यह है निर्मल का गद्यसहज-, संक्षिप्त, सघन और अभिव्यक्ति की चौकसी में बुना हुआ।

पानी के बीच धरती पाने को बिलखती प्यासउन-के गद्य में प्यास का आभास न होते हुए भी प्यास है। मगर वह उन्माद से रहित है। भारतीय मन की अन्तर्निहित उदारता, उदासीनता या भक्ति का उछाल जो सूफी कलाम में भी अभिव्यक्त होता है, यह गूंथ उससे दूर विलग जा पड़ती है।[२९]

16. शिवेन्द्र कुमार सिंह -

शिवेन्द्र कुमार सिंह जी का संस्मरण 'यह जो है पाकिस्तान' सन् 2013 में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है। इस संस्मरण के अंतर्गत तिरपन शीर्षकों से चित्रित किया है। लेखक ने इस संस्मरण में क्रिकेट से जुड़े लोग, पाकिस्तान के दौर का चित्रण, मैच फिक्सिंग, लाहौर में महाभारत इत्यादि को लेखक ने स्मृतिबद्ध किया है। यह जो पाकिस्तान इस शीर्षक से लेखक ने अपने अंदर जो उसका पाकिस्तान है उसको स्मृतिबद्ध किया है। लेखक का एक अपना परिवार भी पाकिस्तान में है। भले ही उनसे खून के रिश्ता नहीं है पर उससे भी बढ़कर है। 'क्रिकेट डिप्लोमेसी' इस शीर्षक लेखक ने भारत और पाकिस्तान के रिश्ते को उजागर किया है। लेखक ने उस समय की बात कही है जब भारत पाकिस्तान के दौरे पर नहीं जाती थी। दोनों देशों के सरकारों के बातचीत से यह सुलह हो पाया कि दोनों देश में जा सकते हैं। 'मार्च 2004 भारत का पाकिस्तान दौरा' इस शीर्षक के माध्यम से लेखक ने 14 साल के बाद भारत पाकिस्तान दौरे पर गयी। क्रिकेट के जरिए रिश्ते सुधारने की दिशा में तेजी से कदम बढ़ाए जा रहे थे। 'अब हम पाकिस्तान में थे?' शीर्षक से लेखक उस समय पाकिस्तान में थे वह पत्रकार होने के नाते क्रिकेट सीरीज कवर करना इत्यादि क्रिकेट से संबंधित रिकार्ड

करना लेखक का काम था। 'काम की पहली सुबह' इस शीर्षक से वह स्मृतिबद्ध किया है। जिसके अंतर्गत लेखक को क्रिकेट सीरीज को पूरा करना है। इसी तरह कई शीर्षकों को स्मृतिबद्ध किया है। पाकिस्तान में आलू टिक्की छोले खाए। लेखक को लगता ही नहीं कि वह विराने देश में है। लेखक के पास सचिन तेंदुलकर का एक मिनट का इंटरव्यू था। वह उसे भारत में प्रसारित करना चाह रहे थे पर तकनीकी खराबी के कारण वह उसे प्रसारित नहीं कर पाए। 13 मार्च 2004 जीत गया हिंदुस्तान। चौदह वर्ष बाद पाकिस्तान के खिलाफ भारत ने मैच खेला और जीत गये और यहां से शुरू हुआ पाकिस्तान दौरा। रावल पिंडी में मिला फिक्सिंग का जिन्न लेखक ने इस शीर्षक में जो अफवाह उड़ाई गई थी कि भारत और पाकिस्तान की पूरी सीरीज मैच फिक्सिंग है। सनसनी खेज खबरें अक्सर अर्धसत्य पर आधारित होती हैं। 'शाहरुख खान की कसम' लेखक लिखते हैं कि पेशावर में लोग शाहरुख खान की कसम खाते हैं।

हिन्दुस्तान के नाम से ही उसे लगा जैसे हम और शाहरुख दांत काटे दोस्त हो, शाहरुख ये शाहरुख वो। फिर तो पूरे रास्ते शाहरुख की ही बाते होती रहीं। जब हम टैक्सी से उतरे और पर्स निकाला, तो टैक्सी वाले ने कहाशाहरुख खान की - कसम, हमने पैसे बहुत कमाए है आपसे पैसे नहीं लेंगे। हम पैसे लेने को कहते रह गये, पर पठान ने शाहरुख खान की कसम खा ली तो फिर खा ली। फिर जब पठान ने याद दिलाया तो हमें भी याद आया कि भई हम पेशावर में हैं पेशावर में। शाहरुख खान के अब्बा ताज मोहम्मद खान पेशावर के ही थे, दिलीप कुमार साहब का जन्म भी तो यहीं हुआ था। अब हिन्दू मन्दिर के अलावा स्टोरीज का बैंक बढ़ता जा रहा था। हमने सबसे पहले टैक्सी वाले पठान का इंटरव्यू कर लिया। उसने बातचीत के दौरान 2-3 शाहरुख की कसम बोला, तो हम भी समझ गये कि ये स्टोरी तो हिट हो गयी। शाहरुख खान के नाम से पठान जब नुक्ता लगाता था, तो समझिए मजा दोगुना हो जाता था। अब हम उस गली के बाहर खड़े थे, जहां मन्दिर था। हम मंदिर में घुस गये। वहां के पुजारी से मिले, उसे अपना परिचय दिया। हमें इस बात का अन्दाजा तक नहीं था कि वो पुजारी स्टोरी शूट करने के लिए तैयार ही नहीं होगा। उसने जितने नियम कानून बताए उतने नियम कानून को मानने के बाद हिन्दुस्तान में प्रधानमंत्री का इंटरव्यू हो जाएगा। खैर, हम भी हार कहां मानने वाले थे। थोड़ा ज्ञान अनिमेष ने दिया और थोड़ा

मैंने। मोटे तौर पर पुजारी को ये समझाया गया कि हमने यहां आने से पहले हिन्दुस्तान के उसके ट्रस्ट से बातचीत कर ली है और उन्हीं के कहने पर हम यहां आये हैं वरना हमें कहां से पता चलता कि यहां कोई शिव मंदिर है। स्टोरी शूट की गयी। हेडलाइन में चल गयी। मन ही मन जगजीत सिंह की एलबम को 'कर्टसी' देते हुए मैंने पीटीसी कर डाली, सबकी पूजा एक सी अलगहै रूप अलग-, मन्दिर जाए मौलवी कोयल गाए कूक स्टोरी में ये भी बता दिया कि पेशावर तो दरअसल एक वक्त पर बुद्ध धर्म का प्रमुख शहर था। इसका नाम पेशावर तो बाद में पड़ा।[30] पाकिस्तान की सुरक्षा एजेंसियां काफी चौकिन्नी हैं। पाकिस्तान में बनते भोजन की महक लेखक को बहुत अच्छी लगती थी। यदि कोई मांसाहारी है उसके लिए ही है। कुछ कारणवश लेखक को भारत वापस आना पड़ा। उनके साथ गये उनके दोस्त बाकी मैच की कवर कर रहे थे। पाकिस्तान गुलबर्ग मार्केट 2 से 3 बजे तक खुली हुई रहती है। यह देखकर लेखक को लगा मानो 7 से 8 बज रहे होंगे। 'सचिन को गुस्सा आया' इस शीर्षक से लेखक ने सचिन और द्रविड़ के बीच घटी कुछ घटनाओं का उल्लेख किया है और कहते हैं सचिन जितने बड़े खिलाड़ी हैं उतने बड़े आदमी हैं। दूसरी बार लेखक पाकिस्तान गये थे हॉकी चैम्पियन को कवर करने के लिए। पाकिस्तान के रेस्तरां में एक ऐसे शख्स थे जो अमिताभ के बारे में इतना सब कुछ जानते थे मानो वह उन पर पीएचडी भी कर लेंगे। पड़ा . जो लेखक ने बखूबी यह काम किया।'लाहौर में महाभारत' शीर्षक से लेखक ने स्मृतिबद्ध किया है। लाहौर में महाभारत का मंचन देखकर इन प्रस्तुतियों को देखने के व्यक्तिगत लालच के अलावा मन में ये बात बड़ी साफ थी कि पाकिस्तान में महाभारत का मंचन अपने आप में एक अच्छी स्टोरी है। अब हम लाहौर के गद्दाफी स्टेडियम के बिल्कुल पास के कैम्पस में हो रहे इस महोत्सव के हॉल में थे। कुछ और हिन्दुस्तानी पत्रकार भी इस प्रस्तुति को देखने पहुंचे थे। मेरे पास कैमरामैन था, लेकिन शैलेश के होने से काफी मदद मिल गयी, मैंने कैमरा स्टेज पर फिक्स करके छोड़ दिया। हॉल में अन्धेरा था, एक पास्तिान कैमरामैन से मदद ली, उसने आकर कैमरे की सेटिंग में जरूरी बदलाव किए और कहा कि अब मैं कम रोशन में भी शूट कर सकता हूँ।

'वर्ल्ड परफॉरमिंग आर्ट फेस्टीवल' पाकिस्तान के रफी पीर थिएटर वर्कशॉप की पेशकश थी। साउथ इस्ट एशिया का ये एक बड़ा महोत्सव है। छह सौ से

ज्यादा कलाकार। गीतसंगीत-, नृत्य, नाटक, कठपुतली के अलावा फिल्म महोत्सव। पाकिस्तान के कला प्रेमियों के लिए ये अच्छी पेशकश थी। रफी पीर के बारे में कहा जाता है कि उनका जिक्र किए बिना आधुनिक उर्दू और पंजाबी ड्रामा की बात करना बेकार है। रफी और पीन में जर्मनी में थिएटर की पढ़ाई की थी और उसके बाद जब वो लौटे तो उन्होंने रंगमंच की परिभाषा ही बदल दी। 1974 में रफी पीर के निधन के बाद भी उन्हें रंगमंच की दुनिया में लंबे समय तक याद रखा जाएगा।

'जिने लाहौर नहीं वेख्या' विभाजन के बाद की तमाम तस्वीरों को पेशा करने वाला जबरदस्त नाटक है। अब हमारी नजर थी पाकिस्तान में महाभारत देखने की। भारत के ऐतिहासिक और पौराणिक महत्त्व वाले महाकाव्य का लाहौर में मंचन। बीरत को टीवी पर देखा थाचोपड़ा के महाभा .आर., जाने कितनी बार महाभारत की कहानियां सुनी थीं, हिंदुस्तान की औसतन हर दस में एक दुकान पर गीता के सार का पोस्टर लगा होता था या बड़े से पोस्टर पर लिखा होता था-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।।

।।मामनुस्मर युध्य च।।

इन सारी बातों के बावजूद लाहौर में महाभारत का मंचन रोमांचित करने वाला था। ये बात भी तय थी कि ये नाटक चाहे जहाँ भी किया जा रहा हो, इससे लोगों का मनोरंजन तो होगा ही। हालांकि हमारी ये सोच बाद में गलत साबित हुई।

इतना मैं कह सकती हूँ कि यह एक अलग संस्मरण है जो बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस संस्मरण के द्वारा पाठकों को क्रिकेट के बारे में और क्रिकेट में क्या-क्या होता है और क्रिकेटरों की पसंद, नापसंद सब इस पुस्तक के माध्यम से आसानी से प्राप्त हो जाता है। उसके साथ-साथ हॉकी, संगीत गायक इत्यादि के बारे में भी जानकारी मिलती है। लेखक ने बड़ी बारीकियों को पकड़ा है और उसका उल्लेख किया है।

17. कांति कुमार जैन -

(1) बैकुंठपुर में बचपन

''बैकुंठपुर में बचपन'' यह संस्मरण कांतिकुमार जैन द्वारा लिखित है। इसको इन्होंने छियालीस शीर्षकों के माध्यम से व्यक्त किया है। इसके अंतर्गत लेखक ने अपनी स्मृतियों के आधार पर अलगअलग शीर्षक में लेख लिखे हैं-, जहाँजहाँ वह - उस जगह की स्मृतियों -जिस उम्र में उन्होंने अपना जीवन बिताया उस-रहे जिस को व्यक्त किया है। इनके शीर्षक अपने आप में खुलासा कर देते हैं।

''हिंदुस्तान बहुत दूर ही नहीं है, जिन्होंने उसे देखा भी है, वे भी उसके छोटे-ठीक कुछ नहीं जानते। उन्नीस सौ वर्षों बाद भी -से हिस्से के बारे में भी ठीक पिताजी को उसकी चेतावनी याद थी।1770 ईमें फ्रांसीसी मानचित्रविद् को यह . पता नहीं था कि गंगा कहाँ है? उसने हिंदुस्तान के नक्शे में उत्तर की ओर हिमालय की तलहटी में एक सर्पाकार रेखा खींच दी थी और कहा था, लो, यह रही तुम्हारी गंगा। वह फ्रांसीसी मानचित्रविद् हिंदुस्तान की आकृति तो बना सकता था, पर यह बताने की स्थिति में नहीं था कि हिंदुस्तान कहां है? पिताजी ने 'कोरिया का भूगोल' लिखा था, वहाँ के पहाड़ों, नदियों, पाटों, निवासियों आदि का विशद् वर्णन किया था, पर वे भी भारत के संदर्भ में यह बताने में कठिनाई में पड़ गए थे कि बैकुंठपुर है कहाँ? हंड्रेड माइल्स फ्राम नो व्हेयर'। अब मैं सौ मील कहाँ से गिनूं? पिताजी ने हताशा में मुझे अपनी आदत के विपरीत डांट दिया था जब तुम बैकुंठपुर पहुंच जाओगे, तब तुम्हें स्वयं पता चल जाएगा। तो बैकुंठपुर कहां है, जानने के लिए मेरे पास बैकुंठपुर पहुंचने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था। स्वर्ग कहां है, जानने के लिए जैसे स्वर्ग जाना अनिवार्य है, वैसे ही बैकुंठपुर कहां है, जानने के लिए मैं भी बैकुंठपुर के लिए चला।

बैकुंठपुर जाने के चार रास्ते थे। 'तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊं मैं' मैथिलीशरण गुप्त जी के लिए आध्यात्मिक प्रार्थना हो सकती है, पर बैकुंठपुर जाने के लिए यदि वे ऐसी कोई प्रार्थना करते तो उनको जो भी उत्तर मिलता और वे जो भी विकल्प चुनते, वह उन्हें कष्ट ही पहुंचाता। यदि वे कलकत्ता की ओर से बैकुंठपुर जाना चाहते तो उन्हें रायगढ़ रेलवे स्टेशन पर उतरना पड़ता। बैकुंठपुर रायगढ़ से काले कोसों दूर था। बस का रास्ता। वह भी कच्चा। मुरूम का। एक ही

अच्छी बात थी कि मार्ग में कोई बड़ी नदी नहीं थी। नदियों पर पुल भले न हों, पर उन्हें चाकपैदल पार करने में बसों को कठिनाई नहीं होती थी। नदी के उथले - धीरे उस पार-प्रवाह पर बांस का चचरा बिछा दिया और बस धीरे, यदि आपको नागपुर, रायपुर या बिलासपुर की ओर से बैकुंठपुर जाना हो तो आप उल्टे रायगढ़ मत चले जाइएगा। आपको पेंड्रा जाना होगा बैकुंठपुर पहुंच सकते थे -, पर जो दिल्ली, जबलपुर, सागर से बैकुंठपुर की यात्रा करना चाहें, उसके लिए मनेन्द्रगढ़ पहुंचना अधिक सुविधाजनक था। [३१]

बचपन के संस्मरण स्मृतियों के रीमिक्स में लेखक ने अपने बचपन की यादों को बांधा है। बैकुंठपुर गांव के दृश्य का वर्णन किया है। अगला अध्याय 'तीन दुकानों की राजधानी' शीर्षक से उन्होंने बताया कि ऐसा नहीं कि वहां पर तीन दुकानें थीं, जिसके अंदर सब कुछ जरूरत का सामान मिल जाता था।

''राजदान लोग तीन भाई थे, तीनों दुकान के बाहर के चौड़ी दालान में बिछे तख्त पर बैठकर या तो ताश खेलते रहते या शतरंज। कोई ग्राहक आता तो उनमें से एक बड़े बेमन से उठता दुकान में भीतर जाता, टार्च जलाकर, अभिशिप्त चीजें निकालता और रजिस्टर में नोट कर लेता। अब चीजें खरीदने के लिए हिज हाईनेस, युवराज बहादुर या दीवान साहब तो आएंगे नहीं, उनके पीया ड्राइवर .ए. मैन। न खरीदने वाला चीजों का दाम पूछता तो राजबंधु उन्हें चीजों के दाम फुट बताते। मोलभाव, कतरब्योंत राज स्टोर्स के स्वभाव में नहीं था। सामंती गुण। - चीज चाहिए, कीमत कुछ भी हो। अभिजातों के लक्षण, विलास की अनिवार्य शर्त। मोलभाव करने से अभिजात्य खंडित होता है और विलास का मजा चला जाता है। भीतर के नीम अंधेरे हॉल में अलमारियों के कांचों में टार्च की रोशनी जगमग करती, उस रोशनी में कश्मीर के आए हुए गोरेचिट्टे-, भूरे बालों और लालिमायुक्त कपोलों वाले, लंबी अंगुलियों और चौड़ी हथेलियों वाले, ऊँची नाक और पतली आवाज वाले राजदान बैकुंठपुर के नहीं, बैकुंठ के प्राणी लगते। दूसरी दुकान पन्नालाल की थी। इतवार को भरने वाले हाट के बाएं कोने पर। तालाब के जरा पहली। पहले वहां दुकान नहीं थी, घर था। पन्नालाल गुप्ता वहाँ रहते थे, सपरिवार, पर जब गुप्ताजी के पिता नहीं रहे और संपत्ति का बंटवारा हुआ तो नमक की आढ़त तो छोटे बेटे को मिली। सामने का घर पन्नालाल को मिला। उसमें उन्होंने आगे वाले हिस्से में एक जनरल स्टोर्स खोल दिया गुप्ता जनरल स्टोर्स के नाम -

से। पहली बार बैकुंठपुर में बाटा के जूते, चप्पलें, बूट पालिश और फुटबाल के पंप मिलने शुरू हुए। वह फुटबाल भी रखता और उसके ब्लेडर भी। अगर फुटबाल पंक्चर हो जाए तो गुडइयर का साल्यूशन भी पन्नालाल के यहां मिल जाता। पन्नालाल की निगाहें बैकुंठपुर में स्काउट और ब्लू बर्ड के आंदोलन पर थीं। तीसरी दुकान बिन्ना की बऊ की थी। बाई सागर के किनारे कच्ची सड़क से लगी हुई थी। बिन्ना की बऊ बुंदेलखंड की थी। शायद गौरझामर की। बिन्ना इनकी लड़की थी। जब वे बैकुंठपुर आई थीं तो बिन्ना गोद में थी, अब वह तेरहचौदह - साल की हो गई थी। सब उसे बिन्ना ही कहते। उसकी मां स्वभावतः बिन्ना की बऊ कहलाती। छत्तीसगढ़ में बस जाने के बाद भी बिन्ना की बऊ अपने साथ बुंदेलखंड की जो संस्कृति लेकर आई थी, वह फीकी भले ही पड़ गई हो, मिटी नहीं थी। वही कछौंटा वाली धोती, वही करधौनी, अमकटना से आम को चार भागों में चीरकर सेंगा अचार डालने की वही आत। वे नकिया कर बोलती, काय बिन्ना की बऊ, का आ कर रईं। ऊंसई बैठे हैं। वे सधवा थीं, मांग में बड़ा मोटा सिंदूर भरतीं। उनके पति साबजी कहलाते, नाम वैसे उनका निरपत मोदी था। वे सूदखोरी भी करते, पर दुकान का सारा काम बिन्ना की बऊ ही संभालती। बेसन, मैदा, दलिया, सत्तू, पिसी धनिया, जीरा, राई, मिर्ची, उपवास के लिए सिंघाड़े का आटा वे स्वयं तैयार करतीं। उनके पिछवाड़े से सबेरे से ही चक्की चलने की आवाजें आने लगतीं। चक्की का काम निबटाकर वे पीछे के दालन में सूपा लेकर बैठ जातीं। फटकना, बीनना, चालना।'' [३२] पर वहाँ के आदिवासियों के लिए कोई वस्तु उपलब्ध नहीं थी। इसी संस्मरण के अंतर्गत 'इतवार का दिन' इतवार हमारे बचपन के उत्सविकरण का दिन होता। इतवार को हम बैकुंठपुर की खोज करते। वहां की प्रकृति, वहां की संस्कृति, वहां का लोक हमें बुलाता। अब जब कोई इतने अपनेपन से बुलाए, तब आप उसकी अनदेखी नहीं कर सकते। आखिर आपको उन्हीं के बीच रहना है। अब प्रकृति का, संस्कृति का, लोक का साक्षात्कार करना है तो घर से बाहर निकलना पड़ेगा न, दैनिकचर्या में कुछ व्यतिक्रम भी होगा ही होगा। इतवार हमारे लिए बैकुंठपुर के गले में गलबहियां डालकर बिताने का दिन होता। अगले इतवार को क्याक्या करना है-, इसकी रूपरेखा बनानी पड़ती। नहीं यार, इस इतवार को अपन दीमक के बमीठे नहीं नाप पाएंगे। सुना बमीटे के पास के खेत में कल एक अजगर घुस गया था। उसने बकरी का पूरा बच्चा क्या निगल लिया, हिलडुल नहीं -

पा रहा। बेचारे धान के खेत में पसरे पड़े हैं। इस इतवार को अपन अजगर को देखने चलेंगे। बमीठों केनापने का काम फिर कभी, पर अजगर तो मुंह अंधेरे नहीं देखा जा सकता। दिन निकलने के बाद ही चिरौंजी और मधुरस बिसाने की तैयारी करनी है। जीतू ठीक कह रहा है। यदि इतवार को सेमल की रुई, अचार की चिरौंजी और मधुरस बिसाने से हम लोग चूक गए तो बात अगले इतवार तक के लिए टल जाएगी। एक हंसमुख नदी की यादें, बड़ी नदियों से मुझे डर लगता है। पता नहीं, उनमें कहां डूबना पड़ जाए। वे पता नहीं बहाकर कहां ले जाएं? गंगा-जमुना-जमुना तो गंगा, नर्मदा, शिवनाथ, रेंड और शिवना में भी डूबने का भय बना रहता है। और-तो-और, बस्तर की अष्टवक्रा इंद्रावती भी इतनी तेज गति वाली है कि पार करते-करते आदमी कोस-दो-कोस आगे निकल जाता है। गेज में आप इस तट पर जहां से उतरिए, दूसरे तट पर ठीक वहीं से पार लगेंगे। भरोसा इसी को तो कहते हैं। गेज जैसी नदियां न डुबाती हैं, न डराती हैं, बस रिझाती हैं, हंसाती हैं, गुदगुदाती हैं। मैं बचपन में तैरना नहीं सीख पाया, क्योंकि गेज में इतना पानी ही नहीं होता था कि उसमें तैरा जा सके। कहींकहीं तो गेट का पाट इतना संकरा - होता कि छलांग लगाओ और पारंगत। गेज के किनारे दो आम्र उद्यान थे। मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार पथ ही मुड़ गया था। आम्र वन में गिलहरियाँ पेड़ों पर अठखेलियां करती हुई मिलतीं, कौए सभा करते हुए दिखते, कहीं-कहीं लड़के दंड-बैठक निकाल रहे होते। सांपों की बांबियां भी होतीं। सीता लट, 'हिबरन पास के बांसों के झुरमुट से एक खपची तोड़ लाया, बोला, 'सीता की लट को इस खपची से छूकर खुद ही देख लेना।' उस दिन तो नहीं, दूसरे दिन मुझे सीता की लट दिखी। मैंने पीछे से उसकी पूंछ को बांस की उस खपची से जरा से छुआ और बाप रे, पता नहीं कहां से, सीता की लटें एक के बाद एक उस वंश स्पर्शित सर्पिणी के आसपास इकट्ठी हो गईं। सीता की लट को और किसी भी लकड़ी से छुआ तो ऐसा नहीं होता, बस बांस की खपची, बांसी की लाठी, बांस की टहनी से ही यह कौतुक होता है। बांस को रामजी का वरदान प्राप्त है। तुम सदैव सीता की लटों की रक्षा करोगे। आज भी बांस सीता की लटों की रक्षा में सन्नद्ध है। सीता छत्तीसगढ़ के कोरिया, चांगपरवार, सरगुजा के वन्य अंचल में इतनी तद्रुप हो गईं लगती हैं कि वहां की जनजातियों ने वहां की वनस्पतियों, वहां के जीवजंतुओं का नामकरण - सीताजी के साक्ष्य पर कर लिया है। सीता की लट फाना, सीता फल फ्लोरा, सीता

खेत में हल की लकीर। सीता छीता स्त्रियों के उदर में प्रसवोपरांत पड़ने वाली धारियां। सीता की अंगुलियां पतली, प्रतनु, सुंदर रही होंगी, बिल्कुल भिंडी जैसी। सरगुजिहा में भिंडी को रमकेरिया कहते हैं। राम जिनसे केलि करते थे। कोरिया की स्त्रियों की अंगुलियाँ आज भी सुंदर होती हैं, उनके बाल आज भी सुंदर होते हैं। वहां की स्त्रियां आज भी बालों पर ककई फिराकर टूटे हुए बालों का गुच्छा बनाती हैं और फेंकने के पहले उन पर थूक जरूर देती हैं। शायद इसीलिए उनके टूट हुए केश आज भी सीता की लट बन जाते हैं वैसे ही लंबे -, चंचल, पिंगलवर्णी। सांप को सीता की लट कहने वाला कवि रहा होगा। निर्विष सीता की लटों को देखकर कोई भी कवि बन जाए, सहल संभाव्य है। द्वंद्वयुद्ध में विषधर करैत की मौत', एक हाथी की अंत्येष्टि, अलगअलग शीर्षकों में वह बैकुंठपुर में बिताए दिनों का भी - दफन की व्यवस्था करने के लिए वे -वर्णन किया है। अपने प्रिय ऐरावत के कफन रात बैकुंठपुर पहुंचे थे। मरे-जबलपुर से रातों हाथी की अंत्येष्टि आसान नहीं होती। उसे मृत्यु स्थल से कौन उठाए, कैसे उठाए? अतः जहां उसकी मृत्यु होती है, उसे वहीं बड़ा भारी गड्ढा खोजकर उसमें बल्लियों की सहायता से ढकेल दिया जाता है। दंताड़े के शव को गड्ढे में धकेलने में दिनभर तो लगा ही होगा। उस दिन हमारी छुट्टी हो गई थी। रामानुजलाल श्रीवास्तव और रियासत के आला अफसर गजराज को अंतिम बिदा देने के लिए वहां मौजूद थे। कफन? हाथी को कफन क्या ओढ़ाना। गाड़ियों नमक ही उसका कफन होता है। नमक भी -'डल्ला'। गड्ढे में नमक के डल्लों की छः इंच मोटी परत बिछाई गई। उस पर दंताड़े को ढकेल-ढकेल कर लिटाया गया। उसके आसपास चारों ओर फिर नमक का आच्छादन ताकि गड्ढा भर जाए। ऊपर से फिर नमक का कफन। इतना नमक हाथी की त्वचा और मांस मज्जा को गलाने के लिए अनिवार्य था। मरा हाथी भी सवा लाख यह सुना तो था - का क्यों होता है, पर इस कहावत का मर्म उस दिन समझ में आया। मरने के बाद हाथी की अस्थियां और दांत बड़े महंगे दामों पर बिकते हैं और उनसे सुंदरियों के गहने बनाए जाते हैं और उन गहनों को रखने के लिए मंजूषाएं। हाथी दांत की मीनारें तो अभिजातों के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी मानी जाती हैं। जब विजय बहादुर सिंह दंताड़ा के शवगर्त को मिट्टी से ढकने की -प्रक्रिया प्रारंभ हुई तब पुलिस के जवानों ने बंदूक उल्टी कर उसे सलामी दी और बैंड मास्टर जॉन साहब ने मातमी धुन बजाई।[33]

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि लेखक रचनात्मकता को महत्त्व देते हैं और इसीलिए जीवन के अनुभवों को रखकर बड़े जतन से स्मृतियों में बांधकर संस्मरण रूप प्रदान किया है। क्रांति जी के संस्मरण के केन्द्र में केवल व्यक्ति ही नहीं है बल्कि उसके साथ-साथ उन्होंने समूचे समाज अपने परिवेश और संस्मरणों का भी चित्रण किया है। इस संस्मरण की विशेषता यह है कि लेखक ने एक ओर सच्चाई का चित्रण किया है। दूसरी ओर समाज के अंदर पनपने वाले विरोधों को भी दिखाते चले हैं। जैन जी का मानना है कि एक अच्छे संस्मरण लेखक को वेद व्यास बनाना चाहिए। इसकी विशेषता यह है कि भाषा सरल एवं पाठकों वाली हो। इस प्रकार यह संस्मरण एक आदर्श संस्मरण है।

18. भगवान दास मोरवाल -

पकी जेठ का गुलमोहर (2016)

हर किसी की जिंदगी में जेठ जैसी कड़ी धूप कभी न कभी आती है और देर तक ठहरती भी है, लेकिन हर कोई उस झुलसा देने वाली तपिश में गुलमोहर बनकर नहीं खिलता, भगवान दास मोरवाल हिंदी साहित्य के ऐसे ही लेखक हैं जो जिंदगी के जेठ में गुलमोहर बन कर खिले हैं।

'पकी जेठ का गुलमोहर' भगवान दास मोरवाल की 'स्मृति कथा' है। यानी वे संस्मरण जिनमें मेवात में बीते बचपन से लेकर राजधानी में पैर जमाने और लेखक बनने तक के लंबे सफर में छोटे-बड़े किस्से दर्ज हैं, इस संस्मरण में आत्मकथा जैसी क्रमबद्धता है मतलब कि बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था के बारे में जीवन के क्रम के हिसाब से ही बताया गया है। आत्मकथा जैसे इस संस्मरण में बहुत जगह लगता है जैसे इसका 'आत्म' भगवान दास मोरवाल न होकर खुद मेवात ही है।[३४]

पूरे संस्मरण में लेखक की भाषा काफी चुटीली और कहीं-कहीं हास्य पैदा करने वाली है। खुद पर हंसकर दूसरों को हँसाने का फन भगवान दास इस किताब में बखूबी दिखाते हैं उदाहरण के तौर पर 'हमारे कस्बे के कॉलेज का नायक, शरीफ खानदानी अल्हड़ युवतियों के सपनों का लुटेरा और हम जैसे नादान-नासमझ किशोरों के हृदय सम्राट संदीप जैसी की छब्बीस इंची बेलबॉटम और इनके साथ पहने जाने वाली सफेद रेक्सीन की बद्दी वाले चप्पलें हम जैसे किशोरों का एक

मात्र सपना बन चुका था। इस सपने को पूरा करने सबसे पहला गौरव मुझे मेरे गैर-कानूनी रूप से किये गये लगभग बाल-विवाह के कारण प्राप्त हुआ था।

भगवान दास मोरवाल हरियाणा के 'कालापानी' कहे जाने वाले मेवात के नगीना कस्बे के रहने वाले हैं, वे मेवात की नस-नस से वाकिफ हैं, बल्कि यदि भगवान दास को मेवात का चलता-फिरता शब्दकोश कह दिया जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, उनके उपन्यास 'काला पहाड़ा' , 'बाबल तेरे देश में' इस बात का सबूत है। इस स्मृतिकथा का एक सशक्त पक्ष यह भी है कि लेखक ने मेवात की खूबियों के साथ-साथ मेवात की खामियों को उजागर किया है, हरियाणा वाले मेवों में पैतृक संपत्ति पर केवल पुत्रों का ही अधिकार होता है। घर के मुखिया (पुरुष) के देहान्त के बाद पत्नी और बेटियाँ उस संपत्ति (जिसमें खेत भी शामिल है) का उपयोग तो कर सकती हैं किन्तु उसे न तो बेच सकती हैं और न ही वह बेटियों के नाम होती है। आजाद भारत में एक कबीलाई स्त्री-विरोधी कानून का ऐसा खौफनाक चेहरा शायद ही कहीं देखने को मिले जैसा मेरे मेवात में देखने को मिलता है।

मेवात हरियाणा का मुस्लिम बहुल इलाका है, जहाँ हिन्दू-मुस्लिम आपस में इतने ज्यादा हिले-मिले हैं कि एक बार को विश्वास करना मुश्किल है। इस किताब में राजेन्द्र यादव का एक खत भी शामिल है जो उन्होंने भगवान दास की कहानी 'भूकम्प' पढ़ने के बाद उन्हें लिखा था, उस खत में भी मेवात की हिन्दू-मुस्लिम एकता का जिक्र करते हुए राजेन्द्र यादव लिखते हैं 'मेरी जानकारी में यह शायद पहली कहानी है जो 'मेवों' के जीवन पर लिखी गयी है, हो सकता है एकाध रांगेय राघव ने भी लिखी हो, मगर यह हिन्दी पाठकों के लिये नयी ही है, क्योंकि नामों से लेकर रीति-रिवाज और धार्मिक विश्वासों में वहाँ हिन्दू-मुसलमान इतने ज्यादा घुले-मिले हैं कि बाहर वालों के लिए उस स्थिति को समझना मुश्किल है।' [३५]

कह सकते हैं 'पकी जेठ का गुलमोहर' कथाकार भगवान दास मोरवाल की स्मृतियों के बहाने मेवात और उसके जैसे अन्य ग्रामीण-शहरी समाजों की परतों की पड़ताल है। अब गाँव पहले जैसे गाँव नहीं रह गये, यह तो हर कोई कहता हुआ दिखता है, पर गाँवों की फिजा बदलने के कारणों पर हर कोई गहराई से बात नहीं करता। मोरवाल गाँवों के इसी बदलते परिवेश की पड़ताल अपनी स्मृति-कथा में करते हुए लिखते हैं 1986 तक आते-आते हमारे घर से दो काम हमेशा के लिए

विदा हो गये, पहला घर का पुश्तैनी धन्धा, माटी के बासन बनाना और दूसरा जिससे घर का आधा खर्च पूरा होता था यानी भैंस रखना, पुश्तैनी धन्धा विदा होने की खास वजह थी एक-एक कर परिवार का एकल हो जाना, इसके अलावा हम तीनों भाइयों में से किसी ने इसमें दिलचस्पी नहीं ली। जबकि भैंसों को न रखने की मुख्य वजह पर्यावरण में तेजी से आया परिवर्तन था, पशु-चारे की किल्लत और दुधारू पशुओं, खासकर भैंसों की बढ़ती बेतहाशा कीमत के चलते, एक आम भूमिहर परिवार भैंसे रखने की कल्पना भी नहीं कर सकता है।

राजनीतिक दलों ने किस तरह से अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए पूरे देश की सांप्रदायिक एकता को खत्म किया है, इसका बहुत सटीक उदाहरण इस किताब में मिलता है। देश की दो मुख्य राजनीतिक पार्टियों की सद्भावना रैली के दौरान मेवात में न सिर्फ हिंसा बल्कि हत्याएँ तक होती हैं। भगवानदास लिखते हैं मेवात में जब लगा कि हालात ठीक हैं उसके लगभग पौने दो महीने बाद 30 जनवरी 1993 को फिर से सद्भाव बहाल करने की गरज से एक तरफ निकाली गई सत्ताधारी कांग्रेस और दूसरी तरफ भारतीय जनता पार्टियों ने गाँधी के इस शहीदी दिवस को मेवात के इतिहास में एक बद्नुमा धब्बे की तरह दर्ज कर दिया। इन दोनों पार्टियों के तथाकथित देशभक्तों और राष्ट्रवादियों की खूनी झड़प के चलते, ठाकुर बाहुल्य कस्बे उजीना में चार लोगों को जिन्दा जला दिया।

जिदंगी यदि जेठ की दुपहरी है तो भगवानदास मोरवाल उसी दुपहरी में खिला गुलमोहर। जो अपने लेखन के चटख रंग से आँखों को सुकून देते हैं, पूरी किताब छोटे-छोटे संस्मरणों की एक लम्बी लड़ी है जिसमें विविध रंगों की यादें चुटीले अंदाज में बयान की गई हैं। हालांकि दिल्ली आने के बाद लेखक द्वारा आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए किये जाने वाले और बतौर लेखक स्थापित होने के संघर्षों से जुड़े संस्मरण इतने ज्यादा हैं कि पढ़ते-पढ़ते कुछ बोरियत सी होने लगती है। इस कारण किताब को अंत तक पढ़ने के लिए जिस ललक की जरूरत है, वह बीच में खो जाती है, किताब के अंतिम हिस्से में मेवात के हिन्दू-मुस्लिम सौहाद्र के खोने के कारणों और उनके प्रभाव को लेखक ने जिस तरह से दूसरे लोगों के खतों के माध्यम से बताया है वह पढ़ने लायक है, कह सकते हैं कि लेखक ने अपनी स्मृतियों के बहाने इस किताब में बहुजातीय ग्रामीण-शहरी समाज का अच्छा समाजशास्त्रीय अध्ययन किया है।

किताब का अंश 'मुझे जब लगा कि वे काफी दूर निकल गये होंगे, मैं दरवाजा खोलकर कमरे में घुस गया, वहाँ एक तरफ चूल्हे में ठंडी होती राख और जली हुई लकड़ी के उनींदे कोयलों को देखकर मुझे अन्दाजा हो गया कि उन्होंने रोटियाँ बना ली हैं। मैंने चूल्हे के पास रखे कनस्तर को खोला तो उसमें रखी रोटियों की ताजा-ताजा गन्ध ने मेरा ईमान डिगा दिया, मेरा अनुमान ठीक निकला, वहीं कनस्तर के पास रखी एल्यूमिनियम की पतीली से ढक्कन हटाकर देखा तो उसमें उठती सब्जी की भाप ने इस अनुमान की पूरी तरह पुष्टि कर दी। मैंने तेजी से कनस्तर से दो रोटियाँ निकालीं उन पर पतीली से निकाल कर चमचा भर सब्जी रखी और जल्दी-जल्दी उन्हें भकोसकर कमरे से बाहर निकल, दरवाजा बन्द कर दिया। चैकन्नी नजरों से देखा तो पाया, आस-पास फैक्ट्री में कोई नहीं है, जल्दी-जल्दी खाने के कारण हिचकियाँ आने लगीं, मैंने फटाफट मुँह साफ किया और अपने कमरे पर आकर पानी पिया, तब कहीं जाकर हिचकियाँ बन्द हुईं।[३६]

पकी जेठ का गुलमोहररू यह किताब स्मृतियों के बहाने गाँव-शहर में आए बदलाव को टटोलती है। इसमें संस्मरणों की रोचक लड़ी के अलावा बहुजातीय ग्रामीण-शहरी परिवेश का समाज शास्त्रीय अध्ययन भी है।

19. पुष्पा भारती -

यादें, यादें और यादें (2017)

एक अत्यंत सुशिक्षित संभ्रान्त मध्यमवर्गीय ब्राह्मण परिवार में मेरा जन्म हुआ था। 1899 में जन्मे मेरे पिता ने बचपन में ही प्लेग की महामारी में अपने माता-पिता को खो दिया। तब बुआ उन्हें अपने घर जयपुर ले गई थी। वहाँ फूफाजी श्री गोपीनाथ पाठक का 'जयपुर प्रिन्टिंग प्रेस' नाम का चौड़ा रास्ता पर अपना छापाखाना था। खूब बड़ा सा महल जैसा घर था। पर उन्हें वहाँ कष्ट था कि उनके इकलौते बेटे दयाशंकर का मन पढाई-लिखाई में बिल्कुल नहीं लगता था। वे कुश्ती और पहलवानी के शौकीन थे और विश्वविख्यात पहलवान राममूर्ति के सर्वाधिक प्रिय शिष्य थे। स्वयं जयपुर महाराजा भी उनके प्रशंसक थे। उन्होंने अपने गुरु राममूर्ति के साथ हाथ-पैर और छाती के बल पर रेलगाड़ी के इंजन को खुबपुर तक चलाया था। चलती मोटर गाड़ी को रोक देना तो उनके बाएँ हाथ का

खेल था। सैकड़ों किताबें उनके छापेखाने पर छपती थीं, पर उन्होंने कभी किसी किताब को उठाकर भी नहीं देखा। पिताजी की बुआ ने मेरे पिताजी को बड़े प्यार से समझा दिया था कि बड़े होकर तुम्हीं को यह प्रेस संभालना होगा। अभी खूब मन लगाकर पढ़ाई पूरी कर लो। पिताजी शुरू से ही पढ़ने में होशियार थे। अब और भी अध्यवसाय और परिश्रम से पढ़ने लगे और प्रतिवर्ष अपनी कक्षा में सर्वप्रथम स्थान लेकर पास होते गए। बी.ए., एम.ए. में आते-आते तो अपने महाराजा कॉलेज के सभी पुराने रिकॉर्ड तोड़कर पास हुए। उनका प्रशस्ति पत्र भी कॉलेज में संगमरमर की पट्टिका पर खुदा हुआ है। एक बात याद आ रही है जब उन्होंने एम.ए. की परीक्षा दी तो उस वर्ष मौखिक परीक्षा लेने पं. रामचन्द्र शुक्ल आए थे। उन्होंने पिताजी को सौ में से निन्यानवे नम्बर दिये। वाईस चान्सलर ने जवाब तलब किया। साहित्य में नम्बर आज तक कभी किसी को नहीं मिले थे। प्रश्न का उत्तरशुक्ल जी ने यों दिया कि चूंकि इस विद्यार्थी को सौ में से एक सौ दस नम्बर देने का अधिकार मुझे नहीं था, इसलिए निन्यानवे नम्बर देकर ही संतोष कर लिया। आप स्वयं इस विद्यार्थी की परीक्षा लेकर देख लीजिये।

पिताजी हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी तीनों भाषाओं के प्रकांड विद्वान थे। जयपुर में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, झाबरमल शर्मा और वनस्थली के संस्थापक पं. हीरालाल शास्त्री से उनकी दाँतकाटी रोटी यानी घनिष्ठ मित्रता थी। कालांतर में उन्हें प्रयास विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष पद पर चुन लिया गया था, पर किन्हीं पारिवारिक कारणों से वहाँ गए नहीं और भारती जी एवं मेरे परम आदरणीय गुरु डॉ. धीरेन्द्र वर्मा विभागाध्यक्ष बने। वर्मा जी की हम दोनों पर सदा बड़ी कृपा बनी रही थी।

मेरे पिताजी बहुत अच्छे अध्यापक और वक्ता थे, कवि थे और आशु कविताएँ भी खूब लिखते थे। मुझे तो पत्र भी कभीकभी कवि-ता में लिखते थे। पिताजी की आठ संतानें हुई, मैं चौथे नम्बर पर थी। दोनों बड़े भाई और बड़ी बहिन विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। मैंने साहित्य का क्षेत्र चुना और छोटे भाई ने दर्शनशास्त्र में रुची ली। छोटा भैया विष्णु ब्रह्मचारी के नाम से बहुत प्रख्यात हुआ। प्रयाग में संगम के तट पर बने सच्चा बाबा आश्रम में उसकी समाधि है। वहाँ उसकी भव्य मूर्ति पर प्रतिदिन पूजन अर्चन होता है और तो सारा जीवन ही साहित्य के अध्ययन को और हिंदी साहित्य के एक अमर हस्ताक्षर डॉ. धर्मवीर भारती को

अर्पित कर दिया। बहुत कठिन डगर थी मेरे पनघट की। बड़े बीहड़ रास्तों से गुजरी मैं, पर अपने भाग्य पर इठलाने का हक पा गई मैं कि मेरे पिताजी का वरदहस्त हमेशा मेरे सिर पर रहा। उनके आशीर्वाद की छाँह ने मुझे हमेशा बल दिया। पर जमाना तो सवालों के घेरे में लेता ही है। मेरे पिताजी को सवालों का सामना करना पड़ता था। पर वे हमेशा मेरा कवच बनकर मेरे साथ खड़े रहते। मुझ पर परिवार व समाज की तरफ से आँच न आने दी। मुझे स्वयं कुछ झेलना ही नहीं पड़ा। अभी पिछले बरस 2014 की बात है, जब मेरी भतीजी आभा शर्मा ने मुझे बताया कि वह जब इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में पढ़ती थी, तब उसने एक दिन मेरे पिताजी से कहा 'बाबा यूनिवर्सिटी में बुआ को लेकर कुछ लोग अनाप-शनाप बातें भी करते हैं।' तो उन्होंने अपनी पोती को समझाया था कि तुम्हारी बुआ जिस रास्ते पर चल रही है, वह न तो डवतंस है न प्उउवतंस है। वह है ।उवतंस उनसे कहो तीनों के सूक्ष्म अंतर को समझ लेंगे तो जान लेंगे कि तुम्हारी बुआ वह कर रही है जो बिरले ही कर पाते हैं, मैं तो बावली बन ही चुकी थी कबीर - पिताजी के सबसे पसंदीदा कवि थे, जब मैं ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में पढ़ती थी तो उन्होंने जिस तरह मुझे कबीर को पढ़ाया था, उन्होंने तभी से मेरी सोच को बहुत प्रभावित किया था और अब तो मुझे समझ में आने लगा था कि सिर उतार कर भूमि पर रखना पड़ेगा, तभी इस पर मैं प्रवेश कर पाऊँगी। [३७]

"जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दरबदर फिरते-
हमारा यार है इसमें, हमन को इततारि क्या?
हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या
भीतरी मन ने समर्पण का वह स्तर छू लिया था
इतना हौसला दे दिया था
'अब तो ऐसी है परी, मन कारू चित कीन्ह।
मरने कहा डिराइये हाथ सिंहयौरा लीन्ह।

रवीन्द्र नाथ टेगौर ने इस स्थिति के लिए कहा था 'सब पेये छेरि देशे' यानी सब पा लिया का देश। इस देश से साक्षात्कार कर लेने के बाद, अब कहीं कोई भटकन नहीं थी, कोई संशय, कोई भय नहीं था और फिर हुआ ऐसा कि मैं पूरी निष्ठा और निश्छलता से अपना जीवन जीती चली गई जब जी रही थी तब - परीकथाओं जैसा !अरे - अब याद करती हूँ तो पाती हूँ - कुछ पता नहीं चला

जीवन जिया है मैंने। स्वप्नों, कल्पनाओं, आशाओं, अभिलाषाओं से भी ज्यादा सुकोमल वायवीय और पवित्र। अब जीवन की इस गाढ़ी संध्यावेला में पुरानी स्मृतियों में डूबना, उतराना और तैरते रहना बहुत अच्छा लगता है। मुझे याद है, कई बरस पहले मैंने किसी अखबार या पत्रिका में एक लेख पढ़ा था, उसमें नामवर सिंह की कही बात मुझे इतनी अच्छी लगी थी कि उन पंक्तियों को मैंने एक विशेष डायरी में उतार लिया था। विष्णु कांत शास्त्री के संस्मरणों की एक पुस्तक का लोकार्पण करते हुए नामवर जी बोले थे ''इस भागदौड़ के युग में हम लोग - यह पूरा देश और खासकर जब से यह हाईटैक और फास्टफूड वाली संस्कृति चल रही है तब से हम लोग स्मृति-भ्रंश के शिकार हो गए हैं। यह देश 'आज' और 'अब' को याद करने में इतना बंधा हुआ है कि अतीत को याद करना पलायन माना जाता है। गीता में भी कहा गया है कि जिस जाति का, जिस समाज का, जिस देश का स्मृतिभ्रंश के विरुद्ध एक प्रति प्रतिरोध है। स्मृति संस्कृति और परंपरा को - सुरक्षित रखती है। आगे वे बोले थे'शास्त्री भगवान जैसी स्मृति मैंने नहीं देखी। इस मामले में वे हाथी हैं। कहते हैं कि हाथी कुछ भूलता नहीं है। अद्भुत स्मरण शक्ति एकएक तथ्य।- इस मामले में उनका दिमाग कम्प्यूटर है।''

फिर कुछ वर्षों पहले जब प्रभाकर, क्षैत्रिय जी वागर्ध के संपादक थे, तब उन्होंने अपने एक संपादकीय में बड़े प्रभावशाली ढंग से इस मुद्दे को उठाया था और पुरजोर शैली में विस्तार से लिखते हुए कहा था कि इस तरह का लेखन कतई कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता, इसके लिए तो लेखन में विशिष्ट तरह की सृजनात्मकता होनी चाहिए। ऐसा लेखन सबके बस की बात नहीं होती।

नामवर जी के बाद अब क्षैत्रिय जी जैसे कला मर्मज्ञ और सुलझे हुए विद्वान ने भी जब ऐसा कहा तो शुक्रगुजार हूँ उनकी कि मेरा आत्मविश्वास दूना हो गया। यों यह भी सच है कि न तो अपने मिश्र भाई विष्णुकांत शास्त्री जैसी विद्वता मेरे पास है, न ही हाथी जैसी स्मरण शक्ति और न कम्प्यूटर जैसी विलक्षण क्षमता। पर कुछ यादें ऐसी जरूर हैं कि पाठकों के साथ साझा कर सकूँ।

लीजिए ये यादें यादें अब आपकी हुई.... !यादें !सहेजेंगे तो मेरा श्रम सार्थक हो उठेगा। [३८]

अगला अध्याय रजा साहब और उनकी पुत्री मरियम के संवेदनशील रिश्ते पर आधारित एक मार्मिक प्रसंग है जो बरबस आँखों को नम कर जाता है।

पंडित विष्णुकांत शास्त्री, कमलेश्वर, कविवर प्रदीप, हरिवंश राय बच्चन, विद्यानिवास मिश्र, जावेद अख्तर, शहरयार, दुष्यंत, सत्यदेव दुबे, माया गोविन्द आदि विद्वान लेखकों, कवियों, रंगकर्मियों और शायरों को बड़ी अंतरंगता से चित्रित किया है पुष्पा जी ने। भारतीय संस्कृति के गहन अध्येता और विद्वान विद्यानिवास मिश्र के साथ हुई उनकी आखिरी मुलाकात का किस्सा विचलित कर जाता है।

पुष्पा भारती जी के इन संस्मरणों से होकर गुजरना एक अलग तरह का पाठकीय अनुभव है। जिस गहन तन्मयता, आत्मीयता और संवेदनशीलता से पुष्पा जी ने अपने जीवन, उससे जुड़े तमाम आत्मीयजनों, भारतीय जी के देहावसान के उपरांत अपनी अवसादपूर्ण मानसिक अवस्था और साहित्य सहवास कॉलोनी के अपने घर का जीवन्त वर्णन किया है वो अपने साथ एक ऐसी यात्रा पर ले जाता है जहाँ हम सब एक दर्शक या पाठक न रहकर सामने चल रहे दृश्यों के पात्र बन जाते हैं। [३९]

20. सुधीर चंद -

बुरा वक्त अच्छे लोग (2017)

अच्छे लोगों की बातें सौभाग्य से हर समय हो सकती हैं, बुरे से बुरे वक्त में भी। पर बुरे वक्त की बात करना आसान नहीं है। हर वक्त उनमें जी रहे लोगों को किसी न किसी तरह बुरा लगता ही है और हर वक्त ही बुरा है तो अपने वक्त के बुरे होने का रोना क्या। पर करें तो करें क्या? दूसरे भी दुखी हैं, इसे जानने से अपना दुख क्या रत्तीभर भी कम हो पाता है-? होते रहे हो सारे वक्त बुरे, हमें तो अपना बुरा वक्त ही झेलना है।

हम की भी बात क्यों करूँ मैं? बेहतर है सिर्फ अपनी करूँ, छोड़कर दूसरों को सोचेन के लिए कि उन्हें कैसा लगता है, यह वक्त। 1962 से शुरू करूँ, जब पहली बार मेरी लिखी चीजें छपनी शुरू हुईं, तो याद आता है कि जो सोचूँ जो चाहूँ, सो लिख लेता था मस्ती में। वह छप भी जाता था बगैर परेशानी के। इतना ध्यान जरूर रखना पड़ता था कि जो चीज लिखी है उसके विषय और शैली के हिसाब से सही अखबार या पत्रिका को भेज दूँ। कभीकभार इतना जरूर हो- जाता था कि कोई चीज एक जगह से वापिस आ गई तो दूसरी जगह छप जाती थी। यह डर तो मन में आता ही नहीं था कि कोई मुसीबत तो नहीं खड़ी हो जाएगी, सरकार या

समाज की ओर से। उसी बीच आपातकाल भी आया, मय सेंसरशिप के। पर लिखना बन्द नहीं हुआ। नए तरीके जरूर सोचने पड़े लिखने के, ऐसे कि बात पहुँच जाए लोगों तक, बगैर सेंसरशिप की गिरफ्त में आए। यानी कि डर आया उस बीच, सरकार का डर। पर यह डर नहीं था कि समाज के ही लोग सरकारी अधिकारियों से अलग तानाशाह का गुणगान करने वाले टूट पड़ेगें आप पर।[४०]

ऐसा ही नहीं था कि जिन विषयों पर लिखा करता था वे ऐसे विषय नहीं थे, जिन्हें आज संवेदनशील कहा जाता है, जिन्हें लेकर आज कोई भी खड़ा हो जाता है, आरोप लगाने की उससे समुदाय की भावनाएँ आहत हुई हैं। मैंने तो अपना शोधकार्य ही भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारम्भिक दौर पर किया था, और अगर आपने सालसाल राष्ट्रवाद के उभरने की-दर- प्रक्रिया पर अपनी नजरें गड़ाए रखी हैं तो मुमकिन ही नहीं है कि आप उसके लुभावने रूप के अलावा कुछ और देख ही न पाएँ। आप चाहें राष्ट्रवाद के भाँड ही क्यों न हो, आपको दिखाई पड़ने लगेगा कि एक शोषणकारी व्यवस्था से, विदेशी हुकूमत से, आजादी दिलाने वाले इसी राष्ट्रवाद का एक और बड़ा घिनौना रूप भी होता है।

कितनी आसानी से राष्ट्रवाद पर उस समय लिख सकता था मैं और मेरे जैसे अनगिनत दूसरे लोग। राष्ट्रवाद पर यानी कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर, स्वतंत्र भारत की संरचना पर, देश के विभाजन और पाकिस्तान के अस्तित्व में आने के अर्थ पर या दूसरे शब्दों में सरलीकृत राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता को परस्पर विरोधी कोटियों में बाँट दिया जाता है, उनके आपसी सम्बन्ध पर धर्म और जाति पर ऐसे ही संवेदनशील विषयों का दायरा और बढ़ा जब राष्ट्रवाद को ही और व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए मैंने उस मानसिकता को समझने की कोशिश की, जो अंग्रेजी राज के स्थापित होने के बाद अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य बौद्धिक आधिपत्य के सर्वग्राही प्रभाव में विकसित हुई। वह मानसिकता जो उन्नीसवीं सदी में उभरनी शुरू हुई और आज हमें परिभाषित करती है। इस सिलसिले में धर्म कानून, साहित्य इत्यादि पर भी खासी नजर डाली।

जो सोचा, जो दिखलाई दिया, जो आदर्श हितकारी लगे और जो मन में आए उन सब पर जब मन हुआ या कोई मौका आया लिखा। कभी कोई अन्देशा, कोई खटका नहीं हुआ। इसमें 1990, 1992 और 2002 भी शामिल है। डर होने लगा 1990 और उसके बाद से। जब भी होता तो पिछली बार से ज्यादा होता। शायद

इसलिए भी कि उस दौरान मैं गुजरात में रहता था, पर तब भी जो लिखा डरे बिना लिखा। जो देखा, जो सोचा, सो ही लिखा, अपने अन्दर उभरते डर की भी बात की, पर डरे बिना।

आज स्थिति बदल गई है। बैठे-बिठाए देशद्रोही घोषित किये जा सकते हैं आप। या कोई संगीन आरोप थोपा जा सकता है आपके ऊपर। कतई जरूरी नहीं कि कोई सरकारी तंत्र इसमें आए। समाज का कोई तबका आपका जीना मुहाल कर सकता है, खत्म भी। तो कोई पढ़नेसोचने की जिन्दगी जीने का-लिखने-, उसके सहारे दो वक्त रोटी पाते रहने का फैसला, शहादत करने के लिए तो नहीं करता। न ही किसी सभ्य समाज या राज्यव्यवस्था को अपने लोगों से ये अपेक्षा करनी - बोलना है तो उसके लिए खतरा उठाना सीखें-चाहिये। सोचना, कुर्बानी के लिए तैयार रहें। यह बात अलग है कि कुछ सोचने, बोलने, लिखने वाले लोग अपने तये यह सब करेंगे। खुलकर या वैसे जैसे कि आपातकाल के वक्त किया था। बड़ी से बड़ी तानाशाही भी विचार की आजादी रोक नहीं पाते। क्या वही हो रहा है हमारे यहाँ इस वक्त? उसकी तैयारी।

ऐसा नहीं है कि पहले, सिवाय आपातकाल के कोई गड़बड़ नहीं थी। पहले भी कभी देश के एक हिस्से में और कभी किसी दूसरे हिस्से में आक्रामक सहिष्णुता उभर जाया करती थी। पिछले ही साल जान से मार दिए प्रख्यात कन्नड़ विद्वान प्रोफेसर काल वर्गी और उनसे पहले मारे गए डॉ. नरेन्द्र, डॉ. भोलकर व गोविन्द पानसेर की हत्याओं ने दिखा दिया है कि असहिष्णुता किस हद तक जाने लगी है। पर इस सम्बन्ध में यह याद कर लेना सही परिप्रेक्ष्य पाने के लिए अच्छा रहेगा कि जान से मार दिये जाने से पूरे 26 साल पहले 1989 में प्रोफेसर कालवर्गी - उनके अपने शब्दों में - वो दिन आत्महत्या करने के लिए मजबूर कर दिये गये थे, कुछ प्रभावशाली लिंगायत। मजबूर कर दिया गया था कालवर्गी को अपना लिखा वापिस लेने के लिए।

तमिलनाडु, पंजाब, कर्नाटक, दिल्ली, गुजरात आदि में अलगअलग वक्त हुई - जोखा यहाँ किया जा सकता -आक्रामक असहिष्णुता की तमाम घटनाओं का लेखा है। पर वैसा किए बगैर भी याद किया जा सकता है कि पहले भी खतरे आए हैं। हमारे आजाद देश में विचार की आजादी पर। फिर भी सारे देश को लेकर कहा है

पूरी ईमानदारी के साथ कि आजादी के बाद से विचार कभी ऐसे व्यापक, सुनियोजित और निरन्तर खतरे में नहीं रहा है जैसा कि आज है।

आज जबकी तरहतरह की समस्यायें हैं देश और दुनिया के सामने। जब - दी सवालोंउन बुनिया के हल फिर से ढूँढने की जरूरत है जिनके जवाब में अब तक मान रहे थे कि हमको मिल चुके हैं। सवाल विकास के, सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक न्याय के, व्यक्तिराज्य के सम्यक सम्बन्ध के-समाज-, आर्थिक-धार्मिक सत्ता के दुरुपयोग के-राजनीतिक, अबाध बढ़ रही विषमता के बीच शोषितों-दलितों की बढ़ती बेबसी के।

बुरा वक्त और बुरा हो जाता है जब बुनियादी सवालों को सुलझाने की बुनियादी जरूरत समाज और व्यवस्था को -बोलने की आजादी-लिखने-सोचने - खतरा लगने लगे। जब राष्ट्रवाद, धर्म, विकास आदि बहस के मुद्दे न रहकर पवित्र धारणाएँ हो जाएँ। स्वयं सिद्ध तर्कातीत धारणाएँ जिनकी पवित्रता को बनाए रखने का हर प्रयत्न होता रहे, राष्ट्र की एकता, प्रगति और सांस्कृतिक समृद्धि के नाम में, जबकि उसका असल मकसद हो सशक्त व्यवस्थित स्वार्थों की सिद्धि।

सो सोचें इस बुरे वक्त के बारे में, कोशिश करें कि इस बुरे वक्त को बुरा बनाए रखने वाले तमाम आकर्षक झाँसों में न आएँ और आनन्द लें, उन अच्छे लोगों का जिनका जिक्र है इस छोटे से संग्रह में। याद करें उन अच्छे लोगों को जिनको जानने मिलनेसुनने का सौभाग्य मिला है आपको।-

अन्त में जैसा कि पहले चिट्ठियों में लिखते थे थोड़ा कहा बहुत समझना। और हाँ एक स्पष्टीकरण भी थोड़ी माफी के साथ। यहाँ संग्रहीत पहले सात अपेक्षाकृत लम्बे लेख और 'हिन्द स्वराजदो सवाल। विभिन्न पत्रिकाओं के आग्रह : पर लिखे गये थे और बाकि सारे'जनसत्ता' में एक नियमित स्तम्भ के लिए अलगइनमें :र्यताअलग समय पर लिखे जाने के कारण अनिवा- कुछ पुनरावृत्तियाँ हो गई हैं। इनको हटाना संभव नहीं था, चूंकि वैसा करने से सम्बन्धित लेख का प्रवाह और उसका तर्क दोनों ही किंचित गड़बड़ा जाते हैं। [४१]

अपने समय की परिवर्तनकारी घटनाओं की निशान देती और उसकी तार्किक अभिव्यक्ति आसान कार्य नहीं। सुधीर अपने लेखों के माध्यम से समकालीन इतिहास लेखन का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। यह सुखद है कि वह विभिन्न अनुभवों के बरबस स्वयं के अनुभवों को रखकर क्रमवार देखने, समझने और

सोचने की मांग करते हैं। मंशा बस इतनी कि अपने समय की चेतना और मानसिकता को पकड़ पाएं, भविष्य के लिए। सुधीर संवाद रचाते हैं। बिना किसी वैचारिक आग्रह के। असहमत होने के लिए बहुतकुछ है पुस्तक में। बहुत कुछ - जोरदार बहस करने को भी। लेखक भी तो यही चाहता है। एक नितांत निजी असहमति और उस असहमति की बेबाक प्रस्तुति। बिना किसी भय के। यहाँ कुछ भी नहीं विचारों की रक्षा जैसा, तभी तो वह लिखते हैं पूरी ईमानदारी और - गंभीरता से किए अध्ययन के बाद, जो सही है उसे बोलने लिखने को तैयार रहो, विचारों के निमित्त होने के नाते, विचारों को मिली सजा के भोगार्थी।[४२]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (अध्याय पाँच)

[१] डॉ. मनोहर श्याम जोशी 'लखनऊ मेरा लखनऊ' पृष्ठ संख्या 24, 12, 51

[२] डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र 'नेह के नाते अनेक' पृष्ठ संख्या 30, 22

[३] डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र 'नेह के नाते अनेक' पृष्ठ संख्या 64

[४] डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र 'नेह के नाते अनेक' पृष्ठ संख्या 73

[५] डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र 'नेह के नाते अनेक' पृष्ठ संख्या 79, 80

[६] डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी 'नंगा तलाई का गाँव' पृष्ठ संख्या 1, 19, 11

[७] डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी 'नंगा तलाई का गाँव' पृष्ठ संख्या 20

[८] डॉ. विष्णुकांत शास्त्री 'पर साथ साथ चल रही याद' पृष्ठ संख्या 132, 134

[९] डॉ. केशव चन्द्र वर्मा 'सुमिरन को बहानो' पृष्ठ संख्या 10, 19, 20

[१०] डॉ. केशव चन्द्र वर्मा 'सुमिरन को बहानो' पृष्ठ संख्या 25, 26

[११] डॉ. विष्णु प्रभाकर 'यादों की छाव में' पृ.सं. 22-23

[१२] डॉ. पंडित सूर्यनारायण व्यास 'यादें' पृष्ठ संख्या 24, 25

[१३] डॉ. पंडित सूर्यनारायण व्यास 'यादें' पृष्ठ संख्या 36, 37

[१४] डॉ. काशीनाथ सिंह 'घर का जोगी जोगड़ा' पृष्ठ संख्या 18

[१५] डॉ. काशीनाथ सिंह 'घर का जोगी जोगड़ा' पृष्ठ संख्या 28, 29, 19

[१६] डॉ. काशीनाथ सिंह 'घर का जोगी जोगड़ा' पृष्ठ संख्या 47, 48, 49

[१७] डॉ. रविन्द्र नाथ त्यागी 'वसंत से पतझर तक' पृष्ठ संख्या 20, 21

[१८] डॉ. जे.एन.कौशल 'दर्द आया था दबे पाँव' पृष्ठ संख्या 35, 36

[१९] डॉ. पद्मा सचदेव 'लता मंगेशकर: ऐसा कहाँ से लाऊँ' पृष्ठ संख्या 14, 15, 35

[२०] डॉ. पद्मा सचदेव 'लता मंगेशकर: ऐसा कहाँ से लाऊँ' पृष्ठ संख्या 20

[२१] डॉ. पद्मा सचदेव 'लता मंगेशकर: ऐसा कहाँ से लाऊँ' पृष्ठ संख्या 158

[22] डॉ. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' 'उग्र का परिशिष्ट' पृष्ठ संख्या 21, 34

[23] डॉ. राजेन्द्र जोशी 'नंद बाबा फकीर स वजीर' पृष्ठ संख्या 15, 16, 23

[24] डॉ. राजेन्द्र जोशी 'नंद बाबा फकीर स वजीर' पृष्ठ संख्या 27, 28

[25] डॉ. रामशरण जोशी 'अपनों के पास अपनों से दूर' पृष्ठ संख्या 20, 30, 32, 36

[26] डॉ. रामशरण जोशी 'अपनों के पास अपनों से दूर' पृष्ठ संख्या 43, 44

[27] डॉ. उषा महाजन 'जिन्हें मैंने जाना' पृष्ठ संख्या 68, 69, 84, 85

[28] डॉ. कृष्णा सोबती 'हम हशमत' पृष्ठ संख्या 12, 13, 39

[29] डॉ. कृष्णा सोबती 'हम हशमत' पृष्ठ संख्या 29, 30, 61, 62

[30] डॉ. शिवेन्द्र कुमार सिंह 'यह जो पाकिस्तान' पृष्ठ संख्या 36, 37, 29

[31] डॉ. कांति कुमार जैन 'बैकुंठपुर में बचपन' पृष्ठ संख्या 13, 16, 17

[32] डॉ. कांति कुमार जैन 'बैकुंठपुर में बचपन' पृष्ठ संख्या 25, 26, 29, 30

[33] डॉ. कांति कुमार जैन 'बैकुंठपुर में बचपन' पृष्ठ संख्या 45, 49, 55

[34] डॉ. भगवान दास मोरवाल 'लौटकर आना नहीं' पृष्ठ संख्या 6, 7

[35] डॉ. भगवान दास मोरवाल 'लौटकर आना नहीं' पृष्ठ संख्या 10, 11

[36] डॉ. भगवान दास मोरवाल 'लौटकर आना नहीं' पृष्ठ संख्या 25, 26

[37] डॉ. पुष्पा भारती 'यादें, यादें और यादें' पृष्ठ संख्या 8, 9

[38] डॉ. पुष्पा भारती 'यादें, यादें और यादें' पृष्ठ संख्या 10, 11

[39] डॉ. पुष्पा भारती 'यादें, यादें और यादें' पृष्ठ संख्या 111, 161

[40] डॉ. सुधीर चन्द 'बुरा वक्त अच्छे लोग' पृष्ठ संख्या 2, 3

[41] डॉ. सुधीर चन्द 'बुरा वक्त अच्छे लोग' पृष्ठ संख्या 3, 4

[42] डॉ. सुधीर चन्द 'बुरा वक्त अच्छे लोग' पृष्ठ संख्या 84, 85

षष्ठम् अध्याय

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणात्मक साहित्य में शिल्प-संधान

1) शब्द-योजना

2) वाक्य-योजना

3) भाषा-शैली

उपसंहार

षष्ठ अध्याय

इक्कीसवीं सदी संस्मरणात्मक साहित्यिक में शिल्प संधान

''शिल्प'' नाम से ही यह आभास हो जाता है कि यह एक कुशल और कर्मठ व्यक्ति का कार्य है, जिसमें वह अपने कौशल एवं कर्मठता को अन्तिम परिणति तक पहुँचाता है। शिल्प एक विधान है, जो सभी अंगोंउपांगों को सुन्दर रूप प्रदान - ।करता है[१]

भाषा में 'शिल्प' से तात्पर्य है कि शब्द का सफलतापूर्वक नियोजन करना जिससे वाक्य का प्रयोजन अधिक प्रभावी एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो। अतः कहा जा सकता है कि 'शिल्प' के अन्तर्गत वे सभी तत्व समाहित हो जाते हैं, जिन्हें भाषा के अंग के रूप में माना जाता है। शिल्प के अन्तर्गत पद, छन्दयोजना-, अलंकार, शब्द शक्ति, लोकोक्तियों एवं मुहावरों आदि का समावेश रहता है तथा इसकी परिणति रस निष्पत्ति के रूप में होती है। गद्य के इन समस्त अंगों का प्रयोग लेखक को सृजनात्मक एवं शिल्पात्मक रूप प्रदान करता है, इसलिए शिल्प भाषा का महत्त्वपूर्ण अंग होता है।

शिल्प का अर्थ -

''शिल्प'' अंग्रेजी के 'टेकनीक' शब्द का बोध कराता है। 'टेकनीक' का अर्थ है - ढंग, विधान, तरीका जिसके माध्यम से किसी लक्ष्य की पूर्ति की गई हो।[२]

शिल्प विधान में प्रत्येक रचना की उन सभी प्रमुख बातों का लेखाजोखा - है रखता, जिसके आधार पर रचना मूर्त रूप ग्रहण करती है। गद्य के अन्तर्गत शिल्प का महत्त्व गद्य के इतिहास से स्पष्ट होता है।

''काव्य के रूप तथा वस्तु दोनों तत्वों में निहित होने के कारण 'शिल्प' शब्द को अधिक व्यापक अर्थों में ग्रहण किया जाता है।''[3]

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में काव्य का विश्लेषण शिल्प विधान प्रक्रिया के अंगों के आधार पर सर्वप्रथम हो चुका था, इसलिए शिल्प को प्रभावशील बनाने के लिए 'शैली' का दामन थामा जाता है, क्योंकि 'शैली' का अर्थ है -बात को अलग - ली होती है। अलग तरीके से कहने का ढंग। प्रत्येक लेखक की अपनी अलग शै प्रत्येक संस्मरणकार का अपने अथवा दूसरे के व्यक्तित्व को अंकित करने का

अपना एक अलग ढंग होता है। अतः किसी ने एक शैली को अपनाया तो किसी ने दूसरी शैली को।

शिल्प और कल्पना -

"शिल्प" के समान ही कल्पना भी व्यक्ति की मानसिक प्रक्रिया से सम्बन्ध रखती है। साधारण बोलचाल के अन्तर्गत "कल्पना" शब्द का व्यवहार व्यक्ति द्वारा अपने मन में पदार्थ अथवा क्रिया विशेष के बिम्ब को अंकित कर लेने के व्यापार के लिए होता है।

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने अपने संस्मरणों में कल्पना का प्रयोग कम किया है और उनमें इतिहास और यथार्थ की प्रधानता को सर्वोपरि रखा है, जिस कारण इस युग के संस्मरण आदर्शपरक न होकर यथार्थपरक सिद्ध होते हैं। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के संस्मरण का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

"इन कथाओं के पात्र मेरे लिए कभी कोरे पात्र नहीं रहे - वे मेरे निकट सदा सजीव बन्धु रहे हैं। मैंने उनके साथ बातें की हैं, मैं उनके साथ रोया हँसा हूँ और हँसी की बात नहीं, फाँसी भी चढ़ा हूँ, जीते जी जला भी हूँ! शायद कोरा अहंकार ही हो, पर मुझे तो सदा यही लगा है कि वे इतिहास के (मारिसेट और सोवंज एक फ्रेंच कहानी के) कंकाल थे मैंने उन्हें अपना रक्त-मांस देकर यों खड़ा कर दिया है। "

भावुक साहित्यकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ स्मरणीय अनुभूतियों को सहेज कर अपनी कोमल कल्पनाओं से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक सांकेतिक बोली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट बनाकर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त करता है, तब उसे 'संस्मरण' कहते हैं। यही व्यंजनामूलक सांकेतिक शैली इसे रोचक बनाती है।[४]

शिल्प-विधान –

"शिल्पविधान का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग भाषा है। भाषा ही व्यक्ति के - मनोभावों को अभिव्यक्ति रूप देने में सबल व उत्कृष्ट साधन मानी जाती है। भावबोधगम्यता को सहज विधि से संप्रेषित करने हेतु अलग ही शिल्पविधान - अपनी विशिष्ट शैली रखता है।"

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने संस्मरण विधा को एक नई दिशा प्रदान की है। संस्मरणकार संस्मर्ण्य व्यक्तियों एवं सन्दर्भों को शब्दों के माध्यम से उस ऊँचाई तक पहुँचाना चाहता है, जहाँ ध्वनियों के सभी रूप स्पष्ट हो जाते हैं। उनके शब्दों में केवल हलचल ही नहीं है बल्कि प्रज्ञाशिखर तक जाने का संकल्प भी निहत है।'जो बुलाए न बने' संस्मरणकार कृति की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"अछूतों के इस गाँव में पहली बार जो देखा वह फिर कभी दिखने में न आया। अपने-अपने काम में तन-मन से जुड़े चेहरों पर खुशी की चमक..... जो ईमानदारी और मेहनत के बाद ही कहीं दिखने में आती है। उस दिन देखा कि घरों के आगे धौकनियों पर अंगारे दहक उठे हैं। कहीं लोपा तप रहा है, कहीं गरम लोहे को घन से पीटने की आवाजें सुनाई पड़ती हैं।... तब लगा कि गाँवों के लिए सोना-चाँदी और पैसे-धेले से बढ़कर लोहे की जरूरत है, जिससे सबके काम बनते हैं।" [५]

"उस समय भी हरिहर बाबू जैसे तरुण के अटूट विश्वास को देखकर मन में बहुत श्रद्धा पैदा होती थी। खासकर उन लोगों को याद करके तो और भी मन में करुणा आती है, जिन्होंने अपनी जवानी के अनमोल वर्ष देश की आजादी के लिए लड़ने में लगाये। उन्हें जीवन में कोई वैसी कीर्ति नहीं मिली; और हरिहर बाबू की तरह कितनी ही गुमनाम समिधायें हमारे देश के स्वतंत्रता यज्ञ में चुपचाप पड़ीं। वह व्यर्थ नहीं गई, उन्होंने उस आग को प्रज्ज्वलित रक्खा, जो अन्त में अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने में सफल हुई।"

अतः शिल्पविधान की रचना करने में जिन बातों का प्रमुख रूप से ध्यान दिया जाता है, वह है बोलचाल की भाषा एवं उसमें सही शब्द का प्रयोग। इस युग में सर्वअभ्युदय की जो भावना है-, उसको साकार करने के लिए संस्मरणकारों ने सामान्य भाषा का प्रयोग किया है। शिल्प विधान के उदाहरण स्वरूप-'दीप जले, शंख बजे' .... समस्मरणात्मक कृति की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -[६]

"निजी जीवन में मिलनसार और मधुर होते हुए भी, सार्वजनिक जीवन में वे ज्वालामुखी थे। राजनीतिक जीवन में उन्हें सोचधीरे की नीति -समचकर धीरे-पसन्द न थी।'जोर की तरह एक झपाटे' में दुखी मन का तख्ता उलट देने की वृत्ति ही उनमें थी। वे गदकाफरीपटेबाजी के भानदार खिलाड़ी थे। चोट खाना जानतेथे, चोट करना जानते थे, झपाटा ही उनका नम्बर एक दाँव था।" [७]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने अपने संस्मरणों में सुन्दर शिल्प-विधान का समायोजन किया है। वास्तव में इस युग के ढाला है क्योंकि वे संस्मरणकारों ने जीवन को संस्मरणों में स्मृति-चित्रों में जीते हैं और उन्हीं को अभिव्यक्ति देते हैं।

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणों में बिम्ब विधान

बिम्ब का अर्थ -

'बिम्ब' अंग्रेजी के इमेज शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जो काव्य को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए किया जाता है। काव्य में बिम्ब को वह शब्द चित्र माना जाता है जो कल्पना द्वारा एन्द्रिक अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। डॉ . - सुरेन्द्र माथुर ने बिम्ब को स्पष्ट करते हुए कहा है"बिम्ब अंग्रेजी शब्द 'इमेज' का पर्याय है। सामान्य रूप से 'बिम्ब' भाषा प्रयोग 'छाया' प्रतिच्छाया तथा अनुकृति के लिए किया जाता है। आज इसका प्रयोग व्यापक है। मनोविज्ञान में इसे मानसिक पुनर्निर्माण के अर्थ में लिया जाता है। बिम्ब चेतना स्मृतियाँ हैं, जो विचारों की मौलिक उत्तेजना के अभाव में उस विचार को सम्पूर्ण या आंशिक रूप से प्रस्तुत करती हैं।" [८]

केदारनाथ सिंह ने अपनी पुस्तक 'कल्पना और छायावाद' में बिम्ब को यथार्थ का एक ऐसा सार्थक टुकड़ा माना है जो अपनी ध्वनियों और संकेतों से भाषा को अधिक संवेदनशील और पारदर्शी बनाता है। वह अविधा की अपेक्षा व्यंजना पर आधारित होता है। संस्मरणकार बोली के माध्यम से संस्मरण को प्रभावशाली, आकर्षक, सजीव और स्पृहणीय बनाता है। भाव एवं विषय के मूर्त चित्रण के अवसर पर युग के संस्मरणकारों ने सुन्दर बिम्बविधान का प्रयोग किया है।-

जिस प्रकार हिन्दी-साहित्य में शिल्प-विधान की सम्पूर्ण विशेषताओं का होना महत्त्वपूर्ण है, ठीक उसी प्रकार के बिम्ब-विधान का भी संस्मरण में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन बिम्बों के माध्यम से संस्मरणकार मानव-जीवन के सभी तथ्य, चरित्र एवं भावनाओं को लाता है, इसलिए यह कहा जाता है कि संस्मर्ण्य पात्र या वस्तु का चित्र सामने आना ही बिम्ब है। संस्मरण में बिम्बों का प्रयोग अभिव्यक्ति एवं भावों में संवेदनशीलता को समाविष्ट करने के लिए करते हैं।

इक्कीसवीं सदी के सभी संस्मरणकारों के संस्मरणों के बिम्बों की विषय वस्तु संस्मर्ण्य-पात्र की परिस्थितियों पर आधारित है। संस्मरणों में अर्थवत्ता एवं ग्राहित का प्रभाव बिम्बों के माध्यम से ही हुआ है। विष्णु प्रभाकर के संस्मरण 'यादों की छांव में' संस्मरणात्मक कृति का एक उदाहरण द्दष्टव्य है -

"बचपन में बालक को जो संस्कार मिलते हैं, वे ही उसके भावी जीवन का निर्माण करते हैं। नाना की रोमांचक यात्राओं ने उनमें संघर्ष और साहस की क्षमता पैदा की तो नानी और मामियों, विशेष कर छोटी मामी के प्यार के कारण उनके मन में वह कोमलता रचबस गई थी-, जिससे वे कभी कट्टरपंथी नहीं बन सके। विरोधी के प्रति उनके मन में उपजी कटुता कभी स्थायी भाव न बना सकी। [१]

बिम्ब- विधान का स्वरूप-

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकार बिम्ब धर्मी हैं। उनके संस्मरणों में बिम्ब का संसार अत्यधिक विस्तृत एवं व्यापक है। इसलिए उन्होंने बिम्ब की महत्ता पर अधिक जोर दिया है क्योंकि संस्मरणकार की अनुभूति को बिम्ब ही अभिव्यक्त कर सकते हैं। इसलिए संस्मरणकार के संस्मरण में बिम्ब जितना सार्थक और सजीव होगा, उतनी ही संस्मरणकार की अभिव्यक्ति अपने संस्मर्ण्य व्यक्ति के प्रति सार्थक और सजीव होगी।

संस्मरण में बिम्बविधान तो होता है-, किन्तु पूर्णरूपेण नहीं क्योंकि बिम्ब का आविर्भाव कल्पना से होता है, जबकि संस्मरण में कल्पना का प्रयोग कम ही किया जाता है। उसमें यथार्थ तत्व की प्रधानता रहती है, फिर भी संस्मरणकार अपने संस्मरणों में भावात्मकता को परिलक्षित करने के लिए बिम्बों का आंशिक प्रयोग करता है।

बिम्बविधान का प्रमुख कार्य है-, रचना में संवेदनात्मकता लाना। बिम्ब केवल शब्दों से ही नहीं बनते अपितु यह यथार्थ संवेदना से भी बनते हैं क्योंकि पाठक का संस्मरण की गरिमा में डूबकर उसका रसास्वादन करना यह संवेदना के द्वारा ही संभव होता है। संस्मरण का पूर्ण भाव बिम्बों के द्वारा ही निर्धारित होता है। बिम्ब के द्वारा ही वह अमूर्त और विचारों को बड़ी सजीवता से प्रस्तुत करता है।

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणों में बिम्ब विधान के प्रकार -

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों की रचनाओं में अनेक प्रकार का बिम्बों के प्रयोग दिखाई देता है। जिन्हें उन्होंने अपनी मधुरकटु स्मृतियों से सहेजा है-, जिनका वर्णन निम्नवत है-[१०]

1. दृश्य बिम्ब -

दृश्य-बिम्बों की परम्परा भी अत्यन्त विकासशील है। इस प्रकार के बिम्बों में एक ही वस्तु के लिए श्रृंखलाबद्ध उपमानों के योजना की जाती है। इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों में दृश्य-बिम्बों का प्रयोग बहुधा जगह देखने को मिलता है। इन पंक्तियों में संस्मरणकार ने रघुवीर सहाय के व्यक्तित्व का दृश्य अंकित किया है - रघुवीर तो बेरोजगारी के दौर से गुजरने के बाद हाल ही में आकाशवाणी के हिन्दी समाचार विभाग में उप-सम्पादक नियुक्त हुआ था और अपने चचेरे भाई के साथ रहा करता था। मैं रघुवीर सहाय का यह आभार कभी नहीं भूल सकता कि केवल परिचित होते हुए भी उसने मेरा इस तरह स्वागत किया मानो मैं उसका मित्र ही नहीं, अनुज भी होऊँ। उसी ने मेरे लिए लिखकर पैसा कमाने के रास्ते दिल्ली में खुलवाए और रहने को वह जाफरी दिलवायी जिसमें बैठे हुए उस दिन हम वर्षा के थमने का इन्तजार कर रहे थे। वर्षा थमी और हम सामने लालाजी की दुकान में जाकर पकौड़ियों के अभाव में समोसे खाने लगे। दिल्ली में मैं और रघुवीर परिचित मित्र इतनी जल्दी बन गये कि आज सोचकर आश्चर्य होता है।

2. भावात्मक बिम्ब -

भावात्मक बिम्बों के अन्तर्गत सुखदुख-, प्रेम मिलन, विवाह, बुढ़ापा, यौवन, अश्रु, आशानिराशा आदि अनेक शब्द आते हैं। इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने - अपने संस्मरणों में इस बिम्ब का प्रयोग बड़ी सजीवता से किया है। रवीन्द्रनाथ त्यागी के संस्मरण संग्रह‘बसंत से पतझर तक’ कृति में भावात्मक बिम्ब का एक उदाहरण द्दष्टव्य है -

मेरठ में मैंने तीन बार मकान बदला। ऊपर बतायी कोठी के बाद मैं एक कोठी के पीछे बनी बैठकनुमा बैरक में रहा। मैन कोठी में एक अधेड़ सज्जन रहते थे जिनकी पत्नी बहुत कम उम्र की थी और गजब की हसीन थी। वह जब भी मुझे मिलती थी, बड़े प्यार से मिलती थी और हमेशा कहती थी कि तुम कितने जवान

हो। मैं उसका दर्द समझता था मगर कुछ कर नहीं कर सकता था। एक तरफ मेरी दबंग पत्नी थी और दूसरी तरफ उस युवती का अधेड़ पति था जो हर वक्त अपनी जेब में तमंचा रखता था। मैं जब भी उस स्त्री रत्न को देखता था तभी मुझे रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक कवितांश याद आ जाता था। हिन्दी में उन पंक्तियों का रूप कुछ इस प्रकार था -

प्रहर शेष में अरुणज्योति से रंजित था मधुमास।-
तेरे नयनों में देखा था अपना सत्यानाश।।

इसके बाद मैंने जो कोठी बदली वह सर्वश्रेष्ठ थी। उसमें खूब आम लगते थे और उनका हम कसकर सेवन करते थे। आँधी आने पर छोटी-छोटी अम्बियाँ लगती थीं और सुमित्रानन्दन पंत द्वारा लिखित पंक्तियाँ अनायास ही याद आ जाती थीं –

तुम मुग्धा की अतिभाव प्रवण
अम्बियों से उभरे थे उरोज
चंचल प्रगल्भ है समुख उदार
मैं सलज तुम्हें था रहा खोज

इस कोठी के मालिक एक सरदार साहब थे, जिनके पास काफी सम्पत्ति थी। उनकी एक मात्र सन्तान लड़की थी जो विलायत में रहती थी। कोठी के ये मालिक विधुर थे और अपना सारा समय मुकदमेबाजी में गुजारते थे। बड़े चौकन्ने पुरुष थे पर फिर भी हमेशा परेशानियों से घिरे रहते थे। उनके तनावपूर्ण जीवन को देखकर मैं फिराक साहब का एक शेर हमेशा याद करता था।

हुशियारी का कौन ठिकाना
जालिम कुछ तो धोखा खा लैना

मेरठ से मेरा तबादला पटना हो गया। वहाँ मैं एक ऐसे सज्जन की कोठी में रहा जो नितान्त सुन्दर, सम्भ्रान्त, गम्भीर और शालीन थे। पेशे से वे बैरिस्टर थे। तमाम गुणों के बावजूद उनकी समाजवादी पत्नी एक खानसामा के साथ भाग गयी थी। बकौल चाणक्य के, स्त्री के चरित्र को तो स्वयं ब्रह्म भी नहीं जानते, इनसान की तो विसात ही क्या है।

संक्षेप में संस्मरण साहित्य में भाषा में क्लिष्टता एवं सूक्ष्म इन्द्रिय बोधों को प्रकट करने के लिए भावात्मक बिम्ब का प्रयोग किया जाता है, इस प्रकार कहा

जा सकता है कि संस्मरणकार ने अपनी स्मृति से बड़ा ही मार्मिक, भावात्मक बिम्ब का सृजन किया है। [११]

3. वैचारिक बिम्ब -

वैचारिक बिम्ब का सम्बन्ध बुद्धि एवं ज्ञान-विज्ञान से होता है, अर्थात् इसका सम्बन्ध बौद्धिक बिम्बों से है। संस्मरणकार जब अपनी स्मृतियों को वैचारिकता से प्रस्तुत करता है तब वैचारिक बिम्ब का सृजन होता है।

माखनलाल चतुर्वेदी के संस्मरण-संग्रह 'समय के पाँव' कृति में वैचारिक बिम्ब का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

आन्दोलन प्रियता मानो उसके स्वभाव में भरी हुई थी। वे महाराजा शिवाजी के गुरु स्वामी रामदास के इस कथन के जाज्वल्य प्रतीक थे कि -**सामर्थ्य आहे चल वलीचे**

जे जे करील त्याचे,
परन्तु ते थे भगवेता चे,
अधिष्ठान पाहिजे।

अर्थात् आन्दोलन में सामर्थ्य है, उसे जो कर ले जाए वह सामर्थ्यशील है। आन्दोलन करते समय केवल भगवान का अधिष्ठान चाहिए। यदि इस छन्द के आइने में देखें तो लोकमान्य तिलक के जीवन की हलचलों का गुप्त सूत्र मिल जाता है, लोग यह सोचते हैं कि स्वर्गीय लोकमान्य केवल राजनीतिक हलचल के जनक थे। हाँ सर वैलेन्टाइन शिरोल जैसे कड़वी हड्डियों के अंग्रेज ने तो लोकमान्य को फादर ऑव इंडियन अन्रेस्ट अर्थात् भारतीय अशान्ति का जनक ही लिखा था, किन्तु जिस तरह गुलाब का पौधा लड्डुओं और हलवे में से नहीं किन्तु बीज से ही उगता है।

काँटों का ही शरीर वरण करता है, प्रतिकूल ऋतुओं में भी हरियाता है और मस्तक पर कलियों के मुकुट रखकर भी शरीर पर कंटकाकीर्ण भुजाओं को भोगता है, उसी तरह प्रत्येक महापुरुष और लोकमान्य भी, संकटों से खींचकर ही अपने युग का निर्माण कर सके। लोकमान्य तिलक केवल क्रान्तिकारी थे, जिन्होंने संघर्ष उत्पन्न किये हों और फिर चुपचाप अनुकूल परिस्थितियों की प्रतीक्षा में छिप गये हों।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने अपने संस्मरणों में वैचारिक बिम्बों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। [१२]

4. वस्तु बिम्ब -

वस्तु-बिम्ब का सम्बन्ध वस्तु तक ही सीमित रहता है। वस्तु-बिम्ब की छटा इस युग के संस्मरणकारों के संस्मरणों में दिखाई पड़ती है। इसमें संस्मरणकार अपने संस्मर्ण्य व्यक्ति के साथ वस्तु का चित्रात्मक वर्णन करता है। 'यह जो पाकिस्तान' शिवेन्द्र कुमार सिंह का संस्मरण की प्रस्तुत पंक्तियाँ में उदाहरण दृष्टव्य है।

अब हम मैनचेस्टर ऑफ पाकिस्तान में थे लायलपुर कहिए या फिर फैसलाबाद। लाहौर या कराची के बाद पाकिस्तान का तीसरा सबसे बड़ा शहर, शहर ऐसा मानो उत्तर प्रदेश के कानपुर शहर में घूम रहे हों। ट्रैफिक इतना कि एक बार फंस गये तो फिर गये काम से। फैसलाबाद में ज्यादा होटल नहीं थे जहाँ तक मुझे याद है हमारे होटल का नाम था होटल ग्रीन। उस दौर पर गये लगभग 85 फीसदी पत्रकार वहीं रुके थे। टेस्ट मैच 21 जनवरी से शुरू होना था, मैच शुरू दूसरे दिन से ही लगने लगा था। ये टेस्ट मैच जिस तरह से खेला जा रहा है इसकी किस्मन में ड्रा होना लिखा है, आखिर में टेस्ट ड्रा ही हुआ, इस टेस्ट मैच में दर्शकों और पत्रकारों ने गेंदबाजों की धुनाई के सिवाय कुछ नहीं देखा। इस टेस्ट मैच से पहले तक महेन्द्र सिंह धोनी टीम इंडिया के विकेटकीपर बल्लेबाज थे। पाकिस्तान की टीम दूसरी पारी में बल्लेबाजी कर रही थी। मैच में कोई रोमांच रह नहीं गया था। सिवाय इसके कि कौन सा बल्लेबाज अपने खाते में कितने रन जोड़ लेगा। यूनिस खान इस मैच में भी दोहरा शतक लगाने से चूक गये। एक बार फिर उन्हें आउट करने वाले थे हरभजन सिंह भज्जी ने पिछले मैच में उन्हें रनआउट किया था। इस मैच में एल कर दिया। यूनिस खान .डब्ल्यू.बी.6 रन से दोहरा शतक बनाने से चूक गये। [१३]

5. सांस्कृतिक बिम्ब -

सांस्कृतिक बिम्ब का प्रयोग उत्सव, समारोह, पूजा-पर्व आदि में किया जाता है। इक्कीसवीं सदी के संस्मरणों में इस प्रकार के बिम्बों का प्रयोग कहीं-कहीं देखने को मिल जाता है, विश्वनाथ त्रिपाठी के संस्मरण 'नंगातलाई का गाँव' में प्रस्तुत उदाहरण दृष्टव्य है –

दिवाली में मिठाई और चिनुड़ा की ही बहार नहीं होती। खास तरह के पकवान और सब्जी भी बनी। गाँवों में और किसी सीमा तक शहरों में भी अलग-अलग पर्वों-उत्सवों के अलग-अलग व्यंजन हैं। होली में गुझिया, दही-बड़ा है, दशहरा में राजपूतों के यहाँ पशुबलि का मांसाहार। इसी तरह दिवाली में पूर्वी उत्तरप्रदेश में चने की दाल भरी हुई पुडी और जमीकंद (सूरन या ओल) की सब्जी जरूर खाई जाती है। वस्तुतः व्यंजन मौसमी उपज और स्थिति के अनुकूल होता है।

दिवाली के दो चार दिन बाद ही एक मनोरंजक पर्व होता है जिसे 'हड़ा-हड़वाई' कहते हैं। रात को रस्सी के सिरे पर कपड़ा बाँधकर उसे तेल में डुबो देते, फिर उसमें आग लगाकर उसे दोनों हाथों से चारों तरफ घुमाते। घुमाने के साथ-हड़वाई। मधब-साथ गाते भी हड़ान दाई करैं सगाई हड़ाहड़वाई। माधव का पिता - वही शादी कर रहा है, उस गीत का सम्बन्ध मुहल्ले में रहने वाली सबसे अधिक व्यय वाली वृद्धा, भगवेत्ता दाई से था वे जीवित थी और कैसे बच्चों के गीत का विषय बन गई, जिसने ये पंक्तियाँ लिखीं, कोई नहीं जानता।

लाललाल बरिया पातर- पना,
चीखों भगंता दाई कैसन बना।।

लाल रंग के बड़े हैं, पतला पना है, भगवंता दाई जरा चखकर बताओ कैसा बना है। यह गीत वृद्धा को चिढ़ाने के लिए रचा गया होगा। लाल बड़े और पतले पने से जुगुप्सित बिम्ब बनाया गया है। [१४]

6. अनुभव बिम्ब -

विस्तृत परिवेश एवं जीवन के सन्दर्भ में अपना जीवन व्यतीत करता हुआ संस्मरणकार अपने वैयक्तिक स्तर पर जिन अनुभूतियों को भोगता है, उसको एक मूल्य के रूप में चित्रित कर औरों को अपनी ओर आकर्षित करता है, उसे अनुभव बिम्ब कहते हैं। इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने अपने वैयक्तिक अनुभूतियों को बड़ी सजीवता से अंकित किया है। कृष्णा सोबती के हम हशमत 4 में अनुभव बिम्ब का प्रयोग निम्न हुआ है।

सवाल इतना कि राजनीतिक खेमों की तनातनी और वर्चस्व साहित्यकार को काबू करेगा कि काटछाँट कर उसे अपने मतलब का बनाएगा-? यह मुद्दा भी कम गम्भीर नहीं और नहीं पुरानों की दुरुहता में छिपा हुआ है, बाद में एक और

संकीर्ण आतंकवाद, दूसरी ओर बड़बोला अतिवाद। तीसरा विकल्प है सर्वसाधारण - संकेत -निकटता। क्या साहित्यकार अपनी प्रखरता से कोई दिशा के प्रति लेखन की देंगे? उनसे यह अपेक्षा की जाती है और लेखन की चिन्ताएँ उसे असावधान होने से बचाएँगी, हम सभी जानते हैं कि सोच की मुलायम परतें लेखक को मात्र अन्तर्मुखी बनाकर उसे उसके क्षेत्र से दूर कर देती हैं, वह आत्म चिन्तन में खो जाता है। या एक नया दार्शनिक व्यक्तित्व बनकर जाग उठता है। बेशक यह उसका अपना चुनाव है।

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने अपने संस्मर्ण्य व्यक्ति को निकट से देखा समझा और अपनी वैयक्तिक अनुभूति के आधार पर उसका सशक्त रूप में चित्रण किया है। [१५]

7. साधारण बिम्ब -

साधारण बिम्ब के अन्तर्गत वृक्ष, घर आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इस युग के लगभग सभी संस्मरणकारों ने अपने संस्मरणों में साधारण बिम्ब योजना का निर्वाह किया है -

भावना के इसी राज्य में लोकमान्य तिलक से शहीदआजम भगत सिंह -ए- अध्याय लिखा गया और सुरेन्द्र नाथ बनर्जी एवं संघर्ष का एक-तक बलिदान विपिनचन्द्र पाल से श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के द्वारा होता हुआ गाँधी जी तक बंगभंग, होमरूल, असहयोग, सत्याग्रह का दूसरा। 1942 में गाँधी जी की जनक्रान्ति और सुभाष बाबू की राज्य क्रान्ति के रूप में जैसे दोनों ही अध्याय एक ही उपसंहार में पूर्ण हो गये।

और यह है 15 अगस्त 1947 देशभक्ति की जीवनवल्लरी का महकता पुष्प। - सदियों की गुलामी टूटी, भारत में स्वतंत्रता का सूर्य उगा और लाल किला, संसद- - भवन एवं वाइस रींगल लॉज पर एक साथ तिरंगा झण्डा फहरा उठा'झण्डा ऊँचा रहे हमारा', 'कारवाँ आगे बढ़े' पंक्तियों में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर द्वारा संस्मरण साधारण बिम्ब का प्रयोग दृष्टव्य है। [१६]

8. चित्रात्मक बिम्ब -

चित्रात्मक बिम्बों में चित्रों का प्रयोग किया जाता है। इक्कीसवीं सदी के सभी संस्मरणकारों ने अपने संस्मरणों में चित्रात्मक बिम्बों का स्वरूप पूर्ण रूप से

परिलक्षित होता है। गुलजार द्वारा लिखित संस्मरण पिछले पन्ने में चित्रात्मक बिम्ब का प्रयोग किया गया है। इन पंक्तियों में उदाहरण प्रस्तुत है -

सुबहसुबह एक शोर ने जगा दिया। पुलिस ने सारा हॉस्टल घेर रखा था-, सबको बाहर निकाल कर, कम्पाउंड में लाइन से खड़ा किया जा रहा था। एकएक - दौड़ा इंस्पेक्टर के -कमरे की तलाशी ली जा रही थी। अचानक एक सिपाही दौड़ा पास आया, 'सर मिल गया'।

'उसने साइनाइड खा लिया है'' इंस्पेक्टर उसके पीछेपीछे चला गया।-

छब्बीससत्ताइस साल का नौजवान होगा। चेहरे पर खुबसूरत तराशी हुई - दाढ़ी, रिमलेस चश्मा अभी तक उसके चेहरे पर लगा हुआ था।

''किस कमरे से मिला?'' एक ने पूछा।

''फिफ्टी वन।'' वो गोरख के साथ वाला कमरा था।

''है कौन?'' गोरख ने पूछा।

''जानते नहीं?'' मशहूर नक्सलाइट गौरव पांडेय। गोरख एकदम सुन्न हो गया।

''बहुत दिनों से खबर थी। आजकल हमारे शहर में है कहीं छुपा हुआ है।''

''उफ। हमारे ही हॉस्टल में था और किसी को खबर तक नहीं।''

गोरख के हाथ ट्रेकट्ठी में वो खत मसूट की जेब में थे और मु-ानस रहा था, जो ट्राउजर के साथ ही लॉन्ड्री से धुल के आया था।

पंचनामा तैयार करते हुए, पुलिस इंस्पेक्टर हॉस्टल वार्डन को वो छोटासा - खत दिखा रहा था, जो उसकी जेब से निकला था, बांग्ला में लिखा था -

''ऐ बार विदाई दे माँ, घूरे आशी''

(इस बार विदाई दे माँ, जरा घूम के आता हूँ) [१७]

9. प्रकृति सम्बन्धी बिम्ब -

दृश्य-बिम्बों की परम्परा भी अत्यन्त विकासशील है। इस प्रकार के बिम्बों में एक ही वस्तु के लिए श्रृंखलाबद्ध उपमानों के योजना की जाती है। इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों में दृश्य-बिम्बों का प्रयोग बहुधा जगह देखने को मिलता है। इन पंक्तियों में संस्मरणकार ने रघुवीर सहाय के व्यक्तित्व का दृश्य अंकित किया है -

मालती खिली, कृष्ण मेघ की,
छाया कुल हो गयी धरा,
विपुल पल्लवित मनोहरा,
दृगों से मिली।

अज्ञात नहीं है कि 'मनोहरा' निराला की अर्द्धांगिनी थी। हालांकि स्थूल शरीर से उनका देहान्त हो गया था, परन्तु सूक्ष्म शरीर से वे उनके हृदय में अमर बनी हुई थी। 60 की अवस्था में जब निराला के प्रेम का दूसरा अंकुरण हुआ तो इसमें लाख-लाख नये पल्लव उद्भाषित हो उठे। लगभग यही दशा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र ' की भी थी। उन्हें भी एक प्रेमिका याद आयी। 'अपनी खबर' में उसकी भी खबर दी। सत्रह साल की एक अभिरामा श्यामा से अपने प्रेम की खबर तो दी ही। साथ ही रामलीला के महन्त राम मनोहर दास द्वारा उस अभिरामा श्यामा के यौन उत्पीड़न और उसके पति द्वारा उस श्यामा की अमानवीयतापूर्वक की गयी हत्या का विवरण भी दिया। [१८]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने अपने संस्मरणों में बिम्ब विधान का समायोजन बड़ी सजीवता के साथ किया है। बिम्ब-पात्र-विधान के कारण ही इस युग के संस्मरणकारों के संस्मरणों में संस्मर्ण्य, घटना, स्वाभाविकता के निकट पहुँच गये हैं, स्मृतियाँ अपने आप में बिम्ब नहीं होतीं, बल्कि अनुभूति की एक निश्चित गहराई उन्हें उस स्तर तक पहुँचाने का कार्य करती है, अनुभूति से बिम्ब का गहरा सम्बन्ध है, इसलिए अनुभूतियों का वैभव भावात्मक प्रतीकों में समाहित रहता है। संस्मरणकार अपने संस्मर्ण्य व्यक्तियों के स्मृति सन्दर्भों की सृष्टि करते समय बिम्ब की रचना करता है। शब्द के द्वारा उनकी भंगिमाओं को बड़ी सजीवता के साथ अंकित करता है। बिम्ब भावों को स्वरूप प्रदान करते हैं। बिम्बों के माध्यम से ही भाव अनुभूति और सौन्दर्यचेतना - मूर्तिमान होती है। यह समस्त कार्य संस्मरणकार शब्दों के माध्यम से करता है।

बिम्ब सूक्ष्म मनोभावों को अभिव्यक्त कर उनको उर्वरता प्रदान करते हैं। कभी-कभी अन्वेषण पटु कलाकार अपने मन की बातों को व्यक्त करते समय भाषा की असमर्थता का अनुभव करता है। ऐसी स्थितियों में बिम्ब उसके मन की अमूर्तता को मूर्तता प्रदान करने में सहायक सिद्ध होते हैं, हिन्दी साहित्य कोश में

बिम्ब को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, "मनुष्य के जीवन में बिम्ब विधान अथवा कल्पना विधान का बड़ा महत्त्व है।"

1. शब्द योजना

विराम चिन्हों का प्रयोग -

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने विराम चिन्हों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। अर्ध विराम, प्रश्न चिन्ह, अवतरण चिन्ह तथा विस्मय चिन्ह आदि के प्रयोग में ये अत्यन्त सचेत हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त चिन्हों के कारण भावों की अभिव्यक्ति आयी है, तो विचारों में सरलता भी संभव हुई है। इन विराम चिन्हों के प्रयोग से पाठकों पर उचित प्रभाव पड़ता है।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' की 'कारवाँ आगे बढ़े' संस्मरण में निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

हाई स्कूल के एक अध्यापक की बातचीत की यह चाशनी ज्यों की त्यों प्रस्तुत है -

"यह राशनिंग दफ्तर है न?"

"जी नहीं, राशनिंग दफ्तर यहाँ से कलक्टरी कचहरी के पास डॉन बास्को बिल्डिंग में चला गया है।"

"मुझे मकान के लिए एक दरख्वास्त देनी थी, वहीं जाकर दीजिए।"

"टीसाहब भी वहीं मिलते हैं .ओ.आर.?"

"जी हाँ, उनका तो दफ्तर ही है।"

"बाबूजी इस कमरे में एक वो दाढ़ीवाला क्लर्क भी तो बैठा करता था?"

"दाढ़ी वाले और क्लीनशेव सब वहीं चले गये हैं।-"

"बाबूजी हमें मकान मिल भी जाएगा"

"कोशिश कीजिए।"

"किससे कोशिश करें?"

"दफ्तर वालों से मिलिए।"

"बाबूजी, टीकैसा आदमी है .ओ.आर.?"

"बहुत अच्छे आदमी हैं।"

"कहाँ मिलेंगे वे?"

"वहीं दफ्तर में।"

"दफ्तर कलक्टरी कचहरी के पास है?'

"जी हाँ।" [१९]

अनुच्छेदों की व्यवस्था -

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकार अनुच्छेदों की व्यवस्था में पूर्णतः सतर्क है। उन्होंने अनुच्छेदों का प्रयोग पूरी सावधानी से किया है। इस व्यवस्था में उन्होंने एक बात का विशेष ध्यान रखा है कि जहाँ पर एक बात, एक भावना अथवा एक तर्क समाप्त होता है वहाँ से वे दूसरा अनुच्छेद आरम्भ कर देते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है -

समय का बोध बहुत पहले खत्म हो चुका है। रात सूरज के संगसंग - चलती है और अँधेरे के कण इतने महीन हैं कि मुट्ठी में आते ही अँगुलियों से फिसल जाते हैं, और दिन का उजाला रात को धकेलता नहीं, उसे केवल एक उदास, गुलाबी रंग में भर दता है और समुद्र है जो हमेशा संग है एक विराट् रहस्य की मानिन्द तटस्थ -, उतना ही जितना समय, जिसके अब कोई बाकी नहीं रह गए हैं।

लेकिन घड़ी की सुइयाँ अब भी घूमती हैं पुरानी आदत से मजबूर। अब ...... साढ़े ग्यारह बजे हैं, मैं सबसे ऊँची सीढ़ी पर बैठा हूँ और रोशनी इतनी है कि लिख सकता हूँ, वैसा लिखना नहीं जो कभी हम अँधेरे में लिखते हैं और पढ़ नहीं पाते। मैं पढ़ता हूँ जो कुछ देर पहले लिखा था। लिखा है:

भोजन के बाद हम डेक पर बैठे थे हर रोज की तरह अचानक देखता हूँ लड़के-लड़कियों का एक छोटा सा गुच्छा डेक के जंगलों के पास सरक आया है, वे अत्यन्त उत्तेजित और उत्सुक दिखाई देते हैं। वे अपनी-अपनी दूरबीन से समुद्र के पश्चिमी छोर की और दिखाई दे रहे हैं - उस ओर जहाँ समुद्र का धूमिल छोर आकाश में खो गया है। मैं 'स्लीपिंग बेड' से उठकर जंगले के पास चला आया हूँ .... मुझे अभी तक इनकी उत्सुकुता और उत्तेजना का कारण नहीं मालूम हो सका है, किन्तु फिर भी उनकी निगाहों का अनुकरण करती हुई मेरी आँखें उस बिन्दु पर जा रुकी हैं, जहाँ सबकी आँखें टिकी हैं। [२०]

इस प्रकार विश्वनाथ त्रिपाठी के संस्मरण 'नंगा तलाई के गाँव' में भी अनुच्छेदों का अच्छा प्रयोग हुआ है।

लक्खा जुहा पच्छूँ टोले की नगरवधू- थी। वह हँसतीबोलती रहती-, मुर्हरम बिस्कोहर का सबसे बड़ा उत्सव था। उन दिनों लक्खा जुआ पान की दुकान खोलती। सबसे ज्यादा भीड़ उन्हीं की दुकान पर होती। गाँव की नहीं जवार भरके गदहपच्चीसी नौजवान-, अधेड़ बुड्ढे उनके यहाँ पान खाते। शारीरिक रहस्यों के जिज्ञासु 13-14 साल के लड़केपास मँडराते रहते। पटवारी-लड़कियाँ उन्हीं के आस-, कानूनगो, कांस्टेबल, दीवान साहब, मुंशी, जमींदार के परिवार, सब उन्हीं की दुकान पर पान खाते और सच्चाई यह कि पान खाने कोई नहीं आता। बिस्कोहर में प्रचलित गीत की एक पंक्ति थी लेना न देना जरा देख तो लेना। -

ज्यादातर लोग प्रयोजनातीत कला की उच्च आनन्दसाधना के लिए आते। - लक्खा बुआ बसन्ती, बैंजनी, धानी, कुसुम्भी रंग की साड़ी पहनकर खास अन्दाज से पान लगातीं। पान धोने, कत्था लगाने, चूना लगाने, सरौता से सुपारी काटने, बीड़ा लगाने, पेश करने की अलगअलग भंगिमाएँ होतीं। हँस-ने की अलगअलग छवियाँ - और कनखियों से देखने की।

इस प्रकार निर्मल वर्मा, विश्वनाथ त्रिपाठी, कृष्णा सोबती, कृष्ण बिहारी मिश्र, पद्मा सचदेव, उषा महाजन लेखकों के अलावा सभी संस्मरणकारों अनुच्छेदों के प्रति सावधानी के कारण पाठक भावार्थ को बिना किसी उलझन के समझ पाता है, श्रृंखलाबद्ध अनुच्छेदों की व्यवस्था के कारण पाठक को किसी प्रकार का मानसिक तनाव अनुभव नहीं होता। किसी गंभीर विषय के लेखन में तो ये पाठक के लिए प्रकाश का कार्य करते हैं उपरोक्त उदाहरण से सुस्पष्ट है। [२१]

2. वाक्य योजना -

भाषा-विज्ञान मानता है कि भाषा के सब अंग गर्भी के शिशु की भाँति एक साथ बनते हैं अतः भाषा-विवेचन की मूल भाषिक इकाई वाक्य है। वाक्य रचना लेखन की मनःस्थिति से प्रभावित होती है संघर्षमय क्षणों में लिखी गई रचना में वाक्य उलझे, क्लिष्ट एवं अव्यवस्थित होते हैं। शान्तिमय क्षणों में लिखी गयी रचना के वाक्य सुस्पष्ट, सरस, सरल एवं अलंकृत होते हैं, इक्कीसवीं सदी के संस्मरण साहित्य में छोटे, सरल वाक्यों का प्रयोग अधिक है। आवश्यकता से अधिक लम्बे वाक्य भी मिलते हैं किन्तु इनकी संख्या बहुत कम है, इक्कीसवीं सदी के संस्मरण साहित्य में साहित्यनुशीलन से वाक्य-विन्यास में उनकी तद्विषयक कुशलता का परिचय मिलता है।

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों के साहित्य में वाक्य विधान दो प्रकार की पद्धतियाँ मिलती हैं -

(1) आगमन पद्धति (2) निगमन पद्धति

(1) आगमन पद्धति - आगमन पद्धति में पहले व्याख्या होती है। अन्त में निष्कर्ष छोटे वाक्य में होता है। पद्मा सचदेव के 'इन बिन' संस्मरण में निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं, पहले छोटे-छोटे वाक्य में घर और सुख की व्याख्या की गई है, फिर अन्त में एक सूत्र - काव्य में पूरे लेख का निचोड़ इस प्रकार रख दिया है -

मैंने कहा, ''सकीना, अगर तुमने मुझे पहले ही बता दिया होता तो मैं तुम्हें बरामदे में भी न भेजती। चलो कोई बात नहीं आगे से ध्यान रखूँगी' ' । सकीना को जब मुझ पर यकीन हो गया तब वह सब कुछ बताती रहती। एक दिन बड़ी खुश होकर बोली - ''बीजी, आज जमीर आया था। बता रहा था कि उस आदमी की साली उनके घर पर आ गयी है। उसके दो बच्चे हैं और वह बेवा है बूढा अभी तो उससे निकाह नहीं करना चाहता पर हालात ऐसे पैदा हो रहे हैं कि निकाह हो भी सकता है अब तो उस आदमी ने छत पर अपने लिए अलग कमरा भी बनवा लिया है। पंखा भी लगा लिया है। शायद निकाह भी कर ले। जमीर उसे उकसाता भी रहता है।' '

सकीना ने हँसते हुए कहा, चलो उस औरत को भी सहारा मिल जाएगा, अपनी बहन तो उस पर जुल्म भी न करेगी।[२२]

इस प्रकार आगमन पद्धति के लेखक, पद्मा सचदेव, मनोहर श्याम जोशी, निर्मला वर्मा, कृष्णा सोबती, रवीन्द्र नाथ त्यागी, जे.एन. कौशल ने आगमन पद्धति से प्रसाद गुण युक्त वाक्य का प्रयोग किया है।

(2) निगमन पद्धतिवाक्य -निगमन पद्धति में पहले निष्कर्ष रूप में सूत्र - वाक्य छोटा एवं - होता है फिर व्याख्या के रूप में अनेक वाक्य होते हैं। सूत्र बड़े वाक्यों में की जाती -विभिन्न छोटे वाक्य की व्याख्या-सरल होता है फिर सूत्र है।

मैं अपने घर में जनमा था पला था। अपने पड़ोस में खेलकर, पड़ोसियों का ममतादुलार पा बड़ा हुआ था।-

अपने नगर में घूमफिर कर-, वहाँ के विशाल समाज का सम्पर्क पा, वहाँ के संचित ज्ञानभण्डार का उपयोग कर उसे अपनी सेवाओं का दान दे-, उसकी सेवाओं का सहारा पा और इस तरह एक मनुष्य से भरापूरा नगर बनकर मैं खड़ा हुआ - था।

मैं अपने नगर के लोगों का सम्मान करता था, वे भी मेरा सम्मान करते थे।

मुझे बहुतों की अपने लिए जरूरत पड़ती थी। मैं भी बहुतों की जरूरत का उनके लिए जवाब था।

इस तरह मैं समझ रहा था कि मैं अपने में अब पूरा हो गया हूँ, पूरा फैल गया हूँ, पूरा मनुष्य हो गया हूँ। मैं सोचा करता था कि मेरी मनुष्यता में अब कोई अपूर्णता नहीं रही, मुझे अब कुछ न चाहिए, जो चाहिए वह सब मेरे पास है मेरा - घर, मेरा पड़ोस, मेरा नगर और मैं। वाह कैसे सुन्दर कैसी संगठित और कैसी पूर्ण है मेरी स्थिति। [२३]

1. छोटे वाक्य -

"बतलाते क्यों नहीं?'

"क्या बतलाऊँ उसकी मृत्यु ऐसी ही थी। ...."

"कैसे?"

"जेलखाने में, भीषण रोग से पीड़ित होकर।"

"वह कैदखाने में भेजे क्यों गये, उनका अपराध?"

"मुझे तंग न कर बेटी, जा सो जा, मुझे भी नींद आ रही है।"

जुलूस -

उक्त सभा के कई दिनों बाद मुस्लिम लीग का एक जुलूस निकला। जिसमें ये नारे लग रहे थे -

"हम बावर्ची बनेंगे।"

"हिन्दोस्तानी बावर्ची खाना हमारा है।"

"मूँग के दही के बड़ों पर लानत है। यह अहले इसलाम नहीं - घी में - त्रिजा है। भात खाने वाले की-साग"

"दहीबड़े मुर्दाबाद।"

"घी के बड़े मुर्दाबाद।"

"मूँग के बड़े मुर्दाबाद।" [२४]

2. बड़े वाक्य -

"हम अभी-अभी लौटे हैं उस शाम से जो कुछ बीत गई, कुछ बीतने को हैं - एक झीना-सा नाता जुड़ पाया है। पेश्तर इसके कि वह टूट जाए, सब लमहों को अँधेरे में बिखेर दे, इसे अपने मौन में समेट ले, क्योंकि न जाने कब गली के किसी कोने में यह मौन भी अजनबी-सा हो जाये।"

वैसे भी यहाँ बहुत-से कोने हैं –

चाँदनी रात में छिपे हुए, फीके उजले, खामोश टेढ़ीमेढ़ी गलियों में चलते - खुद धीमे हो जाते हैं। लगता है-ब-हुए पाँव खुद, रात के सन्नाटे में इस पुराने शहर की हर ईंट हमारे कदमों की गवाह है। उनकी पीली, जर्द आँखों पर जब हमारी छाया पड़ जाती है, तो कहीं कुछ सिहरसा जाता है। मानो बीते समय की - कोई परत धीमे से खुल गई है।[२५]

बहुत से लोग अधिक मात्रा में भोजन करने वाले थे। उनके मन में भोजन करने वाले थे उनके मन में भोजन के प्रति बड़ी हविस रहती कुछ लोग तो इतना खाते कि खाने के बाद या खाते समय ही कै करने लगते। कुछ इतना खा जाते कि उन्हें हैजा हो जाता, मर जाते, एक थे रामहृदय पाण्डेय, बहुत दुबले पतले लेकिन उनके बारे में मशहूर था कि वे एक सौ बीसस पूरी खा जातेएक सौ पच्ची- हैं।

यदि किसी मेहमान के आने की आशंका होती थी तो पूरी कोशिश कि उसका आना किसी तरह से टल जाए। अगर दामाद या समधी आ जाए तब तो अलग बात है लेकिन कोई दूर का रिश्तेदार या मित्र आ गया तो जिसके यहाँ वह आता था वह पूरी कोशिश करता कि किसी तरह से ऐसा हो कि भोजन के समय, रिश्तेदार या मित्र न रूके। किसी को भोजन कराना विपत्ति की बात मानी जाती, लेकिन खुद भोजन करने के लिए तिकड़म की जाती। [२६]

3. सूत्र वाक्य -

सुदूर दक्षिण केरल से आयी एक दर्दीली पुकार। गाँधी जी बैचेन हो उठे। प्रभु के दर्शनों से वंचित हरिजनों ने मन्दिरप्रवेश के लिए वहाँ सत्याग्रह छेड़ रखा - था। विनोबा को उसके संचालन के लिए गुरू वयूर भेजा गया। यह सन्1924 था, जब विनोबा दूसरी बार सामने आए।

प्रसिद्धि का तीसरा अवसर जरा देर से पहुँचा सन् -1940 में। गौरव और महत्त्व में यह सबसे आगे रहा। इसका यश भी इस प्रान्त को मिला। गाँधीजी की नजरों में भारतीय जनता सामूहिक रूप से सत्याग्रह के कठोरतम अनुशासनों को याद करने में असमर्थ ठहरी। अतएव भारत सरकार की युद्ध नीति का विरोध करने के लिए उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह का विकल्प निश्चित किया। आचार्य विनोबा इस यज्ञ के प्रथम होता के गौरव से अभिषिक्त हुए। [२७]

जो बात हम जानते हैं, उस पर भी दूसरों का समय बरबाद करते हैं;

''क्यों भाई, म्युनिसिपैलिटी के इलेक्शन में क्या हुआ?''

''शेख़जी चेयरमैन चुने गये।''

''कितने वोटों से?''

''दो वोटों से बड़ी घमासान रही।''

''हाँ मैं तो उस दिन वहीं था।''

''अब कोई इस भले आदमी से पूछे कि जब तू वहीं था और तुझे सबकुछ मालूम है, तो मेरी खोपड़ी क्यों चाट रहा था।'' [२८]

4. मिश्र वाक्य -

मिश्र वाक्य का प्रयोग जे कौशल द्वारा.एन.'दर्द आया था दबे पाँव'' में देखने को मिला है।

पाँच वाहनों वाले, चार दीवारी में बन्द परिवार में बड़ी बहन के विवाह की गहमागहमी का वातावरण दिखाने के लिए संवादों के स्थान पर प्रसिद्ध शायरों के - शेर प्रयोग करके एक और शिक्षा के स्तर का परिचयमिला है। दूसरी ओर चुहलबाजी का दृश्य सजीव हो गया। दृश्य कुछ इस प्रकार है -

कुदसिया बेग कढ़ाई-के घर का दूसरा हिस्सा। लड़कियाँ बैठी सिलाई (बर्नार्डो) कर रही हैं।

मासूमा : आगाज़ा हुआ है उल्फ़त का, अब देखिए क्याक्या होता है।-

मुमताज : या सारी उमर की राहत है, या सारी उमर का रोना है।

मासूमा : कोई किस तरह राजो उल्फ़त छुपाए,
निगाहें मिलीं और कदम डगमगाये।

मुमताज : मक़तबे इश्क का मोमिन है निराला दस्तूर,

उसको छुट्टी न मिली, जिसको सबक याद हुआ।

मासूमा : तेरे इश्क़ की बन गयी है कहानी,
कहीं जा रही है सुनी जा रही है।

जैनब बुआ : अम्मा ने सुन ली तो जुबान कटवा देंगी।

मुमताज : फिर वही रात है, वीरानादिल है-ए-, मै हूँ।

फातिमा : यह रही तीसरी चद्दर।

मुमताज : यह जमीला के लिए है।

मासूमा : फातिमा आपा, मैं इस नुरूद्दीन मियाँ का नाम काट दूँ?

फातिमा : नहीं। (सख्ती से)

मुमताज : नाम काटने की क्या जरूरत है, दिल के आइने में तस्वीरें यार। जब जरा गर्दन झुकायी, देख ली।

कहते हैं अलविदा अब इस जहान को,
जफर खुदा के घर से, फिर आया न जाएगा।
यह सच है मौत हम को मिटा देगी देहर से
लेकिन हमारा नाम मिटाया न जाएगा। [२९]

मिश्र वाक्य का दूसरा उदाहरण हम हशमत से कृष्णा सोबती दृश्य लिखित निम्न पंक्तियों में उदाहरण दृष्टव्य है -

- मुझे यह बताकर आप मेरा और कहानी का मजाक क्यों उड़ा रहे हैं?
- सुनो, मैं तुम्हारे 'हंस' में छपने की खुशफहमी पर ऐसा कुछ नहीं कह रहा जो मुझे नहीं कहना चाहिए। तुम्हें आइंदा के लिए सीख दे रहा हूँ तुमने कहानी में कई तिकड़में की हैं, वह टुकड़े भी पहचाने जा सकते हैं, जो तुमने इधर-उधर से उड़ाए हैं।
- आप मेरा अपमान कर रहे हैं।
- एक दो कहानियाँ लिखकर तुम अपने को मौलिक चिन्तन का कहानीकार समझते हो। खीज कर - नहीं। मैं अपने को फकत कहानीकार समझता हूँ।

बेटे ध्यान से सुनो साहित्य में ऐसी अराजकता नहीं फैली कि अच्छी - वह चाहे जो भी - कहानी को बुरी कहानी कहा जाए और बुरी को अच्छी मुझे कहीं - लिखे चाहे शिव मूर्ति हो या सजीव। चलता हूँ राजेन्द्र भाई पहुँचना है।

इस प्रकार जेशलकौ.एन., रघुवीर सहाय, कृष्णा सोबती काशीनाथ सिंह संस्मरणकारों ने मिश्र वाक्य का बहुतायत में प्रयोग किया है। [३०]

भाषा की परिभाषा एवं अर्थ -

"भाषा वह साधन है, जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं।" [३१]

भाषा अभिव्यक्ति का सहज और श्रेष्ठ माध्यम है। हम अपने भावों एवं विचारों को भाषा के माध्यम से पहुँचाते हैं, तथा दूसरे के भावों एवं विचारों को समझते हैं, अर्थात् अपनी बात को दूसरे तक पहुँचाने के लिए भाषा सबसे अच्छा और सरल माध्यम है, भाषा द्वारा ही हम अपनी बात दूसरे तक पहुँचा सकते हैं।

"भाषा मनुष्य के विचारविनिमय और भा-वों की अभिव्यक्ति का साधन है।" [३२]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मानव अपने भावों को व्यक्त करने के लिए जिन सार्थक मौखिक साधनों को अपनाता है, वही भाषा है। मनन, चिन्तन और विचार का साधन भाषा ही है। भाषा ही वह जीवनशक्ति है-, जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित कराती है। मानव के विचार ही उसका समाज से सम्पर्क स्थापित कराते हैं।

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने स्मरण बोली को संस्मरण की संज्ञा दी है। जिसमें प्रधानता वर्णनों की होती है। इसलिए बोली पद केवल भाषा की बोली मात्र है। विशिष्ट भाषा एवं बोली में सृजित रचना और अधिक प्रभावशाली, आकर्षक, सजीव एवं स्पर्शीय बन जाती है। एक अच्छा संस्मरणकार अपनी समस्मरणात्मक कृति को भाषा के द्वारा सुगठित, आत्मीयतापूर्ण और भावात्मकता पूर्ण गुणों से सँवारता है। अर्थ और बोली का अध्ययन ही भाषा के विश्लेषण को पूर्णता प्रदान करता है। बोली विज्ञान की दृष्टि से प्रत्येक साहित्यिक कृति में प्रत्येक शब्द उसके सन्दर्भ को परिलक्षित करता है।[33]

सामान्यतः भाषा का व्यवहार में प्रयोग व्यापक अर्थों में किया जाता है। हम अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए जिन-जिन साधनों का प्रयोग करते हैं, वे सब भाषा के व्यापक स्वरूप को व्यक्त करते हैं।

संस्मरण साहित्य मानव हृदय के संचित स्मृतिसन्दर्भों का एक गुलदस्ता - है। हम एक दूसरे से अपनी संचित जीवन स्मृतियों को बताते एवं सुनाते हैं। संस्मरण वर्णन प्रधान विधा है, जो भाषा के द्वारा ही सुस्पष्ट, सजीव एवं मर्मस्पर्शी बन सकती है।[३४]

इक्कीसवीं सदी के संस्मरण साहित्य की भाषा -

संस्मरण गद्य की महत्त्वपूर्ण विधा है। इसमें वर्णन प्रधान रहता है, जो स्मृति से सम्बन्धित रहता है। संस्मरण में संस्मरणकार सजीव पात्रों के बाह्य रूप के साथआन्तरिक चरित्र का वर्णन भी करता है साथ-। संस्मरणकार जब अपनी स्मृतियों को संस्मरण का रूप देता है, तो वह मुख्यतः निजी जीवन के साथसाथ - संस्मर्ण्य व्यक्ति, या घटना को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वह घटना या पात्र संवेदनाओं के साथ उभर आता है। छायावादोत्तर संस्मरणों में संस्मरणकारों ने साधारण बोलचा-ल की भाषा को अपनाया है, फिर भी उनके संस्मरणों में आम बोलचाल के शब्दों के साथ उर्दू-, फारसी, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। इस युग के संस्मरणकारों के संस्मरणों में सामान्य, व्यंग्यात्मक, आलंकारिक, भावानुकूल, परिमार्जित, ओजपूर्ण, प्रसादगुण सम्पन्न भाषा के रूप देखने को मिलते हैं।[३५]

1. साधारण भाषा -

बोलचाल की भाषा को साधारण भाषा कहा जा सकता है। 'स्मृतियों का शुक्ल पक्ष' कृति में राम कमलराय ने साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हुए लिखा है -

एक बार मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य परिषद की गोष्ठी में व्याख्यान देने कलकत्ता गया हुआ था। ठहरा तो मैं होटल में था, परन्तु जाते ही फोन से लोठा जी से सम्पर्क हो गया। शास्त्री जी भी कलकत्ते में थे। कई कार्यक्रमों में शास्त्री जी, मैं और लोठा जी साथसाथ रहे। लोठा जी जो भी प्रस्ताव र-खते शास्त्री जी अपनी सुविधाअसुविधा का ध्यान किये बगैर उसके लिये तैयार हो - जाते। सम्मान और स्नेह की यह पारस्परिकता अद्भुत थी।

कलकत्ते के कुछ और प्रसंग स्मृति में उभरते हैं। मैं भारत सरकार के कोयला मंत्रालय द्वारा मनोनीत एक हिन्दी शब्दकोश निर्माण के लिए गठित समिति का सदस्य था, केन्द्रीय कोयला मंत्री श्री वसन्त साठे थे। उन्होंने सातआठ -

व्यक्तियों की समिति गठित की थी, उस समिति की एक बैठक कलकत्ते में होनी थी, मैं कलकत्ता पहुँचा तो शास्त्री जी से फोन पर सम्पर्क हुआ। उन्होंने पूछा, "कलकत्ते में कितने दिन हैं? मैंने बतलाया तीन दिन।"

इस प्रकार संस्मरणकारों ने अपने स्मृतिचित्रों को व्यक्त करने के लिए - बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है।[३६]

2. भावानुकूल भाषा -

भावानुकूल भाषा का प्रयोग संस्मरणकार संस्मर्ण्य व्यक्ति के प्रति अपने मनोभावों को व्यक्त करते समय करता है। इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने अपने संस्मरणों में भावानुकूल भाषा का अधिक प्रयोग किया है।

काशीनाथ सिंह, पद्मा सचदेव, कृष्ण बिहारी मिश्र आदि संस्मरणकारों ने अपने संस्मरणों में भावानुकूल भाषा का प्रयोग करते हुए अपने स्मृतिसंदर्भों को इस - प्रकार चित्रित किया है।

सहसा कृष्ण बिहारी मिश्र का नाम स्मृति पटल पर उभरते ही संस्मरणों की पंक्तियाँ कानों में गूँजने लगती हैं।

रघुवीर सहाय और गोपालदास से आकाश वाणी पर बातचीत करते हुए वात्स्यायन जी ने प्रसंगवश अपने स्वभाव के बारे में संकेत किया था मैं बाहर - से शान्त दिखता हूँ लेकिन भीतर से बहुत बेचन व्यक्ति हूँ। बेचन का जो एक घटिया अर्थ भी हो सकता है उस अर्थ में नहीं। लेकिन मुझको लगता है कि भीतर मुझमें काफी ऊर्जा है, जिसको किसी न किसी तरफ रास्ता मिलना चाहिए। भीतर ही भीतर वह चक्कर काटती रहती है, वह बेचन ऊर्जा जो वात्स्यायन जी के भीतर चक्कर काटती रहती थी। उन्हें कई राहोंघाटों पर दौड़ाती रही-, नित नये प्रयोग रचाने के लिए प्रेरित करती रही परिधान से लेकर साहित्य रचना और - तिक आयोजन तक उनकी पूरी जीवनचर्या में प्रातिभ स्ववीयता और सांस्कृ अद्वितीयता मुखर थी।'विशाल भारत' जैसी पत्रिका का सम्पादन करते यकायक सेना में भर्ती होने का निर्णय, उस सरकार की सेना में जिसके विरुद्ध अपनी विप्लवी भूमिका के लिए उन्हें फाँसी की सजा हो चुकी थी। हीरानन्द शास्त्री जैसे उच्च पदस्थ सरकारी अधिकारी के संस्कारी चुप्पा बेटे के लिए क्रान्तिकारियों के आग्नेय पथ को वरण करना कम अचरज की बात नहीं थी।

मगर पिता के स्तर तक पहुँचने के लिए पिता जैसा दिखने के लिए अज्ञेय जी को पिता से बहुत दूर जाना जरूरी लगता था,

कितनी दूर जाना होता है पिता से
पिता जैसा होने के लिए
और उसी दूरी को लाँघने का उनमें आत्मविश्वास उनकी प्रतिभा रचती थी
है राह
कुहासे तक ही नहीं, पार देहरी के है
मैं हूँ तो वह भी है।

इस प्रकार अपने मनोभावों को बड़ी सजीवता के साथ भावानुकूल भाषा में व्यक्त किया है। [३७]

3. परिमार्जित भाषा -

संस्मरण को विश्वसनीय एवं तत्कालीन परिस्थितियों से उसे सम्पृक्त करने के लिए परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया जाता है। संस्मरणकार अपने स्मृति सन्दर्भों को और आत्मीय बनाने के लिए परिमार्जित भाषा का प्रयोग करता है, इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने परिमार्जित भाषा का सजीवता पूर्वक प्रयोग किया है -

भारतीय स्वतंत्रता के आन्दोलन का इतिहास जानने वालों से यह बात छिपी नहीं है कि लोकमान्य इन्हीं चार बातों के लिए जीवनभर झगड़ते रहे। उन दिनों में एक होमरूल लीग-, स्वर्गीया श्रीमती एनी बेसेंट के द्वारा चलायी जा रही थी और दूसरी होमरूल लीग का संचालन तिलक कर रहे थे। लोकमान्य का स्वर्गवास होते-ही गाँधीजी ने स्वराज्य के आन्दोलन का वह भार अपने सिर पर उठा लिया, वे होम रूल लीग के अध्यक्ष चुन लिये गये। उस समय कलकत्ता विशेष काँग्रेस के-अध्यक्ष पंजाब केसरी स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने कहा था, "मेरा हृदय गाँधी के साथ जाता है और मेरा मस्तिष्क दूसरी ओर जा रहा है।" गाँधी जी अपनी नवीन अहिंसक योजना पूर्णतः देश के सामने रख दी है। उस समय कलकत्ता स्पेशल काँग्रेस में गाँधीजी की अहिंसा पर प्रेम का व्यंग्य करते हुए बम्बई के देशभक्त बैरिस्टर बैप्टिस्टा ने अखिल भारतीय कांग्रेस की सब्जेक्ट कमेटी की बैठक में कहा था।

"आपके अहिंसा के आन्दोलन से देश का स्वराज्य मिलना तो दूर, अंग्रेजों का कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा। आप स्वयं ही अव्यवस्था बढ़ने देने बजाय अहिंसा के नाम पर एक लाख 'पुलिस मैन' का काम किया करते हैं और प्रकारान्तर से देश की व्यवस्था रखने में अंग्रेजी शासन को बल पहुँचाते हैं। [३८]

इस प्रकार इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने संस्मरण को विश्वसनीय एवं तत्कालीन परिस्थितियों से सम्प्रक्त करने के लिए परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है।

4. आलंकारिक भाषा -

आलंकारिक भाषा का प्रयोग संस्मरणकार अपने संस्मर्ण्य व्यक्ति पात्र घटना को सजीव ढंग से प्रस्तुत करने के लिए करता है। इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने अपने संस्मरणों में इस प्रकार की भाषा का सर्वत्र प्रयोग किया है। 'नंगा तलाई का गाँव' में विश्वनाथ त्रिपाठी ने आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है।

मटकीम दाना, सूद उताना।
अन्न न मिलै तब सतुआ खाए,
मनई न मिलै तब अहिर से बतुआए।
कायथ औ खटकीरा, इसके मारै न तनिनौ जीरा,
बनिया बक्काल, हमरे का दाल।
न सौ मसाला न एक धनिया, न सौ बांभन न एक बनिया।
बांभन मुस्लिम भाईभाई-, ठाकुर कौम कहाँ से आई,
एक अगुवा बिना सौ जोलाहा डूबि गए।

दलितों की बहू-बेटियों पर सवर्णों की निगाह रहती थी। खास तौर पर ठाकुरों ब्राह्मणों की, अहीर, पासी, कुम्हार, क्हार, गडरिया, नाई, भुराव (सब्जी उगाने वाले), घटकार (बाँस का काम करने वाले), बरई आदी भी शूद्र थे, लेकिन इनकी स्थिति उतनी खराब नहीं थी। सुनार, कसेर, ठठेर तो लगभग वैश्य की श्रेणी में आते थे। अहीर जबर्दस्त होते थे। उनसे लोग डरते भी थे।[३९]

विश्वनाथ त्रिपाठी का बातचीत का ढंग अद्भुत था। मेंढक की तरह एक विषय से दूसरे विषय जाना उनके लिए आसान था।

5. ओजपूर्ण भाषा -

ओजपूर्ण भाषा का सम्बन्ध उन स्मृति-सन्दर्भों से होता है जहाँ पर संस्मरणकार परिवर्तन की दिशा एवं दशा की ओर इंगित करता है। 'समय के पाँव ' कृति में माखनलाल चतुर्वेदी ने ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है।

तुम 'रहस्य' हो गये। इस देश के सामन्त, वीर योद्धा और बलिदानी प्रायः रहस्य होते आये हैं वे अपमानों को अनन्त सामर्थ्य से अपनाते हैं और वरदानों के समय रहस्य हो जाते हैं।

तुम बलि पत्रि, तुम रक्त-क्रान्ति के होता, तुम सेनानी, तुम सिपहसालार, क्या सौन्दर्य था तुम्हारी बालमूर्ति में। तरुणाई की तो मानो, अन ब्यायी हुलसी फिरै, ब्यायी भीड़े हाथ की दशा थी, तलवार लेकर तबीयत पर आने वालों की अथवा तलवार वालों की तबीयत पर बाग-बाग होने वालों की तुम्हारे आस-पास नहीं, तुम्हारे पास बेदाग बहादुरी मानो अनदेखा-सा अनहोनापन बनकर, देखने वालों को अचम्भे के जादू-भरे उल्लास बाँटती रहती और बंगाल, वह तो मानो।

नैनों के बँगले में तुम्हें, सैनों से बुला लैंगे;

पलकों की चिक डाल, पिया को, पुतली पर सुला लैंगे।

बिना कहे कहती है अपनी कीमत अमरों से भी अधिक कुतने वाला प्रेम, बोलता नहीं न। बड़े महँगे मोलों की थी, तुम्हारी यह मन मोहनी मरणन्योतती - मस्ती।

बंगाल के लाडले तुम, अपने आप क्रान्ति-पथ पर नहीं आये। तुम्हें खोजा था प्रबुद्ध लोगों में देश बन्धुदास ने। प्यार करने वाला और खोजने वाला, मानो सब निहाल हो उठे, जब उन्होंने देखा, कष्ट सामने आने पर तुम अधिक कष्ट माँगते और त्याग करने पर तुम और अधिक त्याग के लिए बेचन हो उठते। तुम कष्ट को जोड़ते त्याग को गणित करते। रहस्य मानो तुम्हारा स्वरूप ही नहीं, स्वभाव तुम्हारी जीवन-यात्राएँ सदा विचित्र रहीं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग करके अपनी स्मृति सन्दर्भों के माध्यम से समाज में एक नयी चेतना जागृत की है।[४०]

6. प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा -

जीवन के सन्दर्भों को बड़ी सजगता एवं सजीवता से व्यक्त करने के लिए संस्मरणकार वैयक्तिक अनुभूतियों को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि संस्मर्ण्य व्यक्ति या घटना पाठकों के समक्ष बड़ी सजीवता से साकार होती है। विश्वनाथ त्रिपाठी का 'नंगा तलाई का गाँव' में प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा का प्रयोग हुआ है।

बहुत से लोग अधिक मात्रा में भोजन करने वाले थे। उनके मन में भोजन के प्रति बड़ी हवस रहती कुछ लोग तो इतना खाते कि खाने के बाद या खाते समय ही कै करने लगते। कुछ इतना खा जाते कि उन्हें हैजा हो जाता, मर जाते, एक थे रामहृदय पाण्डेय, बहुत दुबलेपतले लेकिन उनके बारे में मशहूर था कि वे - एक सौ पच्चीस पूरी खा जाते हैं।-एक सौ बीस

यदि किसी मेहमान के आने की आशंका होती थी तो पूरी कोशिश की जाती कि उसका आना किसी तरह से टल जाए। अगर दामाद या समधी आ जाए तब तो अलग बात है लेकिन कोई दूर का रिश्तेदार या मित्र आ गया तो जिसके यहाँ वह आता था वह पूरी कोशिश करता कि किसी तरह से ऐसा हो कि भोजन के समय, रिश्तेदार या मित्र न रुके। किसी को भोजन कराना विपत्ति की बात मानी जाती, लेकिन खुद भोजन करने के लिए तिकड़म की जाती। [४१]

इस प्रकार कहा जा सकता है भावानुकूल, परिमार्जित आलंकारिक, प्रसाद गुण सम्पन्न एवं शुद्ध भाषा के कारण छायावादोत्तर युग के संस्मरण हृदय स्पर्शी, सजीव एवं उच्च कोटि की रचनाएँ बन गयी हैं।

संस्मरण साहित्य की वह विधा है जिसमें मन की संवेदना भावों को ग्रहण करने की क्षमता होती है। संस्मरण में चित्रित स्मृति-सन्दर्भ हमारे भावों-विचारों को अधिक प्रभावित करते हैं। वे बाह्य स्थितियों की अपेक्षा मन की आन्तरिक स्थिति को अधिक प्रभावित करते हैं। विश्वनाथ त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, कृष्णा सोबती, भवदेव पाण्डेय के संस्मरणों में जीवन को जीने की जिजीविषा निहित है, तो हरिवंश राय बच्चन जी के संस्मरणों की भाषा कविता रूपी रस से सम्पृक्त है। डॉ. नरेन्द्र, रामबिलास शर्मा के संस्मरणों का मूल स्वर व्यक्ति के भीतर के मर्म को उजागर करना है।

3. भाषा शैली -

शैली में इस तथ्य की सर्वाधिक महत्ता होती है कि मनुष्य अपनी बात को किस प्रकार प्रकट करता है, इसलिए यह कहा जा सकता है जिस समय मनुष्य ने अपने आपको प्रकट करने का अनुभव किया होगा। उसी दिन बोली का जन्म हुआ होगा। सामान्य रूप से बोली का प्रयोग विविध क्षेत्रों में व्यापक रूप से किया जाता है, परन्तु साहित्य में इसका प्रयोग विशिष्ट भाषा की अभिव्यक्ति प्रक्रिया के सन्दर्भ में किया जाता है क्योंकि भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है और शैली उस साधन को व्यक्त करने की विधि है।

भाषा मानवभावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन है। - यदि किसी व्यक्ति के पास भावों की मार्मिकता भी है, और विचारों की गहनता भी है। किन्तु उसके पास उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम 'शैली' का अभाव है तो वह गूँगे मनुष्य की भाँति है और यदि शैली पर उसका पूर्ण अधिकार है तो वह उस वाक्पटु व्यक्ति के समान है जो निरर्थकसी बात को भी अत्यन्त आकर्षक ढंग से - जा सकता है कह सकता है। अतः कहावही साहित्यकार सफल होता है जिसकी बोली अभिव्यक्ति की भाँति सबल होती है। बोली के अभाव में भाव चाहे कितने ही उदात्त क्यों न हों, वे प्रभावोत्पादकता कभी नहीं ला सकते हैं।

शैली का अर्थ -

"शैली" अंग्रेजी 'स्टाइल' का अनुवाद है, और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में आया है। प्राचीन साहित्य शास्त्र में शैली से मिलते-जुलते अर्थ को देने वाला एक शब्द प्रयुक्त हुआ है - रीति।" [४२]

"शैली" शब्द अंग्रेजी के स्टाइल का पर्याय है। यह लैटिन भाषा के 'स्टाइलस' से निर्मित है, जिसका अभिप्राय 'कलम' है। 'स्टाइल' की व्यापकता में लिखने का ढंग, लिखित रचना, लेखक विशेष की अभिव्यक्ति की विशिष्टता साहित्यिक रचना की रूपगत विशेषताएँ, बोलने का लहजा, रीति या प्रथा, किसी कलाकार की रचना-पद्धति की विशिष्टता या किसी युग, जाति, देश या वर्ग विशेष के कलाकारों की रचना पद्धति की विशिष्टता आदि है। [४३]

"शैली" शब्द शील से बना है, जिसका अर्थ है स्वभाव, प्रकृति या चरित्र। शैली से सामान्य अभिप्राय है, ऐसा ढंग जिससे कर्ता के स्वभाव, रुचि, प्रकृति, चरित्र, मनोवृत्ति का पता चले। साहित्यशास्त्र में शैली का अर्थ है-, विशेष काव्य रचना या

अभिव्यंजना पद्धति। इस अर्थ में यह शब्द अंग्रेजी के स्टाइल शब्द का पर्यायवाची है। [४४]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्टाइल शब्द का व्यापक अर्थ है 'पद्धति-विशेष' जहाँ साधारण व्यक्ति या कलाकार अपनी व्यापकता के साथ विद्यमान रहता है। बोली के अनेक अर्थ हैं चाल, ढंग, रीति और प्रणाली, शैली के अर्थ पर विचार करते हुए कभी उसे कथ्य से संपृक्त करके देखा जाता है, तो कभी कथ्य से अलग उसे अभिव्यक्ति मात्र का वैशिष्ट्य माना जाता है।

शैली शब्द व्यक्ति की वैयक्तिक विशेषताओं की अपेक्षा उसके क्रिया-व्यापारों एवं रचनात्मक प्रवृत्ति से प्रभावित है। शैली शब्द व्यक्ति की मनोवृत्ति, रुचि, चरित्र, व्यवहार आदि पक्षों को अपने अन्दर समाहित कर लेता है, तथा व्यक्ति की निजी विशेषताओं से सम्बन्धित है।

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणात्मक साहित्य की शैली -

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों में यवदेव पाण्डेप, शिवेन्द्र कुमार सिंह, पद्मा सचदेव ने आत्मथा शैली, माखनलाल चतुर्वेदी, विश्वनाथ त्रिपाठी के संस्मरण निबन्ध शैली में, निर्मल वर्मा, कृष्ण बिहारी मिश्र, मनोहर श्याम जोशी जी के संस्मरण डायरी शैली में संकलित हैं।

संस्मरण चाहे जिस शैली में लिखा जाये, वह रोचक होना चाहिये और उसकी भाषा सहज, बोधगम्य, मर्म को उद्घाटित करने वाली एवं प्रवाहमयी और प्रभावशाली होनी चाहिये, अन्यथा संस्मरण में सजीवता नहीं आ सकेगी। विशिष्ट शैली में रचित रचना प्रभावशाली आकर्षक एवं सजीव, हृदयस्पर्शी बन जाती है। एक अच्छा संस्मरणकार अपनी रचना को सुसंगठित और संक्षिप्तता के गुणों से परिपूर्ण कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है, अपने जीवन की अनुभूतियों को और संस्मर्ण्य-अपने ढंग से प्रस्तुत करते हैं। -सन्दर्भों को संस्मरणकार अपने-व्यक्ति के स्मृति व्यक्ति-इक्कीसवीं सदी में संस्मरणकारों ने अपने संस्मर्ण्य, घटना के संदर्भों को अनेक शैलियों में समाहित कर प्रस्तुत किया है। इस प्रकार संस्मरण लेखन में निम्न शैलियों के प्रयोग देखने को मिलते हैं जो इस प्रकार हैं -

1. वर्णनात्मक शैली -

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने अपने संस्मरणों में वर्णनात्मक शैली का आश्रय भी ग्रहण किया है। भाव एवं विषय के मूर्त चित्रण के अवसर पर इस शैली का सफल प्रयोग देखने को मिलता है।

भाई नेमचन्द जैन साहु जैन-उद्योग के प्रमुख स्तम्भों में हैं और उनकी रुचि कलात्मक है। उनके जीवन का एक विरोधाभास मुझे बहुत प्रिय है कि वे व्यवसाय के सम्बन्ध में बोलते हैं, तो सधकर-साधकर और निजी सम्बन्धों में बोलते हैं तो खुलकर-खिलकर। संक्षेप में उनसे मिलकर बहुत आनन्द आता है और मैं जब भी उनके पास जाता हूँ तो गपशप का भरपूर सुख उठाता हूँ। यह गपशप कभी-कभी उनके दफ्तर में भी जम जाती है। ऐसे अवसरों पर वे गपशप के ठीक बीचमबीच भी अपने कार्यालय का कार्य करते रहते हैं। उनकी व्यवस्था है कि उसमें बाधा नहीं पड़ती।

उस दिन भी ऐसी ही गपशप गोष्ठी हो रही थी। बातें चलती रहतीं और - कागज आते जाते रहते। कागज के आते ही वे अपनी पेंसिल उठाते, उसका पिछला भाग जरा दबाते, पेंसिल की जीभ बाहर निकल आती। वे कागज पर आदेश लिखते, फिर जरा दबाते, वह जीभ भीतर छुप जाती और पेंसिल रख देते। [४५]

इस तरह कन्हैयालाल मिश्र, प्रभाकर, विश्वनाथ त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी ने वर्णनात्मक शैली को अपनाया, वर्णनात्मक शैली में किसी वस्तु, दृश्य स्थान आदि का वर्णन होता है। इसमें विशेष रूप से प्राकृतिक दृश्यों, त्यौहार रहनसहन-, वेश-भूषा, यात्रा, मौसम, सभासम्मेलन-, तीर्थ स्थान, मेलेतमाशे आदि का वर्णन होता है। - लेखक जिस प्रकार हम सबको देखता है, उसका सजीव प्रस्तुतीकरण ही उसका लक्ष्य होता है, यही वर्णनात्मक शैली की विशेषता है, शब्द चित्रों द्वारा वर्णनों-को आँखों के सामने इस प्रकार लाया जाता है कि हम थोड़ी देर के लिए आत्मविभार हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि वह वस्तु सामने ही है। इस शैली में तब्य से पर्याय ही कल्पनातत्व का भी पुट रहता है। लेखक की दृष्टि ऐसी पैनी होनी - प्र-ह उसके अन्तराल बैठकर उसके अंगचाहिए कि वत्यंग देख सके। यदि उसका स्वाभाविक वर्णन यही हुआ तो उसमें सजीवता नहीं आ पायेगी। वर्णनात्मक शैली में भाषा एवं रागात्मक तत्वों के साथ बुद्धि तत्व का चित्रण होता है। शैली सरल, सुबोध एवं प्रसाद गुण युक्त होती है। व्यक्ति प्रधान एवं यात्रात्मक संस्मरणों में वर्णनात्मक शैली का अधिक प्रयोग होता है।

2. सूक्ति शैली -

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने अपने संस्मरण में व्यक्ति, घटना का थोड़े शब्दों में अधिक से अधिक भावों को व्यक्त करने की चेष्टा की है। सूक्ति शैली के माध्यम से इस युग के लखेक ने 'गागर में सागर' भरने की चेष्टा की है। सूत्र रूप में अपने स्मृतिसन्दर्भों को चित्रित करना इनकी विशेषता रही है। उदाहरण स्वरूप-- निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं

रहस्य की बात यह थी कि मणिपुरी कलाकार एक के बाद एक उच्च कोटि का प्रदर्शन कैसे कर पाते थे? उनकी भाव-भंगिमा में हास्यनृत्य भी उतना ही सहज लगता था, जितना मार्मिक आट्र्स, तलवार बाजी, कलाबाजी आदि, उनका गति चालन पूर्णतः लयबद्ध होता। सामाजिक नाटकों का चरित्र-चित्रण भी अभिनय दक्षता का परिचायक होता।

बस अड्डे से होटल की ओर जाते हुए रास्ते में देखा कि हर मोड़ पर हर मुहल्ले में खुली जगह पर हर आयु के स्त्रीपुरुष एक दायरा बनाकर नृत्य कर रहे - शादियों वाले -कहीं लाउड स्पीकर पर रिकॉर्ड बज रहे थे और कहीं ब्याह-थे। कहीं नारी लगभग हर दिन-बैण्ड। पता चला कि होली से एक माह पहले ही नर'बाबल चोम्बी' नृत्य में सामूहिक रूप से भाग लेते हैं। जितनी होली पास आती जाती, उतना ही दायरा बढ़ता जाता और रातरात भर नृत्य चलता रहता। बचपन से ही - इस सामूहिक नृत्य में भाग लेने वाले कलाकारों में वह सब गुण होना स्वाभाविक ही था।[४६]

संस्मरणकार अपने अतीत के उन दृश्यों, घटनाओं, मनोदशाओं तथा क्रियाओं पर तन्मय होकर लेखन कार्य सम्पन्न करता है। अवतरण सुखद एवं दुःखद अनुभूतियाँ चित्रित होती चलती हैं। वह भाषानुकूल भाषा के द्वारा पाठक को भी भाषातिरेक एवं संवेदनशीलता में आप्लावित कर देता है। पाठक अपने निजी सुख, दुःख को भूलकर क्षणभर के लिए लेखक के साथ सो जाता है।

3. डायरी शैली -

डायरी शैली के माध्यम से संस्मरणकार अपने संस्मर्ण्य व्यक्ति, घटना का वर्णन यथास्थान स्मृतिसन्दर्भों के माध्यम से करता है-, इस प्रकार की शैली में भाषा का स्थान गौण होता है और विचारों की प्रधानता रहती है। डायरी शैली में व्यक्तिगत विचार होते हैं या उस विषय से सम्बन्ध रखने वाले विचार जिस पर

संस्मरण लिखा जाता है। जे कौशल द्वारा लिखित संस्मरण.एन.“दर्द आया था दबे पाँव” में डायरी शैली का प्रयोग हुआ है।

चौबीस दिसम्बर, 2001 सुबह की सैर से छः बजे घर लौटा तो फोन की घण्टी बज रही थी। मैं राम मनोहर लोहिया अस्पताल के इमरजेंसी वार्ड में हूँ, नौ बजे डॉक्टर आएँगे तो सीमें शिफ्ट करेंगे या नर्सिंग होम में। .यू.सी.”

अवाज लोक संगीत और नाट्य संगीत के विशषज्ञ प्राध्यापक, गीतकार, संगीतकार, अभिनेता, निर्देशक, रूपान्तरकार, अनुवाद, कितने ही पुरस्कारों से सम्मानित, दिल्ली नाट्य संघ तथा उर्दू अकादमी सम्मान के अतिरिक्त वर्ल्ड डेवलपमेन्ट पार्लियामेन्ट द्वारा डॉक्ट्रेट ऑफ म्यूजिक की उपाधि पाकर भी अपने नाम के आगे डॉक्टर न लिखने वाले पंचानन पाठक की थी।

दिल के मरीज पंचानन पाठक को खाने में परहेज बरतने की हिदायत थी, परन्तु उन्हें चटपटा मसालेदार मांसाहारी भोजन करने का बहुत शौक था। कहीं से खाने का न्यौता मिलता तो पहले ही कह देते कि चिकन मटन मिलेगा तो खाना खाने आऊँगा, नहीं तो नहीं।

दिल की बीमारी के कारण चिकन मटन खाने पर रोक थी। परन्तु कहाँ परवाह करते। अभी दो-तीन महीने पहले भी उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया था और खाने-पीने में बहुत सावधानी की सख्त हिदायत दी गयी थी। फिर भी वह कभी-कभी किसी बहाने से घर से निकल जाते और अपने मुहल्ले के ढाबे से मनचाहा भोजन खाकर चले आते। साग पत्तर सब्जी आदि को तो वह घासफूस कहते जो वह नहीं खा सकते थे। फलों में भी उन्हें कोई मोह नहीं था। केला आदि खाने को कहते तो कह देते कि यह तो बन्दर खाते हैं। बीमारी के समय शाकाहारी भोजन मिलने पर वह यही कहा करते थे कि अस्पताल में खाना बहुत खराब मिलता है। इससे अच्छा तो जेल में मिलता था। उन्हें फिर से अस्पताल पहुँच जाने में उन्हीं भोजन की लालसा भी एक कारण हो सकता था।[४७]

इक्कीसवीं सदी के कई संस्मरणकारों ने अपने संस्मर्ण्य व्यक्ति, घटना का वर्णन करते हुए डायरी शैली का प्रयोग किया है।

4. निबन्धात्मक शैली -

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने इस शैली का प्रयोग अपने स्मृति-सन्दर्भों में स्वाभाविकता लाने के लिए किया है। इन स्मृतिचित्रों में शब्दाडम्बर - नहीं है। इसका प्रत्येक शब्द संस्मरणकार के विचारों के साँचे में ढला हुआ होता सन्दर्भों की -है। इसमें वाक्य कुछ लम्बे अवश्य होते हैं पर उनमें विचारों एवं स्मृति रहती है। निबन्धात्मक शैली का अर्थ है बंधा हुआ अर्था श्रृंखला बराबर बनीत् वह बंध जिसमें अनेक मतों का सम्मिलित रूप हो, जब संस्मरणकार अपने विचारों एवं भावों एवं मनोवृत्तियों का प्रकाशन अपनी बोली में करता है, उसे निबन्धात्मक शैली कहा जाता है। इस काल के संस्मरणकारों में निर्मला वर्मा, कृष्णा सोबती, रामकमल राय, मनोहर श्याम जोशी ने निबन्धात्मक बोली का मुख्यतः प्रयोग किया है। रामकमल राय की संस्मरणात्मक कृति 'स्मृतियों का शुक्ल पक्ष' में निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

लक्ष्मीकान्त जी को चालीस वर्षों से देख रहा हूँ। निरन्तर नये नये आयामों-नयी छवियों में। फिर भी-में नयी भीतर से सदा एक और अपरिवर्तनीय। सदा स्नेह से छलछलाते हुए, अपने से छोटों की आत्मीयता से सींचते हुए। बराबर वालों को बराबरी का सम्मान देते हुए। बड़ों की इज्जत करते हुए। कभी न थकते हुए। सदा सुनते हुए। कम बोलते हुए। हर की बात पर मनन करते हुए। उस पर अपनी प्रतिक्रिया सहेजते हुए। अधिक से अधिक लोगों को अपनी आत्मीयता की परिधि में समेटते हुए। परिवार में सदा वात्सल्य की वर्षा करते हुए भाई हो, बेटे हो, भतीजे हो, पत्नी हो, भाइयों की पत्नियाँ हो, बहुएँ हो, लक्ष्मीकान्त जी सबके लिए वात्सल्य की प्रतिमूर्ति हैं। ऐसा नहीं कि क्रोध न आता हो, आता है, परन्तु सबसे अधिक अपने पर। वे क्रोध को करुणा में बदलने की अद्भुत क्षमता सम्पन्न हैं।[४८]

निर्मला वर्मा द्वारा लिखित पंक्तियाँ चीड़ों पर चाँदनी में लिखित पंक्तियाँ -

रात की उन चन्द आखिरी घड़ियों में एक बहुत पुरानी, बहुत धुंधलीसी - तसवीर गुजर गयी। वह तसवीर उस वियना की स्मृतियों से जुड़ी थी जब प्रथम विश्वजिसमें स्टीफन ज्विग ने वर्ल्ड ऑव यस्टरडे की - युद्ध आरम्भ नहीं हुआ था-संज्ञा दी थी। अपने एकान्त क्षणों में मैंने कितनी बार यह स्वप्न देखा था पतझड़ वियना की एक शाम में सड़क के एक कोने के दिनों में में खड़ा हूँ। सामने कुछ फासले पर ऑपेराहाउस है-, एक विचित्र रहस्यमय स्थान। मेरे हाथों में फूलों का एक गुच्छा है और उसकी भीनी सुगन्ध मेरी नसनस में समा गई। गाड़ियाँ आती -

वियना की एक हाउस में चले जाते हैं। वह-हैं कुछ लोग उतरते हैं और ऑपेरा बहुत निस्तब्ध शाम हैऔर मैं गाड़ियों के पीछे भागते हुए पतझड़ के पत्तों को देखता रहता हूँ। मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ लगता है -, मैं चिरन्तन काल से उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब ऑपेरा हाउस की सीढ़ियों पर मैं वियना की सुप्रसिद्ध ऑपेरा के हाथों में फूलों का गुच्छा पकड़ा अभिनेत्री-दूँगा और वह एक क्षण अपनी विस्मित आँखों से मुझे देखेगी, देखती रहेगी और मुस्करा देगी। [४९]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने अपने स्मृतिप्रयोग सन्दर्भों को चित्रित करते हुए निबन्धात्मक शैली का कुशलतापूर्वक-किया है।

5. पत्रात्मक शैली -

संस्मरण-साहित्य में पत्रात्मक शैली का प्रयोग देखने को मिलता है, यह बोली संयत और मार्मिक होती है। इक्कीसवीं सदी के संस्मरणकारों ने पत्रात्मक व्यक्ति का परिचय सुबोध और स्पष्ट रूप में प्रस्तुत कर पाठकों को उन स्मृति-सन्दर्भों से परिचित करता है। इसमें पात्र के स्मृति-सन्दर्भों को बड़ी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। कृष्ण बिहारी मिश्र की संस्मरणात्मक कृति 'नेह के नाते अनेक' में पत्रात्मक शैली के उदाहरण देखिए।

शुभचिन्तकों ने पत्र लिखकर मेरी आक्रामक मुद्रा के लिए मुझे डाँटा था। कुछ दिनों बाद बनारस और इलाहाबाद गया था। काशी में त्रिलोचन शास्त्री और विष्णुचन्द शर्मा ने मेरी पीठ ठोकी थी। नागानन्द मुक्ति कण्ट ने आतंकित करने के उद्देश्य से अस्सी नुकड़ पर कहा था, पाठक जी की शक्ति का आपको अन्दाज नहीं है तभी आपने यह हिमाकत की थी। पाठक जी आपको कटवाकर गंगा में फिकवा सकते हैं। मगर नागानन्द जी की आतंक मुद्रा का मेरे ऊपर कोई असर नहीं था। इलाहाबाद में कलाकार केशवप्रसाद मिश्र, जो गाँव के नाते में मेरे बड़े भाई लगते थे, ने और डॉरघुवंश ने मुझे डाँटा था। स्नेहशील थे मेरे प्रति। मेरे . दुःखी थे। दूसरे दिन केशवप्रसाद जी मुझे धर्म आचरण सेवीर भारती के घर ले गये थे। भारती जी कहीं बाहर गये थे। कान्ता जी से मिलकर हम कुछ देर बाद निकल रहे थे कि दरवाजे पर भारती जी से भेंट हुई थी। खड़ेएक बातें। -खड़े दो-

लक्ष्य कर सुख मिला काम से भारती जी नितान्त अपरिचित नहीं थे यह-मेरे नाम था। फिर मैं अपने शहर लौट आया था।

इस प्रकार पत्रात्मक शैली का प्रयोग संस्मरणकारों में कृष्णा सोबती, कृष्ण बिहारी मिश्र आदि ने किया।

6. संवाद शैली -

संस्मरणकार अपने संस्मर्ण्य व्यक्ति के साथसाथ पाठकों से बात करते हैं तो-उनकी इस शैली को संवाद शैली का नाम दिया जाता है। काशीनाथ सिंह की संस्मरणात्मक कृति'संस्मरण' में चित्रित संवाद- शैली का एक उदाहरण द्दष्टव्य है-

वास्तव में राजेन्द्र यादव और मोहन राकेश ने भी वही किया जो सन् 40 के बाद के कहानीकारों ने किया था, किन्तु इनके विचार और फार्मूले कुछ दूसरे ढंग के हैं।

मैंने जिज्ञासा की -'आप कभी कहानी या उपन्यास लिखने के बारे में नहीं सोचते?'

'नहीं लिख सकता। लिखूँगा तो असफल हो जाऊँगा।'

'मुझे तो ऐसा नहीं लगता।'

'वातावरण शायद दे लूँगा, लेकिन डायलॉग नहीं बनेगा मुझसे।

'जबकि मेरा ख्याल इससे उल्टा है, आप डायलॉग ही अच्छा लिख सकते हो।'

'यही तो। मेरे डायलॉग पात्र के डायलॉग होंगे ही नहीं, मेरे ही रह जाएँगे। स्वाभाविकता नहीं आएगी। जैसा गोर्की में था बड़े बनावटी लगते हैं उनके संवाद।'

उनके चेहरे पर शिकन नहीं थी और माँ और हम दोनों भाई भविष्य को लेकर बेहद परेशान चल रहे थे। माँ की समस्या अलग। ज्यादातर वह शहर में रही थी, जब गाँव पर रहना पड़ेगा तो वह कब तक छिपाएंगी कि बड़े बेटी की नौकरी छूट गई, सुनकर हँसेंगे लोग। रामजी भैया कहते थे कि यहाँ रहते हुए नौकरी ढूँढी जा सकती थी, लेकिन गाँव में तो पता नहीं चलेगा। हम हॉस्टल या लॉज में रह तो लेंगे, लेकिन खर्च कहाँ से देंगे? स्कॉलरशिप मिलेगी या नहीं और मिलेगी तो कब से, पता नहीं।

संवाद कहिए या वार्तालाप बात दरअसल एक ही होती है, जो कथागत सूत्रों को गति प्रदान करती है। वास्तव में कृष्णा सोबती अपनी रचनाओं में आंतरिक

संवाद के लिए जितनी जानी जाती हैं, उतनी ही अपने पात्रों के पारस्परिक संवादों की सृष्टि के लिए भी जानी जाती हैं। [५०]

काशीनाथ सिंह जी की महत्त्वपूर्ण कृति घर का जोगी जोगड़ा में संवाद शैली का मुख्यतम प्रयोग हुआ है।

7. आत्मकथात्मक शैली -

आत्मकथात्मक शैली में संस्मरणकार निस्सन्देह अपने और दूसरे के विचारों को व्यक्त करतेकरते स्वयं भावुक हो उठते हैं। नहीं तो आत्मविश्लेषण कर स्वयं - व्यक्ति और-पाठकों को अपने भावों से अवगत कराते हैं। संस्मरण में संस्मर्ण्य लेखक का निकट सम्बन्ध होता है। अतः संस्मरण में स्वाभाविक रूप से आत्मीयता का वातावरण होना आवश्यक है।

संस्मरणकार अपने संस्मर्ण्यशैली में -सन्दर्भों को आत्मकथा-व्यक्ति के स्मृति-चित्रों से परिचित करा देता है। जिसके मध्य में -प्रस्तुत कर पाठक को उन स्मृति वह स्वयं रहता है। कृष्णा सोबती की संस्मरणात्मक कृति 'हम हशमत' में आत्मविश्लेषण करती हुई कहती हैं।

औकात में एक छोटी सी कलम। नाम से सिर्फ एक लेखक। इससे अलग कोई दूसरी पहचान मेरे पास है ही नहीं। मैंने इस लेखकीय संज्ञा को साधारणता की असाधारणता को खुद अपने अहद में जिया है। लगभग अपनी शर्तों पर। बेझिझक कह सकती हूँ कि लेखक के वजूद और व्यक्तित्व में अगर कुछ भी सिंचित है तो वह साधारण का ही विशेष है। साधारण में अपनी ही लचक है। वह लेखन के निकट किसी भी अन्य गुणात्मकता से सहस्त्र गुना महत्त्वपूर्ण है। अपने को लेकर रचनाकार के सम्बन्ध कभी सरसरी नहीं होते। रागात्मक सम्बन्धों की हद से भी गहरे और दूर तक उसके दिलदिमाग और देह से गुँथे होते हैं। यह - बड़े लेखक के निकट मूल्यवान है। सच तो यह है कि -गहरी गूँथ किसी भी छोटे यही उसका सरमाया है मूल धन है। यही लेखक के पाठ में प्रमाणित होता है। [५१]

आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग प्रायः सभी कथा लेखिकाओं ने किया है। इसमें मन्नू भण्डारी, निरूपमा सेवति, मृदुला गर्ग, शिवानी, सूर्यबाला, प्रभा खेतान, कान्ता भारती आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार हम हसमत आत्मकथात्मक शैली को बेस्ट संस्मरण कह सकते हैं।

8. सम्बोधन शैली -

कहींनी शैली में सम्बोधन का प्रयोग किया है। इसकहीं संस्मरणकारों ने अप-शैली कहा जाता है। उनके बारे में लिखने वाले एक -प्रकार की शैली को सम्बोधन लेखक ने लिखा है कि लोकमान्य स्कूल मास्टर जैसे सख्त दिख पड़ते हैं। किन्तु उस युग में भी लोगों ने इस बात का विरोध किया था, और आज भी यह बात सच नहीं मालूम होती। लोकमान्य विनोदी स्वभाव के थे। एक बार अपने बच्चों में बैठे वे चाय पी रहे थे। बच्चेबच्चियों की और उनके पिता श्री लोकमान्य की - - बातचीत कुछ इस तरह हुई

बच्चा : ''बाबा हम तो चाय के साथ बिस्किट खाते हैं, तुम चाय के साथ कुछ नहीं लेते?''

बाबा : ''कौन कहता है कि कुछ नहीं लेता? मैं भी लेता हूँ।''

बच्चा : ''रोज?''

बाबा : ''हाँ रोज।''

बच्चा : ''हमको तो नहीं दिखता, क्या लेते हो तुम?''

बाबा : ''अरे, मैं रोज चाय के साथ समाचार पत्रों में दी गई गालियाँ खाया करता हूँ।''

जब लोकमान्य को सन् 1908 में देशआ उन दिनों भी सुदूर निकाला हु-मांडले में रहते हुए, उन्होंने 'गीता रहस्य' की रचना की।

तुम रहस्य हो गये हो। इस देश के सामन्त वीर योद्धा और बलिदानी प्रायः रहस्य होते आये हैं। वे अपमानों को अनन्त सामर्थ्य से अपनाते हैं और वरदानों को समय रहस्य हो जाते हैं। तुम बलि पन्थी, तुम रक्तक्रान्ति के होता-, तुम सेनानी, तुम सिपहसालार। क्या सौन्दर्य था तुम्हारी बालमूर्ति में, तरुणाई की तो मानो।

अनब्यायी हुलसी फिरै, ब्यायी मीड़े हाथ की दशा थी तलवार लेकर तबीयत पर आने वालों की अथवा तलवार वालों की तबीयत पर बागबाग होने वालों की।-

तुम्हारे आसपास-, नहीं तुम्हारे पास बेदाग बहादुरी मानो अनदेखासा - अनहोनापन बनकर, देखने वालों को अचम्भे से जादूभरे उल्लास बाँटती रहती। - और बंगाल, वह तो मानो नैनों के बँगले में तुम्हें, सैनों से बुला लेंगेपलकों की ! चिप डाल, पिया को पुतली पर सुला लेंगेबिना कहे कहती रहती है। अपनी कीमत !

बड़े महँगे मोलों की थी !अमरों से भी अधिक कूतने वाला प्रेम बोलता नहीं है न, तुम्हारी यह मन मोहनी मरण न्योति मस्ती ![५२]

इस प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी ने संस्मरण को अधिक प्रभावी बनाने के लिए संबोधन शैली का अधिक प्रयोग किया है।

9. स्वच्छन्द शैली -

इस शैली का प्रयोग लेखक अपने विचारों को स्वच्छन्द रूप में व्यक्त करने के लिए करता है। इसमें संस्मरणकार अपने संस्मर्ण्य सन्दर्भों को व्यक्ति के स्मृति स्वच्छन्दता के साथ व्यक्त करता है। उदाहरण स्वरूप निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

आयु बढ़ने के साथसाथ दाँतों और आँखों के डॉक्टरों के पास जाना शुरू - साथ कम -हुआ। एक दन्त चिकित्सक ऐसे मिले जो दर्द करने वाले दाँत के साथ से कम एक स्वस्थ दाँत और निकाल देते थे जिसके लिए वे कोई अतिरिक्त फीस हर्गिज नहीं लेते थे। उनके पास ज्यादा टिकना कठिन होता था यदि कोई युवती अपना मुँह कम खोलती थी तो वे कहते थे कि "मुँह खोलने में आप इतना संकोच क्यों करती है? आखिर मुँह ही तो देखना चाहता हूँ और कोई अंग तो नहीं।" इसके बाद जब वह नवयौवना अपना मुँह पूरा खोल देती थी तो वे हमेशा कहते थे कि "बस, इतना ज्यादा मुँह न खोलिए क्योंकि मुझे दाँत बाहर ही खड़ेखड़े निकालना - है, मुँह के भीतर जाकर नहीं।" आँखों के डॉक्टर इतने कार्य तत्पर थे कि मुझे बार बार चश्मे का नम्बर दिया जिसे 'माइनस' के स्थान पर 'प्लस' लिख दिया। मुझे चश्मा दो बार बनवाना पड़ा। एक बार मैंने एक निकट सम्बन्धी (जो डिस्ट्रिक्ट व सेशन्स जज थे) आँख का ऑपरेशन किया तो बाद में एक टाँका निकालना ही भूल गये। जिसके कारण जज साहब को काफी कष्ट उठाना पड़ा। एक मित्र के साथ तो उन्होंने दयालुता बरती कि पूछिए नहीं। ऑपरेशन होना था दायीं आँख का और कर दिया बायीं आँख का और उसकी कोई अतिरिक्त फीस उन्होंने नहीं ली। मेरे मित्र की एक आँख हमेशा के लिए चली गयी, यह दीगर बात ठहरी। [५३]

रविन्द्र त्यागी द्वारा ये पंक्तियाँ "बसन्त से पतझर तक" संस्मरण में प्रयोग की हैं इसमें स्वच्छन्द शैली का अधिक प्रयोग हुआ है।

10. आलंकारिक शैली –

जब लेखक अपने विचार रूपक द्वारा अभिव्यक्त करता है तब उसमें कविता सा सौन्दर्य आ जाता है। छायावादोत्तर युगीन संस्मरणकारों की शैली में प्रायः अलंकारों की योजना भी रहती है। इस युग के संस्मरणकारों ने रूढ़ आलंकारिक शैली विशेष का प्रयोग नहीं किया है, किन्तु उनकी भाषा में स्वाभाविक अलंकरण पर्याप्त मिलता है। रूपचित्रों को चित्रित करने में -पात्र के स्मृति-योजना में विशेषकर संस्मर्ण्य- - कुशलता का परिचय दिया है। निम्नलिखित उद्धरण में रूपक का निर्वाह देखिए रविन्द्र नाथ त्यागी द्वारा लिखित'बसंत से पतझर तक' कृति नौ प्रहर शेष में - ज्योति-अरुणसे रंजित था मधुमास, तेरे नयनों में देखा था अपना सत्यानाश। इसके बाद जो मैंने कोठी बदली वह सर्वश्रेष्ठ थी उसमें खूब आम लगते थे और उनका हम खूब सेवन करते थे। आँधी आने पर छोटीछोटी अम्बियाँ लगती थीं-, सुमित्रा नन्दन पन्त की नीचे लिखी पंक्तियाँ अनायास ही याद आ जाती थीं -

तुम मुग्धा थी, अति भाव प्रवण
अम्बियों से उभरे थे उरोज -
चंचल प्रगल्भ हँसमुख उदार
मैं सलज तुम्हें था रहा खोज

इस कोठी के मालिक एक सरदार साहब थे, जिनके पास काफी सम्पत्ति थी उनकी एक मात्र सन्तान एक लड़की थी जो विलायत में रहती थी। कोठी के ये मालिक विधुर थे और अपना सारा समय मुकदमेबाजी में गुजारते थे। बड़े चौकन्ने पुरुष थे पर फिर भी हमेशा परेशानियों से घिरे रहते थे। उनके तनावपूर्ण जीवन को देखकर मैं फिराक साहब का एक शेर हमेशा याद करता था।

हुशियारी का कौन ठिकाना
जालिम कुछ तो धोखा खा लैना"[१४]

इस प्रकार रविन्द्रनाथ त्यागी जी ने आलंकारिक शैली में संस्मरणात्मक कृति बसंत से पतझड़ तक को अंकित किया है।

11. चित्रात्मक शैली -

जब संस्मरण कार अपने संस्मर्ण्यसन्दर्भों को चित्रित करते -पात्र के स्मृति-चित्रात्मक शैली विषय का चित्र उतार देते हैं। वहाँ-हुए शब्दों के माध्यम से वर्ण्य का स्वरूप परिलक्षित होता है। इक्कीसवीं सदी के संस्मरणों में यह अनिवार्य तत्व तत्र दिखाई देता है।-यत्रगुलजार ने 'पिछले पन्ने' कृति में महत्वपूर्ण चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है।

"बहुत दिनों से खबर थी। आज कल हमारे शहर में है, कहीं छुपा हुआ है।"

"उफहमारे ही हॉस्टल में था और किसी को खबर तक नहीं। !

गोरख के हाथ ट्रेकसूट की जेब में थे और मुट्ठी में वो ख-त मसल रहा था, जो ट्राउजर के साथ ही लॉन्ड्री से धुल के आया था।

पंचनामा तैयार करते हुए, पुलिस इंस्पेक्टर हॉस्टल वार्डन को वो छोटासा - रहा था खत दिखा, जो उसकी जेब से निकला था।

बांग्ला में लिखा था:

"ऐ बार विदाई दे माँ, घूरे आशी"

(इस बार विदाई दे माँ, जरा घूम के आता हूँ) [५५]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि पिछले पन्ने में गुलजार जी द्वारा बहुत संस्मरणात्मक चित्रों का प्रयोग किया है।

12. विश्लेषणात्मक शैली -

विश्लेषणात्मक शैली में लिखी गई रचना के केन्द्र में कोई न कोई एक विचार होता है। उसी का विवेचन और विश्लेषण कृति में किया जाता है। उस कृति का हर तत्व उस केन्द्रीय विचार से प्रभावित रहता है। तार्किक बहुलता के चलते कभीवास्तविकता से दूर हटता चला जाता है। जिससे कभी रचना का कथानक-वह काल्पनिक लगता है, इस प्रकार की शैली में लिखी गई रचनाओं में बौद्धिक या शिक्षित पात्र अधिक होते हैं। प्रसंगानुकूल अस्तित्ववादियों की तर्क प्रणाली से प्रेरित उपन्यासों में चरित्र की विशिष्टता पर जोर दिया जाता है। [५६]

संस्मरण में विश्लेषणात्मक शैली अनेक रूपों में मिलती है। जिनमें से प्रमुख मनोवैज्ञानिकता युक्त विश्लेषणात्मक, बौद्धिकतायुक्त विश्लेषणात्मक पद्धति आदर्श से

आग्रहित विश्लेषणात्मक पद्धति आदि हैं। कृष्णा सोबती जी ने ''हम हृमशत'' में विश्लेषणात्मक पद्धति की कुछ पंक्तियाँ

सेहतमंद बात बस इतनी भर कि आज का बौद्धिक इलिट ऐसी बैरूपियों को दूर तक पालता नहीं। वह तत्परता से तत्काल का नया दामन पकड़ता है। आखिर साहित्य के रचनात्मक पर्यावरण की सतरंगी क्यारियाँ किस मर्ज की दवा हैं। मित्रताएँ इसी सम्पर्कवाद के दोस्ताना लेनर ही उभरती हैं। आप मेरी प्रशंसा देन प- करें और मैं आपकी।

कृष्णा सोबती की विश्लेषणात्मक शैली में 'हम हशमत' में प्रयुक्त पंक्तियाँ तर्क के साथ भावना व अनुमति का मिश्रण हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसी संस्मरणकार ने एक शैली को अपनाया तो किसी ने दूसरी शैली को जिससे इक्कीसवीं सदी के संस्मरण लेखन में विभिन्न शैलियों के प्रयोग दिखाई पड़ते हैं। शैली का संस्मरण विधा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। शैली से तात्पर्य लिखने के उस ढंग से है जिसके द्वारा कोई संस्मरणकार अपनी स्वानुभूतियों को प्रकट करता है। यर्थात् में शैली व्यक्ति है और व्यक्ति शैली है, शैली का सम्बन्ध भाषा, शब्द से अधिक लेखन के भावों और विचारों से होता है। शैली में भाषा और भाव का उसी प्रकार अभिन्न संयोग है। जिस प्रकार शरीर और प्राण का। शैली संस्मरण को रोचक प्रवाहपूर्ण एवं सजीवता प्रदान करती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संस्मरणकारों ने अपने संस्मरणों में अलगअलग शैलियों का प्रयोग किया है। विशिष्ट शैली में रचित रचना और - अधिक प्रभावी। सजीवआकर्षक बन जाती है। एक कुशल लेखक अपनी रचना को सुगठित, आत्मीयतापूर्ण और संक्षिप्तता के गुणों से सजासँवार कर पाठकों के - प्रस्तुत करता है। इन्हीं गुणों के कारण रचना स्मरणीय बन जाती है। समक्ष संस्मरण रचना की अनेक शैलियाँ प्रचलित हैं।

समग्रतः कहा जा सकता है कि शिल्प पक्ष की दृष्टि से इक्कीसवीं सदी के ये संस्मरण अत्यन्त रोचक, मार्मिक एवं स्वाभाविक बन पड़े हैं। भाषा सर्वज्ञ सरल, सीधी-सादी प्रसाद गुण सम्पन्न एवं प्रवाहपूर्ण है। भाषा में भाषात्मकता और विचारात्मकता का गुण विद्यमान है। भाषा के साथ में शैली भी संस्मरणकारों की अपनी है, उसमें वर्णनात्मकता, विचारात्मकता का गुण अधिक है। संस्मर्ण्य व्यक्ति

के बाध्य रूपाकार का परिचय देते समय, किसी घटना का वर्णन करते समय, वर्णनात्मक, सूक्ति, डायरी, निबन्ध, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, संवादसम्बोधन-, आलंकारिक, चित्रात्मक शैलियों के गुण स्वतः ही आ गए हैं। भाषा और बोली की सजीवता, स्वाभाविकता ने जहाँ इस युग के संस्मरणों को रोचक प्रभावोत्पादक बना दिया है वहीं महत्त्वपूर्ण घटनाओं के उल्लेख ने इस युग के संस्मरणों को अत्यधिक प्रेरणाप्रद उपयोगी एवं स्मरणीय स्वरूप प्रदान कर दिया है।

उपसंहार

आधुनिक युग में संस्मरण-विद्या अधिक परिष्कृत और व्यापक हो गई है। विद्या अधिक परिंष्कृतं प्रत्येक रचना के सृजन में लेखक का विशिष्ट गुण तथा विशेष प्रयोजन छिपा रहता है। संस्मरणकार संस्मरण में स्वयं के अनुभवों की अनुभूतियों को संवेदनाओं के साथ व्यक्त करता है लेखक अपने चारों तरफ के परिवेश एवं तत्कालीन परिस्थितियों को स्वान्तः सुखाय और आत्म संतोष के उद्देश्य से संस्मरण को उद्धृत करता है। संस्मरण-साहित्य अपने उद्देश्य की दृष्टि से बहुआयामी साहित्यिक विधा है, जिसमें संस्मरणकार अपनी मोहक एवं मार्मिक स्मृतियों को संवेदना के धरातल पर भावना से परिपूर्ण होकर अतीत के स्मरणीय स्मृति-सन्दर्भों से पाठक को परिचित कराता है। संस्मरण लेखक विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन के बहुत से अनछुए स्मृति-सन्दर्भों को चित्रित कर पाठकों से उनका सीधा साक्षात्कार कराता है। संस्मरण कार्य व्यक्तियों एवं घटनाओं से सम्बन्धित अनेक ऐसे सन्दर्भों को प्रस्तुत करता है, जिनसे उन संस्मर्ण्य-व्यक्तियों एवं घटनाओं की प्रमाणिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है जिसमें संस्मर्ण्य व्यक्तियों की साहित्यिक विशिष्टताओं का अध्ययन किया जा सकता है। 'संस्मरण' शब्द 'स्मृ ' धातु में 'सम' उपसर्ग तथा 'ल्युट' (अण) प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ सम्यक् स्मरण है। किसी घटना, दृश्य, वस्तु या व्यक्ति को पूर्णरूपेण आत्मीयतापूर्वक याद करना स्मरण कहलाता है। साहित्य की संस्मरण विधा इसी आत्मीयतापूर्वक याद किए जाने वाले घटना दृश्य या वस्तु आदि से सम्बन्धित है।

संस्मरण कथासाहित्य से अलग आत्मकथा-, जीवनी, रिपोर्ताज, निबन्ध, रेखाचित्र के क्षेत्र की लघु आकार की विधा है। यद्यपि संस्मरणविधा में कथा तत्व-,

चरित्र-चित्रण, घटनाएँ, भाव, स्थितियों एवं परिस्थितियों का समावेश रहता है, फिर भी यह कथा-साहित्य की विधा नहीं है। संस्मरण इतिहास और साहित्य का मिला-जुला रूप है। संस्मरण लेखक अपने को केन्द्र में न रखकर व्यक्ति या घटना का स्मृति ज्ञान के आधार पर वर्णन करता है। संस्मरणाकार यदि अपने सम्बन्ध में लिखता है तो उसकी रचना आत्मकथा के निकट चली जाती है और यदि वह अन्य व्यक्तियों के विषय में लिखता है तो वह रचना उस व्यक्ति का जीवन-चरित्र प्रतीत होने लगती है। अतः कहा जा सकता है कि संस्मरण न तो जीवनी है और न ही आत्मकथा। संस्मरण संस्मर्ण्य व्यक्ति के चरित्र की विशेषताओं को बताने वाले होते हैं। संस्मरण अतीत की अनुभूतियों का विवरण मात्र प्रस्तुत नहीं करते अपितु व्यक्ति के व्यक्तित्व के उन प्रसंगों को भी प्रकाशित करते हैं, जिनसे प्रेरित होकर लेखक संस्मरण रचना की ओर प्रवृत्त होता है। संस्मरण द्वारा संस्मर्ण्य व्यक्ति के देशकाल का भी प्रकाशन होता है। जिस क्षेत्र का वर्ण्य व्यक्ति होता है, उसके व्यक्तित्व के विधायक विवरण और परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि व्यक्ति साहित्यिक है तो उसके संस्मरणों में लेखक उसके साहित्यिक व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है और साथ ही साथ उसके साहित्यिक महत्त्व और तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का भी वर्णन करता है। इसी प्रकार लेखक सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक व्यक्तियों के संस्मरण भी लिखता है।

संस्मरण-साहित्य को अलंकृत करने वाले कवियों में हरिवंशराय बच्चन भी उल्लेखनीय हैं। बच्चन ने 'नये पुराने झरोखे' संस्मरणात्मक कृति में संस्मरण्य-व्यक्तियों के साथ यथास्थान आधुनिक हिन्दी-साहित्य अंकन संस्मरणात्मक शैली में किया है। अमृतलाल नागर ने अपनी संस्मरणात्मक कृति 'जिनके साथ जिया ' में अपने सम्पर्क में आए व्यक्तियों के संस्मृत क्षणों को बड़ी सजीवता के साथ अंकित किया है। ये संस्मरण उनके निजी व्यक्तित्व की गन्ध से सुवासित हैं, जिनके साथ रहकर लेखक ने जीने का ढंग सीखा एवं समय-समय पर प्रभावित एवं लाभान्वित हुआ। हिन्दी-साहित्य के समर्पित साधक विष्णु प्रभाकर का संस्मरण-साहित्य 'जाने अनजाने' 'यादों की छाँव में' , 'समान्तर रेखाएं' , मेरे अग्रजः मेरे मीत, 'मेरे हम सफर' , का शोध-प्रबन्ध में मूल्यांकन किया गया है।

लेखक की संस्मर्ण्य व्यक्तियों के प्रति असीम सहानुभूति एवं महत्त्वपूर्ण घटना के उल्लेख ने इन संस्मरणों को प्रेरणास्पद बना दिया है।

मनोहर श्याम जोशी की 'लखनऊ मेरा लखनऊ' कृष्ण बिहारी मिश्र की 'नेह के नाते अनेक' विश्व नाथ त्रिपाठी की नगा तलाई का गाँव 'विष्णु कांत शास्त्री की' पर साथ साथ चल रही है। केशवचन्द्र वर्मा की-'सुमिरन के बहाने', पं सूर्य नारायण व्यास की 'यादें', काशीनाथ सिंह की 'घर का जोगी जोगड़ा', रवीन्द्रनाथ त्यागी की 'बसंत से पतझर तक' जे कौशल की .एन .'दर्द आया था दबे पांव', पद्मा सचदेव की 'इन बिन', पांडेय बेचेन शर्मा उग्र की 'परिशिष्ट', राजेन्द्र जोशी की 'नंद भाषा फकीर से वजीर', रामशरण जोशी 'अपनों के पास अपनों से दूर', उषा महाजन की 'दर्द मैंने जाना', कृष्णा सोभति की 'हम हशमत', शिवेन्द्र कुमार सिंह की 'यह जो है पाकिस्तान', डॉ कांति कुमार जैन की .'बैकुण्ठपुर में बचपन', भगवान दास मोरवाल की 'पकी जेठ का गुल मोहर', पुष्पा भारती की 'यादें, यादें और यादें', सुधीर चंद की 'बुरा वक्त अच्छे लोग' आदि महत्वपूर्ण संस्मरणात्मक कृतियाँ हैं।

इक्कीसवीं सदी के संस्मरणों में व्यक्तिगत सम्पर्कों का ही उल्लेख नहीं किया वरन् जीवन की महत्त्वपूर्ण बातों एवं घटनाओं को चारूतापूर्ण तरीके से प्रकट किया है। संस्मरणकारों ने संस्मरण लिखते समय तटस्थता का परिचय दिया है। इसलिए इन संस्मरणों में अनेक ऐसे स्मृतिसन्दर्भ आ गए हैं जो पाठकों को - बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। संस्मरणों में साहित्यकार से लेकर साधारण व्यक्ति का भी उल्लेख मिलता है।

हिन्दी संस्मरणसाहित्य अपने आँचल में साहित्यकारों से लेकर अनेक ऐसे - सन्दर्भों के प्रकाश पुंज छिपाए हुए हैं-स्मृति, जिन्हें यदि सामने लाया जा सके तो इन साहित्यकारों की रचनाओं और रचनाधर्मिता दोनों के सम्बन्ध में बहुत सी नवीन बातें जानी जा सकती हैं। ज्ञात, अज्ञात एवं विस्मृत हो चुके साहित्यकारों के विषय में नवीन अवधारणाएँ निश्चित की जा सकती हैं। इनमें से कतिपय अवधारणाएँ तो ऐसी हो सकती हैं जो साहित्य के इतिहास में प्रचलित परम्परागत मान्यताओं में परिवर्तन ला सकती हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में 'संस्मरण' शब्द को व्युत्पत्ति, अवधारणा एवं स्वरूप, भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा के आधार पर परिभाषित किया गया है। इसी के साथ संस्मरण-विधा का साम्य और वैषम्य हिन्दी गद्य की अन्य विधाओं से किया

गया है। हिन्दी गद्य की विकास परम्परा में संस्मरण-विधा की विकास परम्परा का अध्ययन किया गया है। हिन्दी साहित्योतिहास में अनेक संस्मरण लिखे गये हैं । इक्कीसवीं सदी के प्रमुख संस्मरणकारों के प्रमुख संस्मरणों को केन्द्र में रखकर उनका अनुशीलन किया गया है। छायावादोत्तर संस्मरण साहित्यिक फलक से लेकर सामान्य जन पर लिखे गये हैं, जिनमें काव्य, चित्रकला तथा मनोविज्ञान आदि का पुट देखने को मिलता है। कवियों, लेखकों, आलोचकों, समाज-सुधारकों एवं सामान्यजनों को लेकर संस्मरण रचना की गई है। भावुकता, रोचकता, व्यक्तित्व का सुचारू रूप से चित्रण तथा आत्मोद्घाटन ने इस युग के संस्मरणों को प्राणवान बना दिया है। ऐसे संस्मरणों की ज्योतिर्मय परम्परा से विवेच्य शोध-प्रबन्ध की उपादेयता स्वयं सिद्ध है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (अध्याय छः)

[१] डॉ. रमेशचन्द्र 'राजभाषा हिंदी और तकनीकी अनुवाद' पृ.सं. 46

[२] डॉ. डॉ.मोहन अवस्थी 'आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प' पृ.सं. 191

[३] डॉ. जीवन प्रकाश जोशी 'आधुनिक गीतकाव्य का शिल्प विधान' पृ.सं. 46

[४] डॉ. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' 'माटी हो गयी सोना (परिचय के बोल)' पृ.सं. 12

[५] डॉ. बल्लभ डोभाल 'जो भुलाए न बने' पृ.सं.9

[६] डॉ. राहुल सांस्कृत्यायन 'मेरे असहयोग के साथी' पृ.सं. 19

[७] डॉ. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' 'दीप जले और शंख बजे' पृ.सं. 92

[८] डॉ. धीरेन्द्र शर्मा 'हिंदी साहित्यकोश' पृ.सं. 441-442

[९] डॉ. विष्णु प्रभाकर 'यादों की छाव में' पृ.सं. 22-23

[१०] डॉ. मनोहर श्याम जोशी 'रचनाओं के बहाने एक स्मरण' पृ.सं. 12

[११] डॉ. रविन्द्र नाथ त्यागी 'बसंत से पतझर तक' पृ.सं. 95-96

[१२] डॉ. माखनलाल चतुर्वेदी 'समय के पाँव' पृ.सं. 15

[१३] डॉ. शिवेन्द्र कुमार सिंह 'यह जो पाकिस्तान' पृ.सं. 110

[१४] डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी 'नंगा तलाई का गाँव' पृ.सं. 23, 25

[१५] डॉ. कृष्णा सोबति 'हम हशमत' पृ.सं. 143

[१६] डॉ. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' 'कारवां आगे बढ़े' पृ.सं. 62

[१७] डॉ. गुलजार 'पिछले पन्ने' पृ.सं. 42-43

[१८] डॉ. भवदेव पांडेय 'उग्र का परिशिष्ट' पृ.सं. 52

[१९] डॉ. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' 'कारवां आगे बढ़े' पृ.सं. 101-102

[२०] डॉ. निर्मल वर्मा 'चिड़ों पर चाँदनी' पृ.सं. 78-79

[२१] डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी 'नंगा तलाई का गाँव' पृ.सं. 50-51

[२२] डॉ. पदमा सचदेव 'इन बिन' पृ.सं. 98

[२३] डॉ. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' 'कारवां आगे बढ़े' पृ.सं. 43

[२४] डॉ. भवदेव पांडेय 'उग्र का परिशिष्ट' पृ.सं. 131, 142

[२५] डॉ. निर्मला वर्मा 'चिड़ों पर चाँदनी' पृ.सं. 129

[२६] डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी 'नंगा तलाई का गाँव' पृ.सं. 93

[२७] डॉ. माखनलाल चतुर्वेदी 'समय के पाँव' पृ.सं. 58

[२८] डॉ. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' 'कारवां आगे बढ़े' पृ.सं. 102

[२९] डॉ. जे.एन.कौशल 'दर्द आया था दबे पाँव' पृ.सं. 122-123

[३०] डॉ. कृष्णा सोबति 'हम हशमत' पृ.सं. 14

[३१] डॉ. भोलानाथ तिवारी 'भाषा विज्ञान' पृ.सं. 1

[३२] डॉ. पद्मनारायण आचार्य 'आधुनिक भाषा विज्ञान' पृ.सं. 14

[३३] डॉ. नित्यानन्द तिवारी 'आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध' पृ.सं. 6, 7

[३४] डॉ. शरत दत्त 'जो भुलाए न बने' पृ.सं. 9

[३५] डॉ. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' 'दीप जले और शंख बजे' पृ.सं. 92

[३६] डॉ. राम कमल राय 'स्मृतियों का शुक्ल पक्ष' पृ.सं. 83

[३७] डॉ. भागीरथ मिश्र 'नेह के नाते अनेक' पृ.सं. 85, 86

[३८] डॉ. माखनलाल चतुर्वेदी 'समय के पाँव' पृ.सं. 29

[३९] डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी 'नंगा तलाई का गाँव' पृ.सं. 75

[४०] डॉ. माखनलाल चतुर्वेदी 'समय के पाँव' पृ.सं. 48

[४१] डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी 'नंगा तलाई का गाँव' पृ.सं. 93

[४२] डॉ. धीरेन्द्र वर्मा 'हिंदी साहित्य कोश (पारिभाषिक शब्दावली भाग-1) पृ.सं. 836

[४३] डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त 'भारतीय तथा पाश्चात्य काव्य शास्त्र' पृ.सं. 182

[४४] डॉ. मक्कनलाल शर्मा 'भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धान्त' पृ.सं. 95

[४५] डॉ. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' 'कारवां आगे बढ़े' पृ.सं. 77

[४६] डॉ. जे.एन.कौशल 'दर्द आया था दबे पाँव' पृ.सं. 263

[४७] डॉ. जे.एन.कौशल 'दर्द आया था दबे पाँव' पृ.सं. 62

[४८] डॉ. राम कमल राय 'स्मृतियों का शुक्ल पक्ष' पृ.सं. 94

[४९] डॉ. निर्मला वर्मा 'चिड़ों पर चाँदनी' पृ.सं. 162

[५०] डॉ. काशीनाथ सिंह 'घर का जोगी जोगड़ा' पृ.सं. 32, 33

[५१] डॉ. कृष्णा सोबति 'हम हशमत' पृ.सं. 88

[५२] डॉ. माखनलाल चतुर्वेदी 'समय के पाँव' पृ.सं. 17, 18, 48

[५३] डॉ. रविन्द्र नाथ त्यागी 'बसंत से पतझर तक' पृ.सं. 107-108

[५४] डॉ. रविन्द्र नाथ त्यागी 'बसंत से पतझर तक' पृ.सं. 96

[५५] डॉ. गुलजार 'पिछले पन्ने' पृ.सं. 42, 43

[५६] डॉ. धनराज 'मानधाणे' 'हिंदी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास' पृ.सं. 412

निष्कर्ष

"इक्कीसवीं सदी का हिंदी संस्मरणात्मक साहित्य एक अध्ययन :" पर विहंगम दृष्टिपात करने पर यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि साहित्यकारों ने जो भी अनुभव किया, जो भी अपनी खुली आँखों से देखा, परखा और चौकन्ने कानों से सुना तथा जो कुछ भी स्मृति की कोठरी से बाहर आ पाया उसे लिख डाला। लिखने की यही तीव्र प्रवृत्ति और सहज अभिव्यक्ति लेखक की स्वतंत्र मौलिक लेखन शैली को दर्शाती है। लेखक ने संस्मरण का सृजन सहज रूप से किया है और जीवन संघर्ष की गाथा को भी स्वाभाविकता प्रदान की है। हिन्दी साहित्यकारों ने सभी संस्मरणों में पात्रों एवं घटनाओं का संयोजन तो किया ही है, वहीं आवश्यकतानुरूप पात्रों के मनोभावों का खुलासा भी किया है। मनोभावों का सहज रूप से चित्रण संस्मरणकार के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को उजागर करता है। जो उनके पात्रों के माध्यम से यत्र तत्र अनुभूत किया जा-सकता है। यही नहीं भारतीय सांस्कृतिक परिवेश का संस्मरण किया, जीवन मूल्यों की सार्थकता को भी उजागर किया है, जो कि लेखकों के आदर्शवादी दृष्टिकोण का द्योतक है। भाषा और शैली की दृष्टि से ये संस्मरण सहज, सरल, सुबोध हैं। लेखकों ने जहाँ कहीं भी संवादात्मक शैली का प्रयोग किया है वहाँ उन्होंने संवादों को थोपा नहीं है वरन् पात्रों की आवश्यकतानुरूप उन्हीं की भाषा में उन्हीं से कहलवाया है जिससे संस्मरण कल्पना से परे स्वाभाविक प्रतीत होता है। यही कारण है कि पाठक इनसे रूबरू होकर स्वयं की उपस्थिति कहीं न कहीं महसूस करता है। यही साहित्य की सफलता भी है और सार्थकता भी।

वर्तमान लेखकों की संस्मरण अपनी ताजगी, स्फूर्ति और शिल्प की नवीनता में अत्यधिक सम्पन्न है। इन संस्मरणों में लेखकों ने जहाँ सामाजिक दायित्व का निर्वाह सफलतापूर्वक किया है और सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की है, वही रूढ़ियों का भी बहिष्कार किया है। व्यक्ति के आत्मसंकट, सामाजिक परिवर्तन की स्थितियों, सत्ता और श्रम के संघर्ष तथा आम आदमी की जिन्दगी की पहचान में संस्मरण सर्वथा सफल है। आधुनिक युग में मूल्य सरिता की अभिव्यक्ति में जो विस्तृत फैला एवं गहराव आया है, उन सामाजिक मूल्यों के विविध स्वरूपों के अंकन में ये संस्मरण अत्यंत ईमानदार है।

आधुनिक युग के संस्मरण अतीत की अपेक्षा अधिक आक्रामक, सामाजिक जीवन की विसंगतियों के कारण आक्रोश से भरे हुए तथा युवा पीढ़ी की मानसिकता और इस मानसिकता को तोड़ने वाली सत्ता के विभिन्न चेहरों की पहचान में सजग और सतर्क है। नारी जीवन के बहुआयामी रंगों को विविध दृष्टिकोणों से परख चिन्तन कर नारी अस्तित्व की मौलिक अवधारणा स्थापित की है।

संस्मरण का साहित्यिक एवं तात्विक विवेचन करते हुए परिचय, स्वरूप, लक्षण, तत्व, संस्मरण के नवीन रूप, भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण से दोनों रूपों में प्रस्तुत किया। शोधार्थी ने विभिन्न संस्मरणों में से हिन्दी साहित्यकारों के संस्मरण के साहित्य संसार का उद्घाटन किया, जिसमें संस्मरण के प्रारम्भ से लेकर अद्यतन संस्मरण साहित्य का अध्ययन, मनन एवं विश्लेषण किया। प्रत्येक साहित्यकार का कार्यक्षेत्र अलग रहा इसीलिए जीवनानुभव भी विभिन्न एवं विलग रहे। यथार्थपरक विधा के अनुशीलन द्वारा साहित्यकारों के अमूल्य अनुभवों का आस्वादन करते हुए उनसे जीवन सम्बन्धी दिशानिर्देश प्राप्त किये। शोधार्थी ने - शोध के द्वारा लेखक के उन अनछुए पहलुओं को प्रकाश में लाने की कोशिश की है जो अब तक लेखक तक ही सीमित थे। उन्हें शोध की दृष्टि से अन्वेषण करते हुए उनमें छिपी हुई भावना को भाव और कला की कसौटी पर प्रकाश में लाना शोधार्थी का लक्ष्य रहा है। विधा के श्रेष्ठतम परिरूप का परिदृश्य उपस्थित करते हुए सामान्य से असाधारण तक की संस्मरण का उल्लेख करना और उसका कारण देना शोधार्थी का लक्ष्य रहा है। हिन्दी संस्मरण साहित्य के सम्बन्ध में अब तक के अनुसंधानों से इतर नवीन निष्कर्ष प्रस्तुत करना शोधार्थी का लक्ष्य रहा है। हिन्दी संस्मरण साहित्य का अध्ययन करते हुए शोधार्थी ने अध्ययन, अन्वेषण, विश्लेषण के द्वारा अपनी ही नहीं वरन् जिज्ञासु वर्ग की जिज्ञासा का शमन करने का प्रयास किया है। विषय से संबंधित समस्त प्रश्नों का हल ढूंढने का प्रयास किया गया एवं संस्मरण विधा को समीक्षात्मक रूप में पाठकों के सामने लाना शोधार्थी का मूल उद्देश्य है।

अपने भोगे हुए पलों को अच्छी स्मृतियों को समाज तक पहुँचाना, कहने के लिए तो यादें स्मृतियों से तो जुड़ कर पन्नों पर उतर जाती हैं लेकिन सच्चाई यह है कि जब मनुष्य को कोई बात भीतर ही भीतर मथने लगती है तब तक वह

उससे मुक्ति नहीं पाता। जब वह अपनी रचना के रूप में उसे रचना न दे। संस्मरण लेखक हमेशा अपने अंदर और बाह्ृ दोनों संबंधों को अपनी रचना में से स्थान देता है। उसका उद्देश्य हमेशा अपने अनुभवों को विस्तार देना होता है जिसके माध्यम से वो औरों को यह बता सके कि जिन पलों को उसने भोगा है उसमें जिये गये रिश्तों में क्या-क्या खूबियाँ हैं और क्या-क्या कमियाँ। पाठक इन्हें पढ़कर अपने जीवन में अच्छी बातें ग्रहण कर सके और बुरे से बच सके। संस्मरण लिखने के मूल उद्देश्य में यह कारण विद्यमान होता है। समाज की कोई बात अच्छी या बुरी प्रत्यक्ष या परोक्ष जब हमें अपनी प्रक्रियाओं के लिए प्रोत्साहित करती है, तब वह संस्मरण का पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से, पुस्तक के माध्यम से, भेंटकर्ताओं के माध्यम से, अध्यायों के रूप में छप कर समाज में जनवर्ग का परिष्कार करता है, जिस तरह पाठक होता है, उस तरह के लेखक से वह प्रेरित होता है, इसलिए संस्मरण में कुछ विशेष शीर्षकों के अलावा अपनी रुचि के अनुसार विषयों का चयन किया जाता है। अक्सर देखा गया है कि लेखक संवेदनशील होते हैं और यह संवेदना उन्हें प्रकृति से जोड़ने का कार्य करती है। मित्र और रिश्तेदारों से संबंध बनाने पर मजबूर करती है तथा साथ ही समाज और विश्व से जुड़ने के लिए प्रेरित करती है। जब एक पाठक किसी संस्मरण को पढ़ता है, उस वक्त उसका उद्देश्य होता है समय काटने के लिए कुछ अच्छा पढ़ना। लेकिन जैसे ही वह लेखक की स्मृति के बिम्बों पर विचार करना आरंभ करता है और उसमें उसे अपना जीवन दिखाई देने लगता है तब वह धीरे-धीरे बाह्य तंत्र से रहते हुए आरंभिक रूप से जुड़ना आरंभ कर देता है। यह बात संस्मरण लेखक पर निर्भर करती है कि उसने कितने मनोबल से सत्य स्थापित किया है जिसके आधार पर पाठक इतना जुड़ जाये कि उसे बिना समाप्त किये रुक ना सके। संस्मरण लिखने वाले का और पढ़ने वाले का जब भाव एक हो जाता है, तब संस्मरण का उद्देश्य सिद्ध हो जाता है। यही कारण है कि यह विधा साहित्येत्तर होते हुए भी अत्यंत प्रिय विधा बन गयी। मानव का स्वभाव है कि वह अपनी संवेदनाओं को दूसरे के जीवन में ढूंढता है। इसीलिए जब लेखक यथार्थ से जुड़ कर लिखता है तो पाठक उससे अभिभूत हुए बिना नहीं रह पाता। संस्मरण का उद्देश्य विशेष रूप से यह होता है कि अपने-अपने धरातल से इकट्ठा किये हुये अनुभव रूपी सामग्री को विश्व के कोने-कोने तक पहुंचाकर सभी को समृद्ध स्थानों

से, समृद्ध मनुष्यों से, समृद्ध रहन-सहन से और समृद्ध विश्व से। यह बात तो एकदम सत्य है कि कोई एक व्यक्ति अपने जीते जी पूरे विश्व का भ्रमण, पूरे विश्व का ज्ञान, पूरे विश्व की प्रगति से तादात में या पूरे विश्व के मनुष्यों के परिचय प्राप्त कर उनसे जुड़ नहीं सकता। लेकिन यह अवश्य संभव है कि पुस्तकों के माध्यम से वह इन सबकी जानकारी हासिल कर सकता है। मुख्य रूप से संस्मरण लेखकों का उद्देश्य भी यही होता है। कम समय में एक ही जीवन में पाठकों को विश्व का ज्ञान प्रदान कर सके। संस्मरण पढ़ते समय मैंने पाया कि एक संस्मरण में चित्रित घटनाओं से हमें जो ज्ञान मिलता है वह यदि अलग से पाना चाहें तो कई वर्ष लग जायेंगे उसे पाने में, लेकिन पुस्तक के माध्यम से हम कुछ दिनों में ही उसे प्राप्त कर लेते हैं। यह तो सबको मानना ही पड़ेगा कि संस्मरण बिना उद्देश्य का लिखा ही नहीं गया है, क्योंकि कोई भी साहित्यिक रचना निष्प्रयोजन नहीं लिखी जाती, जिस तरह काव्य रचना का प्रयोजन यश, अर्थ, लोक व्यवहार और आत्मकल्याण आदि है उसी तरह संस्मरण लिखने का उद्देश्य संस्मरण रचनाकार की जीवन कथा का एक अंश होता है उसकी रचना में प्रायः किसी न किसी घटना का आधार स्पष्ट दिखाई पड़ सकता है। संस्मरण सदैव मानवता के उदात्त गुणों को उभारता है और पाठकों के लिए मनोरंजन होने के साथ-साथ प्रेरणादायक भी होते हैं। ऐसा भी कहा जा सकता है कि साहित्य विधा जनकल्याण के भाव से सृजित की जाती है। हिंदी में संस्मरण साहित्य का विकास आधुनिक युग की एक उपलब्धि है। यह मानना इस दृष्टि से सही है कि संस्मरण साहित्य एक स्वतंत्र विधा के रूप में है। संस्मरण में कल्पना को बहुत कम स्थान दिया जाता है। स्मृति का प्रभाव गहरा होता है। संस्मरण को पढ़कर पाठक वर्ग जिस युग में नहीं जन्मा है उस युग को जान सके, उसके लेखकों को जान सके, उसकी संस्कृति को जान सके तथा साथ ही देश विदेश की बहुमुखी प्रतिभाओं को जान सके, महत्त्वपूर्ण चरित्र अपना जीवन किस तरह व्यतीत करते हैं। समाज प्रकृति आदि के विषय में क्या सोचते हैं आदि बातों की जानकारी संस्मरण से प्राप्त की जा सकती है। एक तरफ युग की जानकारी मिलती है, दूसरी तरफ लेखक के स्वभाव का पता चलता है, तीसरे लेखक का वर्तमान और भविष्य इस प्रकार उजागर होकर आता है जिसके द्वारा पाठक अपने जीवन को दिशा दे सकता है। संस्मरण पर शोध करते समय मेरा एक और उद्देश्य रहा, वह यह कि उसके द्वारा हर प्रकार की दृष्टि में

वृद्धि हो जाती है। साहित्यकारों तथा प्रवासी भारतीय के सुंदर प्रसंगों के रोचक वर्णन द्वारा पाठकों का बौद्धिक स्तर भी बढ़ता जाता है। भाषाओं का प्रभावपूर्ण प्रयोग आकर्षक शैली की भी जानकारी प्राप्त होने लगती है। साहित्य में संस्मरण को वह स्थान नहीं प्राप्त हुआ जो कहानी, नाटक, उपन्यास को मिला इसलिए साहित्य में उसे सही स्थान दिलाना भी मेरा एक उद्देश्य रहा है। साहित्य में कोई भी विधा तभी सफल होती है, जब उसका प्रयोग पूरी तरह से किया जाता है। संस्मरण या स्मरण विधा का प्रयोग छूटे हुए चरित्रों के माध्यम से ही जाना जाता है। जबकि सत्य यह नहीं है, मेरा एक उद्देश्य यह भी है कि पाठक इस बात से सजगह हो कि संस्मरण विधा हमारे जीवन में स्मृति का प्रतीक है तथ हर प्रकार के संबंधों का परिचायक है। यदि ऐसा नहीं होता तो लेखक अपनी बीती घटनाओं को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत नहीं कर पाते। संस्मरण विधा पाठकों के लिए अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि उसमें कोई दबावपूर्ण स्थिति नहीं होती। यह एक तरह से मुक्तक रचना के रूप में लिखा जाता है। यही कारण है कि लिखने वाला अपने बाबा पर भी लिख सकता है, अपने पुत्र, पौत्री पर लिख सकता है या फिर घर से जुडे किसी भी व्यक्ति के ऊपर संस्मरण में एकरूपता के साथ भिन्नता भी देखने को मिलती है। यह कारण है कि पाठक किस विधा को पढ़ते समय हतोत्साहित नहीं होते। संस्मरण विधा का उद्देश्य होता है कि लेखक की स्मृति में जो कुछ बार-बार उमड़न-घुमड़नें पैदा करके बैचेनी की स्थिति पैदा कर देते हैं। बस वही संस्मरण विधा का रूप ले लेता है। भाषा कोई भी हो घटना कैसी भी हो, हर संस्मरणकार उन्हीं भावनाओं को सुंदर शब्दों में गढ़ कर इस प्रकार प्रस्तुत कर देता है कि उसके उपरांत ही उसे तसल्ली मिल जाती है। मेरा भी उद्देश्य इस विधा को लेकर यही रहा कि हिंदी के पाठक एक जगह पर अनेक लेखकों के द्वारा लिखे गये संस्मरणों को एक साथ पढ़ सके, उनकी सुविधा को ध्यान में रखते हुए मैंने इस विधा का चुनाव किया।

शोध का प्रमुख विषय ''इक्कीसवीं सदी का हिंदी संस्मरणात्मक साहित्य : एक अध्ययन'' समस्या पर अनुसंधान तथा सत्यान्वेषण करना। शोधार्थी ने शोध विषय के रूप में हिन्दी साहित्य की अनुभूति विधा संस्मरण को चुना तथा ''कोटा विश्वविद्यालय, कोटा'' में शोध विषय का पंजीयन करवाया। शोधार्थी के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु हिन्दी साहित्यकारों द्वारा रचित संस्मरण साहित्य रहा, क्योंकि समग्र

संस्मरण को समेटना शोध के विषय के साथ न्याय नहीं कर पाता। शोधार्थी ने वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करते हुए सर्वप्रथम संस्मरण का सहज अन्वीक्षण किया, तत्पश्चात् सोद्देश्य, क्रमबद्ध, अध्ययन, परिकल्पना का निर्माण, तथ्यों का एकत्रीकरण किया, फिर तर्क की कसौटी पर कसकर निष्कर्ष तथा सत्यान्वेषण को प्रस्तुत किया। शोधार्थी ने संस्मरण साहित्य से संबंधित समस्त सामग्री का संकलन किया। उसके पश्चात् संस्मरण का वर्गीकरण किया, जैसे सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि। संस्मरण साहित्य का वर्गीकरण करने के पश्चात् सभी संस्मरण का अध्ययन एवं अन्वेषण कर भाव पक्ष एवं कला पक्ष का मूल्यांकन कर सत्य तक पहुँचकर उसकी व्याख्या प्रस्तुत की। समस्या के समाधान के विभिन्न चरणों को पार करते हुए उनसे प्राप्त तथ्यों द्वारा नवीनतम सत्यों का उद्घाटन किया। इसमें साहित्यकारों के वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक पक्ष प्रमुख हैं।

शोध सांराश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में गद्य का अपना महत्त्व है, गद्य की विभिन्न विधाओं में संस्मरण-विधा एक अन्यतम विधा है। प्रस्तुत शोध सारांश इक्कीसवीं सदी का हिन्दी संस्मरण-साहित्यः एक अध्ययन मुख्यतया इक्कीसवीं सदीं के संस्मरण और संस्मरणकारों पर केन्द्रित है। उल्लेखनीय है कि संस्मरण-साहित्य की लेखन परम्परा को समझने के लिए हिन्दी गद्य की विकास परम्परा का अवलोकन करना अनिवार्य हो जाता है।

वस्तुतः हिन्दी गद्य की विधाओं को दो रूपों में देखा जाता रहा है-

1. हिन्दी की प्रमुख गद्य विधाएँ।

2. हिन्दी की अन्य विधाएँ।

हिन्दी की प्रमुख गद्य-विधाओं में नाटक, निबन्ध, उपन्यास, कहानी और अन्य गद्य विधाओं में जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, रिपोर्ताज, यात्रावृत्त, डायरी, इण्टरव्यू विधाएँ हैं। (यद्यपि इन गद्य विधाओं के अतिरिक्त और भी अन्य विधाएँ हैं- यथा अभिनन्दन ग्रन्थ, पत्र-पत्रिकाएँ, भूमिका लेखन इत्यादि किन्तु इन सभी विधाओं को यहाँ सम्मिलित नहीं किया जा सकता था) गद्य की विकास परम्परा में हिन्दी संस्मरण का अध्ययन करना और अन्य गद्य विधाओं का संस्मरण से अन्तः सम्बन्ध स्थापित करते हुए प्रमुख इक्कीसवीं सदी को हिन्दी संस्मरणों और संस्मरणकारों का अध्ययन करना ही हमारा उद्देश्य रहा है और यह हमारे शोध की सीमा भी है।

संस्मरण शब्द 'स्मृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग तथा ल्युट (अण) प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका व्युत्पत्ति परक अर्थ सम्यक् स्मरण है। अतः स्मृति वर्णन को ही संस्मरण की पहचान माना जाता है। संस्मरण का शाब्दिक अर्थ है- सम्यक् स्मरण। सम्यक् शब्द का अर्थ है पूर्णरूप से आत्मीयता एवं गम्भीरतापूर्वक किसी, व्यक्ति, घटना दृश्य और वस्तु का स्मरण करना। संस्मरण में भावना की गहनता और यथार्थ परक चित्रण के साथ संस्मरणकार संस्मर्ण्य व्यक्ति, घटना दृश्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण या अज्ञात तथ्य का पाठकों से साक्षात्कार कराता है। 'संस्मरण' एक ऐसी विधा है, जिसमें लेखक स्मृति-सन्दर्भों का अत्यन्त सूक्ष्म और हृदयग्राही विवरण इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि पाठक की आँखों के समक्ष वे

सन्दर्भ-स्मृति चित्रपट के चित्रों की भाँति सजीव हो उठे। लेखक संस्मरण में आत्मकथात्मक, निबन्धात्मक, वर्णनात्मक आदि किसी भी शैली का प्रयोग कर सकता है किन्तु सभी में एक निजीपन और आत्मीयता का संस्पर्श समाहित रहता है।

डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार -'व्यक्तिगत अनुभव से रचा गया इतिवृत्त अथवा वर्णन संस्मरण है।'

'संस्मरण' आत्मीयतापूर्वक याद किए जाने वाले घटना दृश्य या वस्तु से सम्बन्धित विधा है। इसमें विशिष्ट व्यक्ति, घटना दृश्य या वस्तु जो अपनी विशेषता के कारण रचनाकार के स्मृतिपटल पर बने रहते हैं और रचनाकार की प्रतिभा का-स्पर्श पाकर शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त हो जाते हैं। 'संस्मरण' विधा को हिन्दी गद्य की अन्य विधाओं आत्मकथा, रिपोर्ताज, जीवनी, रेखाचित्र और निबन्ध के अन्तर्गत रखकर देखा जाता रहा है, किन्तु अब यह एक स्वतन्त्र विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है। आत्मकथा से यह विधा इसलिए भिन्न है क्योंकि आत्मकथा लिखने वाला आत्मकथा का मुख्य पात्र स्वयं होता है और इतिहास एवं घटनाओं की केवल वे ही बातें समाहित रहती हैं, जो उसके जीवन को प्रभावित करती हैं। जबकि संस्मरणकार संस्मरण में स्वयं को केन्द्रित करके नहीं लिखता वरन् वह इतिहास या घटना का वस्तुपरक वर्णन करता है। लेखक जो स्वयं देखता है, अनुभव करता है उसी का वर्णन संस्मरण में करता है। संस्मरण लेखक यदि अपने सम्बन्ध में लिखता है तो उसकी रचना आत्मकथा के निकट चली जाती है, और यदि अन्य व्यक्तियों के विषय में लिखता है तो वह रचना जीवनी प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि संस्मरण न तो आत्मकथा है और न ही जीवनी। संस्मरणकार व्यक्तिगत अनुभवों को भाव प्रवणता के साथ इस तरह अभिव्यक्त करता है कि उसका चित्र साकार हो उठता है। यह वर्णन काल्पनिक न होकर सत्य पर आधारित होता है, जो लेखक की स्मृति में सुरक्षित रहता है। इसकी सत्यता असंदिग्ध होती है, संस्मरण का उद्देश्य किसी व्यक्ति विशेष के जीवन या घटना के महत्वपूर्ण पक्ष को उपस्थित करना होता है।

'संस्मरण' के लिए लेखक को कतिपय तथ्यों का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। सर्वप्रथम संस्मरण लेखक को संस्मरण में यथातथ्यता की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि संस्मरण नितान्त सत्य घटना को ही अपना वर्ण्य विषय

बनाकर चलता है इसका आधार व्यक्तिगत अनुभव होते हैं, जिन्हें लेखक स्वयं जीता है। किसी कल्पना के लिए इसमें अवकाश नहीं होता। लेखक अपनी भावनाओं के अनुरूप उन व्यक्तिगत अनुभवों में भावात्मकता का रंग भर देता है जिनसे वह प्रभावित रहता है। इस दृष्टि से संस्मरणकार को निष्पक्षता पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। संस्मरण लेखन में मर्मस्पर्शिता, रोचकता, संक्षिप्तता, कलात्मकता पर भी ध्यान देना चाहिए।

संस्मरण का मूलाधार अतीत की वे अनन्त स्मृतियाँ होती हैं जिन्हें लेखक अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक सांकेतिक शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट बनाकर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त करता है। संस्मरण में कथात्मकता होते हुए भी उसे कथा-साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता क्योंकि कथा-साहित्य में किसी घटना का ताना-बाना कल्पना के द्वारा बुना जाता है। घटना वास्तविक ही हो ऐसा कोई बन्धन कथाकार के लिए नहीं होता। कभी-कभी एक छोटे से बिन्दु के आधार पर ही कहानी, उपन्यास का निर्माण होता है, जिसमें लेखक की कल्पना और प्रस्तुतीकरण के द्वारा ही उसे एक सुन्दर आकार मिल जाता है किन्तु संस्मरण का मूलाधार लेखक के जीवन की वास्तविक घटनाएँ ही होती हैं। यद्यपि विवरण की शैली संस्मरणकार की अपनी शैली होती है, जिसमें वह भावनाओं के रंग भर देता है।

संस्मरण लिखने की प्रथा विशेष रूप से चैथे दशक में प्रारम्भ हुई। प्रेमचन्द्र के सम्पादकत्व में 'हंस' का संस्मरण अंक प्रकाशित हुआ। संस्मरण-साहित्य के विकास में पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने संस्मरणात्मक कृतियों का सृजन कर अपना अमूल्य योगदान दिया। राजा राधिकारमण प्रसाद तथा बेनीपुरी ने भावात्मक शैली में बहुत रोचक संस्मरण लिखे। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने 'पंथ चिन्ह' में कुछ संस्मरण संकलित किये हैं। सियारामशरण गुप्त की कृति 'झूठ-सच' में संस्मरण विधा की उल्लेखनीय सामग्री प्राप्ति होती है। सुप्रसिद्ध रेखाचित्रकार श्रीराम शर्मा ने 'सन बयालिस के संस्मरण' (1948) भी लिखे। महादेवी वर्मा की कृतियों में दोनों विधाओं रेखाचित्र-संस्मरण का मिश्रण मिलता है। महाराज रघुवीर सिंह की कृति 'शेष स्मृतियाँ' (1939) तथा भगवतशरण उपाध्याय की पुस्तक 'मैंने देखा' (1950) है। जैनेन्द्र के अनेक अविस्मरणीय संस्मरण 'ये' और 'वे' में संकलित हैं। रामनाथ 'सुमन' की

अनेक संस्मरणात्मक कृतियाँ हैं। यथा 'हमारे नेता (1942) छायावाद युगीन स्मृतियाँ' 'स्मृति के पंख' 'मैंने स्मृति के दीप जलाए' आदि। प्रेमचन्द की धर्मपत्नी शिवरानी देवी ने 'प्रेमचन्द घर में' उत्कृष्ट संस्मरण प्रस्तुत किया। इसी प्रकार ब्रजमोहर व्यास ने 'बालकृष्ण भट्ट-संस्मरणों में जीवन' संस्मरणात्मक कृति का सृजन किया।

पण्डित किशोरीदास वाजपेयी ने 'साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण' तथा 'आचार्य द्विवेदी और उनके संगी' प्रकाशचन्द गुप्त ने 'स्मृतियाँ' पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने 'मनोरंजक संस्मरण' और 'साहित्यिक चुटकुले' प्रस्तुत किये। 'साहित्य का मोड़' 'उत्तप्त जलकण', 'ठण्डी हवाएँ', 'अड़सठ की देहरी से' आचार्य चतुरसेन के 'संस्मरण' भी उल्लेखनीय हैं।

संस्मरण की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें निहित स्मृति वास्तविक, हृदयस्पर्शी और सर्वजनसंवेद्य हो। संस्मरण के लिए स्मरणीय व्यक्ति, वस्तु या घटना के विषय में हम ऐसी दुर्लभ जानकारी देने की स्थिति में होते हैं जो दूसरों के लिए सर्वथा नवीन सिद्ध हो सकती है।

संस्मरण मस्तिष्क से नहीं, अपितु हृदय से सम्बन्ध रखता है। हृदय का योग होने के कारण संस्मरण का रचनाकार स्थान-स्थान पर भावुक हुए बिना नहीं रह सकता और इसी भावुकता का संक्रमण पाठक में भी असंदिग्ध रूप में होता है।

अतीत के सम्बद्ध होने के कारण संस्मरण में ऐतिहासिकता का तत्व विद्यमान होता है। किन्तु संस्मरण लेखक, इतिहासकार की तरह वस्तुनिष्ठ नहीं होता और उसका सम्बन्ध सम्पूर्ण घटनाक्रम से नहीं अपितु उसके केवल उस अंश से होता है जो उसके हृदय का टुकड़ा बन चुका होता है। अनुभूतिपरकता संस्मरण की विषयवस्तु को इतिहास से अलग करती है। फिर भी इतिहास संस्मरण साहित्य से महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है। देशकाल, वातावरण के अनेक चित्र संस्मरण साहित्य से महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है। देशकाल, वातावरण के अनेक चित्र संस्मरण को समृद्ध बनाते हैं। संस्मरण रचनाकार की जीवन-कथा का एक अंग होता है। संस्मरण प्रायः महान् व्यक्तियों से सम्बन्धित होते हैं। आवश्यक नहीं संस्मरण साहित्य के ये महान् व्यक्ति इतिहास के भी महान् व्यक्तियों ऐसे सामान्य व्यक्ति भी संस्मरण के विषय बन सकते हैं जिन पर

इतिहास की दृष्टि नहीं जा सकती। साधारण चरित्र की असाधारणता का चित्र संस्मरण में दिखायी देता है। इस प्रकार स्मरणीय व्यक्ति महापुरुष हो या साधारण संस्मरण सदैव मानवता के उदात्त गुणों को उभारता है और पाठकों के लिए मनोरंजक होने के साथ-साथ प्रेरणादायक भी होता है।

संदर्भ ग्रंथ

आधार ग्रन्थ सूची-

1. डॉ.सभापति मिश्र- भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन-जयभारती प्रकाशन, 2009
2. डॉ.रामचंद्र तिवारी- हिंदी का गद्य-साहित्य विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2007
3. केशवचंद्र वर्मा- सुमिरन को बहानो- लोकभारती प्रकाशन, 2004
4. विश्वनाथ त्रिपाठी- नंगातलाई का गाँव- राजकमल प्रकाशन, 2006
5. मनोहर श्याम जोशी- लखनऊ मेरा लखनऊ वाणी प्रकाशन, 2002
6. कान्तिकुमार जैन-बैकुंठपुर में बचपन-सामयिक बुक्स, 2011
7. कन्हैयाला मिश्र 'प्रभाकर- कारवाँ आगे बढ़े-भारतीय ज्ञानपीठ, 2000
8. राजेन्द्र जोशी- नंद बाबाः फकीर से वजीर-सामयिक बुक्स, 2010
9. काशीनाथ सिंह-घर का जोगी जोगड़ा- राजकमल प्रकाशन, 2008
10. कान्तिकुमार जैन- जो कहूँगा सच कहूँगा-वाणी प्रकाशन, 2006
11. रवीन्द्रनाथ त्यागी- वसंत से पतझर-भारतीय ज्ञानपीठ, 2005
12. कृष्णाबिहारी मिश्र- नेह के नाते- भारतीय ज्ञानपीठ, 2011
13. पदमा सचदेव- इन बिन भारतीय ज्ञानपीठ 2006
14. रामकमल राय-स्मृतियों का शुक्ल पक्ष-लोकभारती, 2002
15. रमानाथ अवस्थि-याद आते हैं-भारतीय ज्ञानपीठ, 2000
16. पं. सूर्यनारायण व्यास-यादें- भारतीय ज्ञानपीठ, 2005
17. मनोहर श्याम जोशी-रघुवीर सहाय, रचनाओं के बहाने-वाणी प्रकाशन, 2003
18. विष्णुकान्त शास्त्री- पर साथ-साथ चल रही याद-लोकभारती, 2004
19. शिवेन्द्र कुमार सिंह- यह जो पाकिस्तान-भारतीय ज्ञानपीठ, 2013
20. रामशरण जोशी- अपनो के पास अपनों से दूर- कल्याणी शिक्षा परिषद, 2010
21. अज्ञेय- स्मृति लेखा- नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
22. माखनलाल चतुर्वेदी-समय के पाँव-भारतीय ज्ञानपीठ, 2008
23. निर्मल वर्मा- चिड़ों पर चाँदनी-भारतीय ज्ञानपीठ, 2000
24. भवदेव पांडेय- उग्र का परिशिष्ट-भारतीय ज्ञानपीठ, 2008
25. पद्मा सचदेव- लता मंगेशकरः ऐसा कहाँ से लाऊँ- भारतीय ज्ञानपीठ, 2012

26. जे. एन. कौशल-दर्द आया था दबे पाँव-भारतीय ज्ञानपीठ, 2005
27. गुलजार-पिछले पन्ने-भारतीय ज्ञानपीठ, 2012
28. उषा महाजन-जिन्हें मैंने जाना-कल्याणी परिषद, 2011
29. कृष्णा सोबती- हम हशमत-राजकमल प्रकाशन, 2012
30. महादेवी वर्मा- संस्मरण-राजकमल, 1983
31. महादेवी वर्मा- स्मृति की रेखाएँ-लोकभारती, 2010

सहायक ग्रंथ -

32. आचार्यरामचन्द्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास - ज्ञानविहार एजुकेयर डिस्सी 2016
33. डॉ.सभापति मिश्र - भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य-चिंतन - जय भारत प्रकाशन इलाहाबाद 2019
34. डॉ.जयकिशन प्रसाद - हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 1990
35. डॉ.रामचन्द्र तिवारी - हिंदी का गद्य साहित्य - विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2020
36. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1952
37. डॉ.शिवकुमार शर्मा - हिंद साहित्य युग और प्रवृत्तियां - अशोक प्रकाशन, दिल्ली 1989
38. डॉ.नगेन्द्र - भारतीय साहित्य - प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2010
39. सुमन राजे - हिंदी साहित्य आधुनिक इतिहास - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 2016
40. डॉ.नगेन्द्र, डॉ.हरदयाल - हिंदी साहित्य का इतिहास - मयूर पेपरबैक्स, नोएडा 2020
41. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - हिंदी साहित्य का इतिहास - लोकभारतीय प्रकाशन इलाहाबाद 1996
42. डॉ.विवेक शंकर - हिन्दी-साहित्य का प्रवृत्तिमूलक अभिनव इतिहास - राजस्थान **हिंदी ग्रंथ अकादमी 2016**

पत्रिकाएँ

साहित्य अमृत

भाषा

आकार

वाक्

पंचशील शोध समीक्षा

संकल्य

हंस

अनभै

मधुमती

विवरण पत्रिका

आलोचना

शोध दृष्टि

शोध दिशा

आजकल

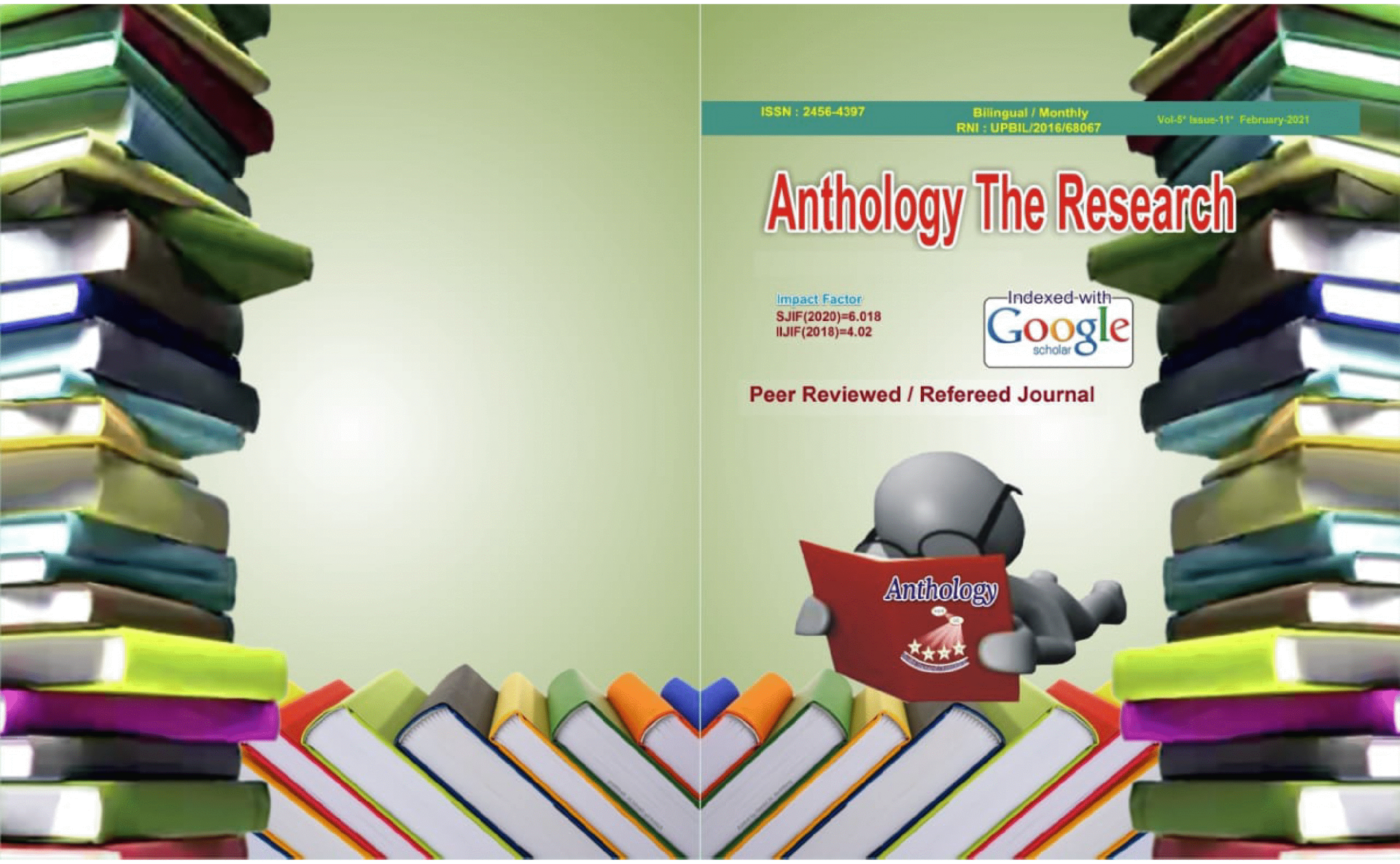

ISSN : 2456-4397
Bilingual / Monthly
RNI : UPBIL/2016/68067
Vol-5* Issue-11* February-2021
Anthology The Research
Impact Factor
SJIF(2020)=6.018
IIJIF(2018)=4.02
Indexed with
Google scholar
Peer Reviewed / Refereed Journal
Anthology

ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-11* February-2021
Anthology : The Research

इक्कीसवीं सदी में हिंदी संस्मरणात्मक साहित्य का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप, वर्गीकरण, विकास एवं अन्य विधाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन"

Study of The Meaning, Definition, Form, Classification and Development of Memoirs in Hindi Literature in the Twenty-First Century and Comparison with Other Genres

Paper Submission: 15/02/2021, Date of Acceptance: 26/02/2021, Date of Publication: 27/02/2021

गजानन्द मीणा
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
राजकीय कला महाविद्यालय,
कोटा, राजस्थान, भारत

सारांश

स्मृति केआधार पर किसी विषय पर अथवा किसी व्यक्ति पर लिखित आलेख को संस्मरण कहलाता है। संस्मरण विधा मनुष्य के लिए एक उत्सुकता का विषय है। संस्मरण विधा में शोध कार्य करते समय न जाने कितने लोगों के चरित्रों से हमें जीवन जीने की प्रेरणा मिल गयी। किसी घटना या व्यक्ति से सम्बन्धित अनुभूति जब लेखक के हृदय पटल पर आकर मन के भीतर ही भीतर कुरेदती है तब वह अनुभूति अभिव्यक्ति के रूप में साकार हो संस्मरण बन जाती है। संस्मरण लेखक के निजी जीवन की घटनाओं पर आधारित होता है। यह लेखक का अपना अनुभव होते होते हुए भी दूसरे के जीवन को उद्घाटित करता है जिससे तत्कालीन परिस्थिति का बोध होता है। संस्मरण में लेखक अपने जीवन के अतीत में पहुँचकर अपने स्मृतिकोश में सुरक्षित व्यक्ति, वस्तु, दृश्य या घटना का वर्णन इस ढंग से करता है कि वर्ण्य–वस्तु सजीव रूप में पाठक के सम्मुख उपस्थित हो जाती है। स्मृति के आधार पर हें स्मरणीय व्यक्ति के आत्मीय सम्बन्ध से जोड़ती है। संस्मरण साहित्य एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हुआ है। सदैव यह पाठकों के लिए प्रेरणादायक है।

On the basis of memory, an article or treatise written in relation to which subject or device is called a memoir. Memoir literature is a matter of curiosity for humans. While doing research work in memoir literature, we do not know how many people got the inspiration to live life through their character when an event or a person has a related feeling. He come to the heart and crushes it inside the mind. She then becomes a memoir by realizing as acognition accused. Memoirs based on the personal life events of the author it reveals the life of another despite the experience of the writer. In which theme is a sence of the then circumstances. In the memoir, the author reaches into the past of his life and describes a safe person object. Scene or events his memory book in such a way that the narration object becomes presents in front of the reader as a living being. The basis memory caonnects us to the intimate relationship with the appointment of a person of remembrance.

Memoir literature has developed as an independent genre. It is inspiring for the readers.

मुख्य शब्द : हिन्दी साहित्य, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा, परिभाषा स्वरूप, वर्गीकरण, विकास।
Hindi Literature, Memoirs, Sketches, Biography, Autobiography, Definition, Classification, Development.

प्रस्तावना

साहित्य की दुनिया का अपना पदानुक्रम है। इस पदानुक्रम में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना, निबंध आदि को साहित्य की प्रमुख विधाएँ माना जाता है और जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा–वृतांत, रिपोर्ताज आदि को फुटकर या अन्य गद्य विधाओं की श्रेणी में डाल दिया जाता

हैं डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' से लेकर डॉ. रामचंद्र तिवारी के 'हिंदी का गद्य साहित्य' और दूसरी प्रमुख पुस्तकों तक इन विधाओं को हाशिये का साहित्य समझने की प्रवृत्ति साफ–साफ दिखाई देती हैं लेकिन समय के साथ–साथ फुटकर कोटे में रखी जाने वाली ये विधाएँ साहित्य के केन्द्रस्थल की ओर बढ़ रही है और वर्तमान समय में इनका महत्त साहित्य की परंपरागत केन्द्रीय विधाओं से कतई कम नहीं माना जाता है। विगत कुछ वर्षों में इनमें से कुछ गद्य विधाओं ने अपने लिए हिंदी–साहित्य में खास मुकाम बनाया है और इनकी चर्चा कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक से कम नहीं हो रही है।

हाशिये से उठकर केन्द्र में आने वाला ऐसा ही एक विधा रूप है संस्मरण का। बीसवीं सदी की शुरुआत में हिंदी–साहित्य में प्रकट होने वाली यह आधुनिक विधा पश्चिम की देन है। बीसवीं सदी को भारतीय जीवन में बदलाव की सदी कहा जा सकता है। इस सदी में समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, साहित्य – हर क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन और अभिनव प्रयोग दिखाई देते हैं। इस अभिनव प्रयोगशीलता और बदलाव की प्रेरणा ने साहित्य के क्षेत्र में भी नयी विधाओं के जन्म और विकास में अपनी भूमिका निभाई। पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से इस सदी के आरंभ से ही नयी विधाओं का जन्म हुआ, जिनमें संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, जीवनी, आत्मकथा तथा यात्रा–साहित्य प्रमुख है। इसमें दोराय नहीं कि ये विधाएँ यूरोपीय साहित्य की देन हैं। इन विधाओं का सूत्र प्राचीन साहित्य में खोजना एक दुराग्रह मात्र कहा जा सकता है।

अध्ययन का उद्देश्य

संस्मरण लिखते समय लेखक का उद्देश्य होता है अपने भोगे हुए पलों को अच्छी स्मृतियों को समाज तक पहुँचाना। कहने के लिए तो यादें स्मृतियों से तो जुड़कर पन्नों पर उतर जाती है। संस्मरण लेखक हमेशा अपने अंदर और बाह्य दोनों संबंधों को अपनी रचना में से स्थान देता है उसका उद्देश्य हमेशा अपने अनुभवों का विस्तार देना होता है जिसके माध्यम से वह औरों को यह बता सके कि जिन पलों को उसने भोगा है, उसमें जिये गये रिश्तों में क्या–क्या खूबियाँ हैं और क्या–क्या कमियाँ। पाठक इन्हें पढ़कर अपने जीवन में अच्छी बातें ग्रहण कर सके और बुरे से बच सके। संस्मरण लिखने के मूल उद्देश्य में यह कारण विद्यमान होता है कि समाज की कोई भी बात अच्छी या बुरी प्रत्यक्ष या परोक्ष जब हमें अपनी प्रक्रियाओं के लिए प्रोत्साहित करती है। तब यह संस्मरण का पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से पुस्तक के माध्यम से, भेंटकर्त्ताओं के माध्यम से अध्यायों के रूप में छप कर समाज में जनवर्ग का परिष्कार करता है।

परिभाषा

संस्मरण अंगरेजी के 'मेमायर्स' शब्द का हिंदी अनुवाद है, जिसका अर्थ है –स्मरण के आधार पर लिखा गया साहित्य रूप। संस्मरण शब्द की व्युत्पत्ति सम् + स्मृ + ल्युट (अण्) से हुई है, जिसका अर्थ होता है – सम्यक् तरीके से अर्थात् भली–भाँति किया गया स्मरण। सम्यक् स्मृति। यानी सहज आत्मीयता तथा गंभीरतापूर्वक किसी व्यक्ति, घटना, दृश्य, वस्तु आदि का पूर्णरूपेण स्मरण करना। स्पष्ट है कि इस विधा का मूल आधार स्मरण या स्मृति है। हिंदी साहित्यकोश के अनुसार, "स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के संबंध में लिखित लेख या ग्रंथ को संस्मरण कह सकते हैं।"

स्मृति की इस महत्ता को स्वीकार करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने संस्मरण को 'वैयक्तिक अनुभव तथा स्मृति से रचा गया इतिवृत्त अथवा वर्णन' कहा है।' "साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में कार्य करने वाले विख्यात व्यक्ति स्वभावतः जब किसी अन्य महापुरूष अथवा विशिष्टता संपन्न सामान्य पुरूष के संबंध में चर्चा करते हैं, अथवा स्वयं के जीवन के किसी अंश को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करते हैं, तब संस्मरण का जन्म होता है। ये संस्मरण अतीत को सजीव करते हैं।"१

संस्मरण में संस्मरणकार की स्मृति के आधार पर किसी व्यक्ति या विषय का उसके विशेष काल खंड की परिसीमा में वर्णन होता है। इस आधार पर इसमें इतिहास का भी गुण आ जाता है। लेकिन संस्मरण इतिहास के निकट होते हुए भी इतिहास नहीं है। यह इतिहास का स्त्रोत है। इतिहास या इतिहास प्रसिद्ध के जीवन के किसी अंश या पक्ष की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार – "इसमें लेखक अपने समय के इतिहास को लिखना चाहता है, परंतु इतिहासकार के वस्तुपरक रूप से वह बिल्कुल अलग है। संस्मरण लेखक जो स्वयं देखता है, जिसका स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है। उसके वर्णन में उसकी अपनी अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ डूबी रहती हैं।" इस प्रकार हम देखते हैं कि इसमें व्यक्तिपरकता यानी सब्जेक्टिविटी ज्यादा होती है। लेखक, वही लिखना चाहता है, जो वह देखता है। किसी चीज को समग्रता में देखना, उसका पूर्ण चित्र खींचना उसका उद्देश्य नहीं होता है, न ही उससे ऐसी माँग की जाती है।

दूसरे शब्दों में, जब लेखक सहज आत्मीयता तथा गंभीरता से अपने या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन में बीती किसी घटना अथवा दृश्य का स्मरण करता है, तो उसे संस्मरण कहते हैं। संस्मरण में अक्सर उन पक्षों के बारे में लिखा जाता है, जिनका जिक्र इतिहास के प्रचलित महावृत्तांत में नहीं होता है। इतिहास व्यक्ति को उसकी सफलताओं और असफलताओं के आईने में देखता है। उसके कार्यों को युग की कसौटियों पर कसता है, जबकि संस्मरण व्यक्ति को उसके समय में स्थित करते हुए भी उसके व्यक्तित्व के पहलुओं पर ज्यादा जोर देता है। उसके जीवन की वे छोटी–मोटी कथाएँ कहता हैं, जिन्हें इतिहास छोड़ देता है। संस्मरण में किसी घटना का जिक्र सिर्फ इतिहास की प्रवाह में स्थित एक बिंदु के तौर पर नहीं होता है, बल्कि इसमें उस घटना का आँखों–देखा हाल सुनाया जाता है। इस तरह संस्मरण अतीत का आँखों देखा हाल है, जिसे प्रामाणिकता देने के लिए ग्रंथों या संदर्भों का सहारा नहीं लिया जाता। बल्कि संस्मरण लिखने वाला ही उसकी प्रामाणिकता के लिए जिम्मेवार होता है। इसलिए इस पर पूरी तरह भरोसा भी नहीं किया जा सकता है। '...... संस्मरण को संदेह से देखा जाना चाहिए, उसे संदेह से परे मानने की भूल कतई नहीं करनी चाहिए।२

संस्मरण की एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह मूल रूप से किसी प्रसिद्ध व्यक्ति या अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठा अर्जित करने वाले व्यक्ति द्वारा अपने समकालीन किसी प्रसिद्ध व्यक्ति पर लिखा जाता है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार 'मेमायर्स' (संस्मरण) का रचनाकार ऐसा युग–पुरुष ही हो सकता है, जिसने दो के इतिहास के निर्माण में प्रमुख भूमिका अदा की हो या जिसे इतिहास–निर्माण को निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ हो।' संस्मरण लेखक अपने निजी अनुभव को विशिष्ट व्यक्तियों, वस्तुओं अथवा क्रियाकलापों के चित्रण के माध्यम से व्यक्त करता है। उसके वर्णन में अपनी अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ भी रहती हैं। इस दृष्टि से शैली में वह निबंधकार के समीप है। संस्मरण लेखक यदि अपनी बारे में लिखता है, तो उसकी रचना 'आत्मकथा' के निकट होगी, यदि अन्य व्यक्तियों के विषय में लिखे, तो 'जीवनी' के निकट। इन दो प्रकार के संस्मरणों को अंगरेजी में क्रमशः 'मेमायर्स' / डमउवपते तथा 'रैमिनिसेंसिज'/ त्मउपदपेबमदबम कहते हैं। सबसे बड़ी बात है कि संस्मरण में लेखक किसी विषय या व्यक्ति के जीवन के किसी अंश की प्रभावमयी अभिव्यक्ति स्मृति के आधार पर करता है। हिंदी का संस्मरण अंग्रेजी के 'मेमायर' तथा 'रैमिनिसेंसिज' दोनों को आत्मसात किये हुए हैं। यह कई बार आत्मकथा के भी निकट लगता है, तो कई बार जीवनी के भी। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में 'मेमायर' (संस्मरण) को 'ऑटोबायोग्राफी (आत्मकथा) का प्रारंभिक रूप में माना गया हैं। इसके अनुसार ऑटोबायोग्राफी के ढंग की रचनाओं के लिए 18वीं सदी के पूर्व 'मेमोरिस' शब्द का प्रयोग किया जा रहा है।

डॉ. राजमणि शर्मा के अनुसार, 'हिंदी–साहित्य में ऑटोबायोग्राफी ओर 'मेमायर्स' दो भिन्न विधा के रूप में विकसित हुए हैं, जिन्हें क्रमशः 'आत्मकथा' तथा 'संस्मरण साहित्य' कहा जाता है। आत्मकथा में संस्मरण की आवश्यकता होती है, लेकिन उसे संस्मरण की संज्ञा देना युक्तिसंगत नहीं लगता। वस्तुतः, 'संस्मरण' 'मेमायर्स' का सही प्रतिनिधि है, पर आंशिक मात्र ही।३

वस्तुतः ज्यादा सही यह कहना होगा कि हिंदी का संस्मरण अंग्रेजी के मेमायर्स तथा रैमिनिसैंसिज, दोनों को अपने, में आत्मसात् किये हुए है। मेमायर्स आत्मकथा के निकट होता है, जबकि रैमिनिसेंसिज जीवनी के निकट।

संस्मरण की विशेषताएँ

1. संस्मरण वर्णन–प्रधान जीवनीपरक कथेतर गद्य–विधा है।
2. संस्मरण का आधार स्मृति है।
3. इनमें सजीव पात्रों के बाहरी रूप के साथ–साथ आंतरिक चरित्र का भी वर्णन रहता है।
4. ये कल्पना पर नहीं वास्तविकता पर आधारित होते हैं।
5. संस्मरण लेखक, संस्मरण में अपने निजी अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का लक्ष्य सामने रखता है और अभिव्यक्ति का माध्यम विशिष्ट व्यक्तियों, वस्तुओं तथा क्रियाकलापों को बनाता है।
6. प्रायः संस्मरण लेखक और स्मरण किया जा रहा व्यक्ति, दोनों प्रसिद्ध होते हैं।
7. संस्मरण में यथार्थ का चित्रण तो होता है, पर वह भावना के रंग में रंगा होता है। यह यथार्थ स्मृति आधारित होता है, इसलिए उसमें इतिहास की धार नहीं होती। न इतिहास की तरह तथ्यपरकता।
8. अपने वर्णन के माध्यम से संस्मरण, संस्मर्ण्य के जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अथवा अब तक अज्ञात ऐसे तथ्य को प्रत्यक्ष करना चाहता है तो उसके परिवेश और प्रकृति को भी उजागर कर दें।
9. संवेदनात्मक चित्रण संस्मरण के लिए आवश्यक है। यह दो लोगों के बीच आत्मीय रिश्ते या अंतरंगता से पैदा होता है।

इस आधार पर हम संस्मरण को एक विधा के रूप में इन शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं :

''संस्मरण जीवनीपरक कथेतर गद्य विधा है, जिसमें कोई लेखक किसी विशिष्ट व्यक्ति के जीवन से जुड़ी मार्मिक आत्मीय स्मृतियों को रोचक और तथ्यपरक ढंग से वर्णित करता है। इस वर्णन में लेखक की अंतरंगता की झलक भी दिखाई देती है।४

संस्मरण के तत्त्व

संस्मरण की ऊपर वर्णित परिभाषा के आधार पर संस्मरण के तत्त्व निर्धारित किये जा सकते हैं। हमने देखा है कि संस्मरण का आधार स्मृति है। यह स्मृति किसी व्यक्ति से संबंधित होती है, जिसके साथ लेखक की गहरी आत्मीयता या नजदीकी होती है। लेखक इस व्यक्तित्व के किसी पक्ष का या उसके साथ बिताये हुए क्षणों का अंकन पूरी आत्मीयता के साथ करता है। हालांकि वह अपने वर्णन में पूरी तरह से तटस्थ नहीं होता, लेकिन उसे तथ्यों से छेड़छाड़ की इजाजत नहीं होती।

इस आधार पर संस्मरण के चार प्रमुख तत्त्व माने जा सकते हैं –

स्मृति

अतीत की स्मृति संस्मरण का प्राथमिक तत्व है। संस्मरण का आधार ही स्मृति है। इस विधा में किसी व्यक्ति या स्थान से जुड़ी स्मृतियों को लेखक कागज पर उकेरता है। ये स्मृतियाँ विशिष्ट होती है। ऐसी स्मृतियाँ, जो किसी स्मृति में आ रहे व्यक्ति के चरित्र के विशिष्ट पहलू को बताती है, या लेखक के जीवन से जुड़ी होती है। इस मामले में यह स्मृतियों के जंजाल में से विशेष स्मृतियाँ चुनने का लेखकीय उपक्रम कहा जा सकता है।

व्यक्तित्व का चित्रण

संस्मरण प्रायः किसी व्यक्ति के बारे में लिखा जाता है। हालांकि संस्मरण जगहों और घटनाओं के बारे में लिखे गये हैं, लेकिन इन संस्मरणों का आधार भी मुख्यतः व्यक्तियों से जुड़ी स्मृतियाँ होती हैं क्योंकि बिना लोगों के स्थान और घटना का कोई महत्त्व नहीं होता। कोई जगह खुद को लोगों के माध्यम से ही साकार करता है, जिसके संपर्क में लेखक आता है। संस्मरण की विशेषता यह होती है कि यह किसी व्यक्ति के संपूर्ण जीवन को भले न दिखाता हो, लेकिन उसके व्यक्तित्व के किसी विशिष्ट पहलू को जरूर बताता है। इसी तरह से जब संस्मरणकार अपने संस्मरण के द्वारा किसी शहर को

जीवंत करता है। जैसे मनोहर श्याम जोशी ने 'लखनऊ मेरा लखनऊ' में किया है, तो यह काम भी लेखक लोगों के माध्यम से ही करता है।

आत्मीयता

आत्मीयता संस्मरण की अनिवार्य शर्त्त है। लेखक उसी व्यक्ति के बारे में लिखता है, जिसके साथ उसकी आत्मीयता हो। यह आत्मीयता संस्मरण से झलकनी भी चाहिए। अगर लेखक आत्मीय होकर और पूरी अंतरंगता के साथ किसी व्यक्ति के बारे में नहीं लिखेगा, तो संस्मरण शुष्कता का शिकार हो जायेगा। इसके द्वारा ही संस्मरण विधा विश्वसनीय और पठनीय हो पाती है।

तथ्यात्मकता

जब किसी व्यक्ति, घटना या स्थान के बारे में स्मृति के सहारे लिखा जाता है, तब यह जरूरी होता है कि जो भी लिखा जा रहा है, वह तथ्यपूर्ण हो। कुछ ऐसा न लिखा जाये, तो व्यक्ति को जानबूझकर गलत रौशनी में दिखाए। उसके बारे में गलत जानकारी दे। इसी तरह से किसी ऐतिहासिक घटना पर लिखते वक्त भी लिखे गये की ऐतिहासिक सत्यता का ध्यान दिया जाना चाहिए।

संस्मरण का वर्गीकरण

संस्मरण का वर्गीकरण करने की कई कोशिशें होती रही हैं। डॉ. मनोरमा शर्मा ने अपनी किताब 'संस्मरण और संस्मरणकार' में संस्मरणों को छह वर्गों में बाँटा है–

1. जीवनी प्रधान संस्मरण
2. यात्रा प्रधान संस्मरण
3. शिकार संबंधी संस्मरण
4. ऐतिहासिक संस्मरण
5. सामान्य संस्मरण
6. कलात्मक संस्मरण

इस विभाजन की अपनी समस्याएँ हैं। मसलन, जीवनी खुद एक प्रमुख विधा है और यात्रा वृत्तांत भी एक अलग और स्थापित विधा है। संस्मरण का ऐतिहासिक होना उसकी विशेषता है, क्योंकि यह अतीत को स्मृति के आधार पर दर्ज करता है।

शैली के आधार पर भी संस्मरण के भेद किये गये हैं। इसके मुताबिक संस्मरण के नौ भेद हैं –

1. आत्मकथात्मक संस्मरण
2. निबंधात्मक संस्मरण
3. डायरी शैली संस्मरण
4. पत्रात्मक शैली संस्मरण
5. तरंग शैली संस्मरण
6. वर्णनात्मक शैली संस्मरण
7. संवाद शैली संस्मरण
8. सूक्ती शैली संस्मरण
9. संबोधन शैली संस्मरण

इसके अलावा संस्मरण की चित्रात्मक शैली, व्यक्तित्व व्यंजक शैली, संगीत शैली, अलंकारिक शैली, स्वच्छंद शैली आदि कोटि भी बनायी जाती है।५

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी जी की पुस्तक 'परिव्राजक की प्रजा', 'पांडेय बेचेन शर्मा' 'उग्र' की 'अपनी खबर' तथा किशोरीदास वाजपेयी आदि के संस्मरण आत्मकथात्मक संस्मरणों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। राहुल सांकृत्यायन के 'प्रवास के पत्र', प्रेमचंद और जैनेन्द्र जी के कुछ संस्मरण पत्रात्मक शैली में लिखी गये हैं। महादेवी वर्मा और रामवृक्ष बेनीपुरी को शैली को चित्रात्मक शैली कहा जा सकता है। हरिवंश राय बच्चन का काश्मीर यात्रा पर और गुलाब राय का कसौली यात्रा पर रोमांचकारी यात्रा संस्मरण उपलब्ध होता है।

लेकिन इस तरह का वर्गीकरण त्रुटिरहित नहीं है। डॉ. हरिमोहन लिखते हैं, :– ''कोई भी संस्मरण लेखक अपने लिखे संस्मरण में एक से अधिक शैलियों को अपना कर चल सकता है। या अपने व्यक्तित्व के अनुसार नयी शैली विकसित कर सकता है।'' ऐसे में कह सकते हैं कि शैली के आधार पर संस्मरण का वर्गीकरण करना एक तरह से बेमानी है।

डॉ. हरिमोहन संस्मरणों को दो वर्गों में रखने का आग्रह करते हैं –

1. चरित्र प्रधान संस्मरण
2. चरित्र प्रधान संस्मरण

चरित्र प्रधान संस्मरणों में लेखक घटनाओं की अपेक्षा संस्मर्ण्य के बाह्य, आंतरिक चरित्र को अधिक मुखरता के साथ उभरता है, जबकि घटना–प्रधान संस्मरणों में घटनाओं को चरित्र की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है।६

संस्मरण तथा अन्य विधाएँ

संस्मरण तथा रेखाचित्र

संस्मरण और रेखाचित्र में अंतर करना काफी मुश्किल है। दोनों की सीमा–रेखा काफी बारीक है और अक्सर इतनी मिली–जुली प्रतीत होती है कि हिंदी साहित्य में संस्मरणात्मक रेखाचित्र नाम की एक अलग विधा ही स्वीकार की जाती है। महादेवी वर्मा की 'स्मृति की रेखाएं' को इसी वजन पर 'संस्मरणात्मक रेखाचित्र' कहने का प्रचलन है। डॉ. मनोरमा शर्मा लिखती है, 'न कोई संस्मरण रचना बिना रेखाचित्र के पूरी हो सकती है और न कोई रेखाचित्र बिना संस्मरण कै। यही कारण है कि कुछ रेखाचित्र संस्मरणात्मकता का आभास देते हैं, तो संस्मरण रेखाचित्र के समीप है। महादेवी वर्मा की रचनाएं इसका प्रमाण है। पंत के 'साठ वर्ष' के बारे में भी यही राय है।' लेकिन संस्मरण का क्षेत्र रेखाचित्र से व्यापक है। संस्मरण में सिर्फ कोई व्यक्ति ही लेखन के केन्द्र में नहीं होता, बल्कि उसके बहाने उस युग–जीवन को भी अनायास ही चित्रित कर दिया जाता है।

इसलिए संस्मरण पर बात करने से पूर्व संस्मरण और रेखाचित्र में अंतर समझ लेना, फायदेमंद होगा। रामचंद्र तिवारी लिखते हैं – ''संस्मरण और रेखाचित्र एक दूसरे से मिलती–जुलती गद्य विधाएं हैं। इनका विकास आधुनिक हिंदी गद्य की विशेषता है। संस्मरण किसी स्मर्यमान (स्मरण किये जा रहे) की स्मृति का शब्दांकन है। जिसका स्मरण किया जा रहा है, उसके जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ और वे चारित्रिक विशेषताएँ, जो स्मरणकर्ता को याद रह जाते हैं, उन्हें वह अंकित करता है। स्मरण वही रह जाता है जो महत्, विशिष्ट, विचित्र और प्रिय है। स्मर्यमान को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है। संस्मरण में विषय और विषयि दोनों ही रूपायित होते हैं। इसलिये इसमें संस्मरणकर्ता

पूर्णतः तटस्थ नहीं रह पाता। वह अपने स्व का पुनः सृजन करता है।''

संस्मरण की परिभाषा के बाद रेखाचित्र की परिभाषा पर दृष्टि डाली जा सकती है। रेखाचित्र किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या भाव का कम से कम शब्दों में मर्मस्पर्शी, भावपूर्ण और सजीव अंकन है। अंग्रेजी में जिसे 'स्कैच' कहा जाता है, उसके लिए हिंदी में 'रेखाचित्र', 'व्यक्तिचित्र', 'शब्दचित्र' शब्दों का प्रयोग होता है। रेखाचित्र में तटस्थता, संक्षिप्तता और तीखापन अधिक होता है। ये ही विशेषताएँ ही उसे अन्य साहित्य रूपों से अलग करती हैं। रेखाचित्र की विशेषता विस्तार में नहीं तीव्रता में होती है। रेखाचित्र पूर्ण चित्र नहीं है, वह व्यक्ति, वस्तु, घटना आदि का एक निश्चित दृष्टि से बिंदु से किया गया प्रतिबिंबन है, जिसमें विवरण कम रहता है, लेकिन तीव्र संवेदना रहती है।

रामचंद्र तिवारी आगे लिखते हैं, 'रेखाचित्र में भी किसी व्यक्ति, वस्तु या संदर्भ का अंकन किया जाता है। यह अंकन पूर्णतः तटस्थ भाव से और निर्लिप्त रहकर किया जाता है। रेखाचित्र में रेखाएं बोलती हैं। जिस प्रकार कुछ थोड़ी सी रेखाओं का प्रयोग करके रेखाचित्रकार किसी व्यक्ति या वस्तु की मूलभूत विशेषता को उभार देता है, उसी प्रकार कुछ थोड़े से शब्दों का प्रयोग करके साहित्यकार किसी व्यक्ति या वस्तु को उसी मूलभूत विशेषता के साथ सजीव कर देता है। रेखांकन करते समय वह अपने को तटस्थ रखने की चेष्टा करता है। वस्तु को ही महत्व देता है। जब कभी तटस्थता भंग होती है तो रंगों की चटक में रेखाएं डूब जाती हैं।7

संस्मरण और रेखाचित्र के अंतर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :

1. रेखाचित्र उपेक्षित, परिचित और साधारण व्यक्ति के असाधारण व्यक्तित्व पर आधारित होते हैं। जबकि संस्मरण बहुधा परिचित और असाधारण व्यक्ति के असाधारण व्यक्तित्व पर आधारित होते हैं।
2. रेखाचित्र संवेदनात्मक दृष्टि को लेकर लिखा जाता है, लेकिन संस्मरण अक्सर श्रद्धात्मक दृष्टि को लेकर लिखा जाता है।
3. रेखाचित्र समाज के उपेक्षित व्यक्तियों के प्रति करूणा उत्पन्न करने के लिए लिखा जाता है, जबकि संस्मरण समाज में ऊंचा कद रखने वाले व्यक्ति के लिए श्रद्धा जगाने के लिए लिखा जाता है।

संस्मरण तथा जीवनी

संस्मरण और जीवनी के बीच समानता कई बिंदुओं पर पायी जाती है। हम कह सकते हैं कि संस्मरण जीवनी के लिए दुर्लभ सामग्री जुटाने वाली साहित्यिक विधा है। दोनों विधाएं ही व्यक्ति–प्रधन है, परन्तु स्वरूप की दृष्टि से दोनों में अंतर है। संस्मरण मानव जीवन को समग्रता में प्रतिबिंबित नहीं करता जबकि जीवनीकार उसके सारे विस्तार को समेटता है। वैसे तो संस्मरण एक दृष्टि में जीवनी का ही संक्षिप्त रूप लग सकता है, लेकिन दोनों में अंतर स्पष्ट है। यह अंतर रचना प्रक्रिया के स्तर पर भी है और वस्तु और शैली के स्तर पर भी। पहला और महत्वपूर्ण अंतर तो यही है कि संस्मरण उन व्यक्तियों पर ही लिखा जाता है, जिनसे लेखक न सिर्फ मिल चुका होता है, बल्कि उनसे निकट का संपर्क भी होता है। जबकि जीवनी लेखन के लिए ऐसा कतई जरूरी नहीं है। दुनिया की ऐसी अनेको श्रेष्ठ जीवनियाँ ऐसे व्यक्तियों पर लिखी गई है, जिनसे लेखक न पहले मिला था, न ही जीवनी लिखते वक्त वे जीवित ही थे। ऐसी जीवनियाँ आज भी लिखी जा रही हैं। हिंदी में विष्णु प्रभाकर द्वारा बांग्ला उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की जीवनी 'आवारा मसीहा' इसका जीता–जागता उदाहरण कहा जा सकता है। जीवनी को पुस्तकों, संस्मरणों, पत्रों, लेखों, उपलब्ध विवरणों, वंशजों और चरित नायक के परिचित व्यक्तियों से उपलब्ध सामग्री और उनके कथनों के आधार पर लिखा जाता है। इसी प्रकार जीवनी लेखन एक शोधपरक काम है। जबकि संस्मरण हमेशा वैसे चरित्रों का लिखा जाता है, जिनसे लेखक मिला हो, बातचीत की हो और उससे, उसका घनिष्ठ संबंध रहा हो। यही कारण है कि संस्मरणों में तारीख या समय पर ध्यान नहीं दिया जाता, जबकि जीवनी लिखते समय इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती।

इस तरह देखें, तो जीवनी में वस्तुपरकता, संस्मरण की तुलना में ज्यादा होती है। साथ ही जीवनी लेखक, ज्यादा निरपेक्ष भाव से किसी चरित्र के बारे में लिखता है। इसमें शोधपूर्वक जमा किये गये ब्यौरों का महत्व कहीं ज्यादा होता है। तटस्थता जीवनी लेखन की पहली शर्त है। जबकि संस्मरण का लेखक तटस्थता का दावा नहीं करता। जीवनी लेखक, जीवनी में गायब रहता है। उसका 'मैं' जीवनी पर हावी नहीं होता। जबकि संस्मरण में केन्द्र में 'मैं' होता है। क्योंकि इसमें किसी व्यक्ति के उन क्षणों को याद किया जाता है, जिसमें मैं की भूमिका होती है। जीवनी में किसी व्यक्ति के जीवन की पूरी और क्रमवार कथा होती है, उसकी अच्छाई–बुराई सबका अंकन होता है। जबकि संस्मरण में ऐसे किसी क्रम की परवाह नहीं की जाती। यह किसी व्यक्ति के जीवन से जुड़े कुछ रोचक प्रसंगों तक ही सीमित रहता है। साथ ही इसमें तटस्थता का भी दावा नहीं होता। लेखक अपनी मर्जी से किसी व्यक्ति के जीवन के चित्रों को चुनता है। 'पथ के साथी' के 'दो शब्द' में महादेवी वर्मा ने लिखा है, ''अपने अंग्रेजों सहयोगियों के सम्बन्ध में, अपने–आप को दूर रखकर कुछ कहना सहज नहीं होता। मैंने साहस तो कियया है पर ऐसे स्मरण के लिए आवश्यक निर्लिप्तता या असंगतता मेरे लिए संभव नहीं है। मेरी दृष्टि के सीमित शीशे में वे जैसे दिखाई देते हैं, उससे वे बहुत उज्जवल और विशाल है, इसे मानकर पढ़ने वाले ही उनकी कुछ झलक पा सकेंगे।'' इससे यह स्पष्ट होता है कि इतिहास जैसी तटस्थता संस्मरण में मुमकिन नहीं है।

संस्मरण तथा आत्मकथा

एक तरह से देखें, तो संस्मरण और आत्मकथा, दोनों ही जीवन में पीछे की ओर मुड़कर देखने वाली विधाएं हैं। आत्मनिष्ठता और स्मृति तत्व दोनों ही प्रमुख होता है। लेकिन इतने से ही दोनों समान नहीं हो जातीं। संस्मरण में लेखक अपनी निगाहों से किसी और के जीवन को देखता है। इस देखने में है, उसका अपना जीवन भी चला जाता है। जबकि आत्मकथा में वह अपनी निगाहों से खुद को देखता है। आत्मकथा में पूर्णता होती है। यह पूरे

जीवन का लेखा–जोखा होता है, जबकि संस्मरण के लिए पूर्णता कोई शर्त नहीं है।

संस्मरण किसी के जीवन के किसी दौर या वक्फे को पकड़ता है। संस्मरण में लेखक की दृष्टि चयनात्मक होता है। वही उन्हीं क्षणों को याद करता है, जिसे वह याद करना चाहता है। लेकिन आत्मकथा में लेखक को अपने पूरे जीवन को क्रमवार रूप से प्रकट करना होता है। संस्मरण, अपनी आत्मकथा का कच्चा माल है और किसी की जीवनी के लिए स्त्रोत सामग्री है। अरूण प्रकाश के मुताबिक 'संस्मरण भी आत्मकथा ही है, अलबत्ता वह समग्र आत्मकथा के मुकाबले छोटा होता है। संस्मरण में अतीत के खास क्षणों, मोड़ों को फिर से जीवित करने की कोशिश होती है।८

संस्मरण का इतिहास

प्रायः प्रत्येक नये विधा अपने आगमन की घोषणा पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ही करती है। संस्मरण साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। हिंदी संस्मरण साहित्य का प्रारंभिक स्वरूप 'सरस्वती', 'माधुरी', 'सुधा', 'विशाल भारत', 'हंस' जैसी पत्रिकाओं से उपलब्ध होता है। हालांकि डॉ. मनोरमा शर्मा भारतेंदु युग से ही संस्मरण का प्रारंभ मानती है। कुछ विद्वान बालमुकुंद गुप्त द्वारा सन् 1907 में प्रतापनारायण मिश्र पर लिखे संस्मरण को हिंदी का प्रथम संस्मरण मानते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि संस्मरण साहित्य की शुरूआत द्विवेदी युग से पहले नहीं हुई। असल और कलात्मक संस्मरण द्विवेदी युग के बाद ही दिखते हैं। यहाँ हम द्विवेदी युग से औपचारिक रूप से शुरू होने वाली संस्मरण विधा के संक्षिप्त इतिहास पर एक नजर डाल सकते हैं।

द्विवेदी युग

इसमें दोराय नहीं कि संस्मरण विधा का आरंभ द्विवेदी युग से पहले नहीं हुआ। 'सरस्वती' इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पत्रिका थी और संस्मरण साहित्य ने इसके माध्यम से ही अपने आगमन की सूचना दी। इसके विभिन्न अंकों में स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'अनुमोदन का अंत' (फरवरी, 1905), सभा की सळयता (अप्रैल, 1907), 'विज्ञानाचार्य बसु का विज्ञान मंदिर' (जनवरी, 1918) आदि की रचना करके संस्रण साहित्य की श्रीवृद्धि की। सरस्वती के अंकों में महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त रामकुमार खेमका, जगद्विहारी सेठ, पांडुरंग खानखोजे, प्यारेलाल मिश्र, काशीप्रसाद जायसवाल, जगन्नाथ खन्ना, भोलादत्त पांडेय आदि द्वारा लिखे संस्मरण भी प्रकाशित हुए। आलोच्य युग में प्रकाशित अधिकांश संस्मरण प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखे गये और प्रायः सभी का अभीष्ट भारतीय पाठकों को पश्चिम की रीति–नीतियों और दर्शनीय स्थलों आदि से परिचित करना था। यही कारण है कि इनकी शैली अनेक स्थलों पर निबंधात्मक हो गयी है। पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित संस्मरण साहित्य की दृष्टि से 'हरिऔध जी के संस्मरण' ही इस युग की उल्लेखनीय कृति है। इसके लेखक बालमुकुंद गुप्त हैं।

छायावाद युग

आलोच्य युग में संस्मरणों तथा रेखाचित्रों की पर्याप्त परिमाण में रचना की गयी। संस्मरण तो इस युग के पूर्व भी लिखे गये थे, किन्तु रेखाचित्रों की रचना इसी काल में हुई। जहां तक संस्मरणों का संबंध है, पूर्ववर्ती युग के समान इस युग में भी पत्र–पत्रिकाओं ने ही इसकी श्रीवृद्धि में सर्वाधिक योगदान दिया। सरस्वती में रामकुमार खेमका, कृपानाथ मश्र, रामनारायण मिश्र, भगवानदीन दुबे, रामेश्वरी नेहरू, श्री मन्नारायण अग्रवाल आदि के अनेक यात्रावृत्तांतमूलक संस्मरण प्रकाशित हुए, जिनसे देश–विदेश के जीवन के विविध पक्षों, दर्शनीय स्थानों, प्राकृतिक सौंदर्य आदि का वर्णन विवरणपरक भावनात्मक शैली में रोचक ढंग से किया गया। 'विशाल भारत', 'सुधा' और 'माधुरी' में भी कई उल्लेखनीय संस्मरण प्रकाशित हुए। आचार्य रामदेव, अमृतलाल चक्रवर्ती, बनारसीदास चतुर्वेदी, मंगलदेव शर्मा जैसे लेखकों ने इन पत्रिकाओं के लिए क्रमशः स्वामी श्रद्धानंद, बालमुकुंद गुप्त, श्रीधर पाठक और पद्मसिंह शर्मा से संबंद्ध जीवनीपरक संस्मरणों की रचना की। 'सुधा' (1921) में प्रकाशित इलाचंद्र जोशी कृत 'मेरे प्राथमिक जीवन की स्मृतिं' तथा वृंदावनलाल वर्मा कृत 'कुछ संस्मरण' भी उल्लेखनीय रचनाएं हैं। पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त इस अवधि में संस्मरणों के कतिपय संकलन भी प्रकाशित हुए, जिनमें शिवराम पांडेय, श्रीराम शर्मा, मन्थमनाथ गुप्त तथा शिवनारायण टंडन द्वारा क्रमशः रचित मदनमोहन के संबंध की 'कुछ पुरानी स्मृतियां' (1932), 'शिकार' (1936), 'क्रांति–युग के संस्मरण' (1937) और 'झलक' (1938) उल्लेखनीय है। इनमें से अंतिम कृति में हरिऔध जी के जीवन की कुछ स्मृतियां दी गयी है। हिंदी संस्मरण–परंपरा के प्रारंभिक उन्नायकों में पद्मसिंह शर्मा, राधिकारमण सिंह तथा श्रीराम शर्मा का नाम महत्वपूर्ण है। पद्मसिंह शर्मा संस्मरण परंपरा के जनक माने जाते हैं। इनके संस्मरण 'पद्म पराग' (1929) में संकलित है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के संस्मरण 'सावनी समां', 'वे और हम', 'तब और अब', 'टूटा तारा' आदि संग्रहों में संकलित है। श्रीराम शर्मा के संस्मरण 'शिकार', 'बोलती प्रतिमा', तथा 'सन बयालीस के संस्मरण' आदि रचनाओं में मिलते हैं। 'बोलती प्रतिमा' में संकलित संस्मरणों को रेखाचित्र के करीब माना जा सकता है। बाबूराव विष्णुराव पड़ारकर द्वारा संपादित 'हंस' का प्रेमचंद स्मृति अंक (1937) तथा ज्योतिलाल भार्गव द्वारा संपादित साहित्यिकों के संस्मरण भी इसी युग की उल्लेखनीय रचनाएं हैं। शिवरानी प्रेमचंद का 'प्रेमचंद घर में' (1944) का महत्व भी संस्मरण की दुनिया में निर्विवाद है। महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों का प्रकाशन भी इसी काल में शुरू हो चुका था। 'समग्रतः आलोच्य युग में संस्मरणों और रेखाचित्रों में कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से पर्याप्त वैविध्य दृष्टिगत होता है। कथ्य की दृष्टि से संस्मरण साहित्य में जहां समाजसेवी नेताओं, साहित्यकारों तथा प्रवासी भारतीयों के स्मृति प्रसंगों को रोचक एवं प्रवाहपूर्ण शैली में प्रस्तुत करके पाठक को कर्मक्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा दी गयी है, वहीं रेखाचित्रों में समाज के उपेक्षित व्यक्तियों के चित्रण पर बल दिया गया है।६

छायावादोत्तर युग

संस्मरण विधा के प्रतिष्ठापकों में पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी तथा रामवृक्ष बेनीपुरी के नाम

अग्रगण्य हैं। पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी की दो संस्मरण कृतियां हैं – 'हमारे आराध्य' तथा 'संस्मरण'। रामवृक्ष बेनीपुरी की विशेष ख्याति उनके संस्मरणों के कारण भी है। 'माटी की मूरतें', 'मील के पत्थर', 'जंजीरें और दीवारें' आदि रचनाओं में इन्होंने स्वानुभूतियों को अंकित किया है।

महादेवी वर्मा के संस्मरण रेखाचित्र और संस्मरण का मिला–जुला रूप है। 'स्मृति की रेखाएं' और 'अतीत के चलचित्र' उनके संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं। पथ के साथी में उन्होंने कुछ प्रमुख समकालीन साहित्यिक हस्तियों के संस्मरण लिखे हैं। पथ के साथी में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मैथलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, सुभद्राकुमारी चौहान तथा सियाराम शरण गुप्त के उत्कृष्ट शब्द–चित्र हैं। राहुल सांस्कृत्यायन के जीवनीपरक साहित्य की भी इस विधा में अनुपम देन है। 'बचपन की स्मृतियाँ', 'मेरे असहयोग के साथ' तथा 'जिनका मैं कृतज्ञ' उनके तीन संस्मरण संग्रह हैं। उनके संस्मरणों में पर्याप्त वैविध्य दिखाई पड़ता है। राहुल सांकृत्यायन की भांति भदन्त आनंद कौसाल्यायन ने विविधोन्मुखी संस्मरण लिखे हैं। 'जो न भूल सका', 'जो लिखना पड़ा', 'रेल टिकट', 'देश की मिट्टी बुलाती है', 'एक गाँव अनेक युग' आदि रचनाओं में उनके संस्मरण संकलित हैं। 'साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण रचना में किशोरीदास वाजपेयी के संस्मरण प्राप्त होते हैं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'वातायन' में रेखाचित्र एवं संस्मरण संकलित हैं।

काका कालेलकर (संस्मरण यात्रा), गुलाब राय (मेरी असफलताएँ), विनोदशंकर व्यास (प्रसाद और उनके समकालीन), माखनलाल चतुर्वेदी (समय के पाँव), शांतिप्रिय द्विवेदी (पथ चिह्न 1946), स्मृतियाँ और कृतियाँ, जैनेंद्र (गांधी कुछ स्मृतियाद्द, ये और वे), जानकी वल्लभ शास्त्री (स्मृति के वातायन), शिवपूज सहाय (वे दिन वे लोग), प्रकाशचंद्र गुप्त (मिट्टी के पुतले), रामनरेश त्रिपाठी (तीस दिन : मालवीय जी के साथ) आदि इस युग के प्रमुख संस्मरणकार कहे जा सकते हैं।

देवेन्द्र सत्यार्थी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (जिंदगी मुस्कराई), उपेन्द्रनाथ अश्क (मंटो मेरा दुश्मन, ज्यादा अपनी, कम परायी), डॉ. नगेन्द्र (चेना के बिंब), जगदीश चंद्र माथुर (दस तस्वीरें, जिन्होंने जीना जाना), रामधारी सिंह दिनकर (लोकदेव नेहरू), हरिवंशराय बच्चन (नये–पुराने झरोखे), अमृतलाल नागर (जिनके साथ जिया), कृष्णा सोबती (हम हशमत), भारतभूषण अग्रवाल (लीक–अलीक), डॉ. रामकुमार वर्मा (संस्मरणों के सुमत), विष्णु प्रभाकर (मेरे अग्रज : मेरे मीत), फणीश्वरनाथ रेणु (वन तुलसी की गंध) आदि इस युग में संस्मरण या संस्मरणात्मक रेखाचित्र में योगदान देने वाले प्रमुख साहित्यिकार हैं। अरूण प्रकाश कहते हैं, 'इन संस्मरणों को खंगालने से साफ हो जाता है कि संस्मरण के केन्द्र में 'विशिष्ट' ही रहे, चाहे वे लेखक हों या राजनेता। तीन ऐसी पुस्तकें हैं, जो मामूली लोगों के बारे में है। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, श्रीराम शर्मा और रामवृक्ष बेनीपुरी ने आम लोगों के बारे में लिखा है और संयोग से ये तीनों पत्रकार थे। ये आम लोगों का महत्व समझ रहे थे, जबकि शुद्ध साहित्यिक संस्मरण लेखक विशिष्टों को संस्मरण के योग्य मान रहे थे।१०

उत्तरवर्ती युग

बाद के समय में संस्मरण के क्षेत्र में कई कृतियाँ काफी लोकप्रिय और चर्चित रहीं। इनमें अज्ञेय का 'स्मृतिलेखा', हरिशंकर परसाई का 'तिरछी रेखाएं', राजेन्द्र यादव का 'मुड़–मुड़ के देखता हूँ', 'वे देवता नहीं हैं', 'औरों के बहाने', कमलेश्वर का बारह भारतीय रचनाओं के जीवन के बेहद निजी शब्द चित्र 'मेरा हमदम, मेरा दोस्त', मन्नू भंडारी का 'एक कहानी यह भी', मनोहर श्याम जोशी का 'लखनऊ मेरा लखनऊ', काशीनाथ सिंह के संस्मरण 'याद हो कि न याद हो', 'आछे दिन पाछे गए', 'घर का जोगी जोगड़ा', जिसमें उन्होंने अपने बड़े भाई और वरिष्ठ आलोचक नामवर सिंह के जीवन संघर्षों का स्मरण किया है, नरेन्द्र कोहली का 'स्मरामि', रामशरण जोशी का 'प्रतिबिंबन : व्यक्ति, विचार और समाज', ममता कालिया का 'कितनी शहरों में कितनी बार', हाल ही में प्रकाशित 'कल परसों के बरसों', रविन्द्र कालिया का 'गालिब छूटी शराब', 'सृजन के सहयात्री', 'कामरेड मोनालिसा', दूधनाथ सिंह का 'लौटा आओ धार', विश्वनाथ त्रिपाठी का 'गंगा स्नान करने चलोगे क्या', 'नंगा तलाई का गांव', जिसे स्मृति आख्यान कहा गया है, स्वयंप्रकाश का 'हमसफरनामा', नीलाभ का 'ज्ञानरंजन के बहाने', ज्ञानरंजन का 'तारामंडल के नीचे एक आवारा गर्द' और अन्य संस्मरण, शिवमूर्ति का 'सृजन का रसायन', कांतिकुमार जैन का 'लौट कर आना नहीं होगा', 'जो कहूंगा, सच कहूंगा' अजित कुमार का 'निकट मन में', अमृत राय का 'जिनकी याद हमेशा रहेगी', विष्णुकांत शास्त्री का 'सुधिया उस चंदन के वन की', गिरिराज किशोर का 'सप्तवर्णी', देवेंद्र सत्यार्थी का 'यादों के काफिले', रामरदश मिश्र का 'अपने–अपने रास्ते', चन्द्रकान्ता का 'मेरे भोजपत्र' आदि अनेकानेक संस्मरण इस बात के प्रमाण हैं कि सस्मरण की विधा वर्तमान समय में न सिर्फ आगे बढ़ रही है, बल्कि बाकी साहित्यिक विधाओं को लोकप्रियता के मामले में अच्छी खासी चुनौती भी दे रही है।

सबसे बड़ी बात यह है कि संस्मरण–साहित्य ने लगातार अपना फॉर्म तोड़ा और अपनी सीमाओं का विस्तार किया है। विगत दो दशकों में श्रद्धामूलक भाव से मुक्ति की कोशिशों ने इसे विवादप्रिय और लोकप्रिय दोनों बनाया है। अरूण प्रकाश ने इन लेखकों के संस्मरण के बारे में एक महत्वपूर्ण बात की ओर ध्यान दिलाया है। यह पूर्ववर्ती संस्मरणों से साठ–सत्तर के दशक के बाद के संस्मरणों के एक महत्वपूर्ण अंतर को बताता है। वे कहते हैं, "अज्ञेय, कमलेश्वर, काशीनाथ सह, राजेन्द्र यादव कांतिकुमार जैन साहसी संस्मरण लेखकों में गिने जायेंगे। इन सबने जीवित विशिष्ट जनों पर लिखा है। खण्डन–मंडन, प्रतिशोध और वैर झेला और झमेले से बच निकलने की कलाबाजी नहीं दिखायी। ११

निष्कर्ष

आजादी के बाद के हिंदी साहित्य के परिदृश्य में जिन विधाओं ने लगातार अपने लिए स्थान बनाया है,

उनमें संस्मरण संभवतः सबसे उल्लेखनीय है। यही वजह है कि कई बार आलोचकों को इस बात पर हैरत प्रकट करते हुए भी देखा जा सकता है कि आखिर इस विधा के विस्फोट के पीछे कौनसी शक्तियाँ काम कर रही है कारण जो भी हो, यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि संस्मरण ने हिंदी–साहित्य को समृद्ध करने की दिशा में महत्वपूर्ण काम किया है और खुद भी हाशिये से उठकर साहित्य के केन्द्र में स्थापित हो चुका है। हालांकि संस्मरणों ने कई बार विवादों को भी जन्म दिया है, लेकिन साहित्य–समय की धड़कनों को पकड़ने में यह विधा कामयाब हुई है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *संपादन, डॉ. नगेन्द्र सिंह, ''मानविकी पारिभाषिक कोश''पृ.सं. १६७*
2. *अरूण प्रकाश, ''गद्य की पहचान'' पृ.सं. १५४*
3. *डॉ. राजमणि शर्मा, ''साहित्य के रूप'' पृ.सं. २०४*
4. *डॉ. हरिमोहन, ''साहित्य विधाएँ : पुनर्विचार'', पृ.सं. २३६*
5. *डॉ. मनोरमा शर्मा, ''संस्मरण और संस्मरणकार'' पृ.सं. ६८*
6. *डॉ. हरिमोहन, ''साहित्य विधाएँ : पुनर्विचार'', पृ.सं. २४२–४३*
7. *रामचंद्र तिवारी, ''हिंदी का गद्य साहित्य'' पृ.सं. २६७*
8. *अरूण प्रकाश, ''गद्य की पहचान'' पृ.सं. १८२*
9. *डॉ. नगेन्द्र, ''हिंदी साहित्य का इतिहास'' पृ.सं. ५२२,५२३, ५६७*
10. *रवेल चन्द्र आनंद ''आधुनिक हिन्दी गद्य'' १४०*
11. *अरूण प्रकाशन, ''गद्य की पहचान'' पृ.सं. १५६, १६१*

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

9 772395 711007

Impact Factor
3.811

ISSN : 2395-7115
APRIL-JUNE 2020
Vol. 11, Issue 4

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सम्पादकः
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April-June 2020 Page No. : 329-333

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी का हिंदी संस्मरणात्मक साहित्य : एक अध्ययन

संस्मरणों का अध्ययन करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक होगा कि वास्तव में संस्मरण किसे कहते हैं? साहित्य में इसका क्या उपयोगिता है? मूलतः इसका जन्म कहां से हुआ और अन्य साहित्य विधाओं से इसका क्या संबंध है? उपसर्ग तथा स्मरण शब्द के योग से संस्मरण बना है जिसका अर्थ है सम्यक स्मरण। इस विधा में यथर्थ के चित्रण के साथ भावना की गहनता होती है। इसमें स्मरणीय व्यक्ति की अपेक्षा वर्णित घटना व्यवहार तथा परिवेश को अधिक रोचक और आकर्षक ढंग से चित्रित कर उन्हें प्रभावी रूप में उपस्थित किया जाता है। किसी भी क्षेत्र के महान् पुरूष के जीवन के महत्वपूर्ण अंश का साक्षात्कार करवाना इस विधा का ध्येय है।

हिंदी में संस्मरण का आरंभ सुधा विशाल भारत सरस्वती और माधुरी आदि पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। भारतेंदु युग में सबसे पहला संस्मरण बालमुकुंद गुप्त द्वारा प्रताप नारायण मिश्र के विषय में लिखा गया जिसमें मिश्र के जीवन की अनेक ज्ञातव्य बातों को प्रकाश में लाया गया है। बाबू श्यामसुंदर दास ने लाल भगवानदीन के स्वभाव के संबंध में एक रोचक स्मरण को प्रस्तुत किया है। श्री रामदास गौड़ ने श्रीधर पाठक तथा राय देवी प्रसाद पूर्ण पर संस्मरण लिखे जिसमें उनके घर के परिवेश तथा स्वभाव आदि को प्रभावी रूप में उपस्थित किया गया है। शर्मा जी ने इस विधा को सुपुष्ठ साहित्य आधार प्रदान कर प्रौढ़तोन्मुख बनाया। संस्मरण तथा रेखाचित्र में महादेवी वर्मा जी का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। संस्मरण लिखे बहुत गये पर उनका प्रचलन बाद में हुआ है। सभी रचनाओं में उक्त विधाओं का पूर्ण सौष्ठव दृष्टव है और कृतियां भी उल्लेखनीय है।

कुछ साहित्यकारों, कवियों और आलोचकों ने भी इस विषय में प्रशंसनीय कार्य किया है। उपेन्द्रनाथ अश्क की कृतियां, रेखाएं और चित्र– 'मंटो मेरा दुश्मन' तथा 'ज्यादा अपनी कम परायी', विष्णु प्रभाकर के कुछ शब्द कुछ रेखाएं, राहुल सांकृत्यायन का बचपन, जिन्ना मैं कृतज्ञ तथा 'मेरे असहयोग के साथी', रेखाचित्र व संस्मरण क्षेत्र में महत्वपूर्ण रचनाएं है। जगदीशचंद्र माथुर की 'दस तस्वीरें' तथा 'जिन्होंने जीना जाना', सेठ गोविन्द दास के 'स्मृति कण' और चहरे जाने पहचाने तथा डॉ. नगेन्द्र के 'चेतना के बिम्ब' इस क्षेत्र की समृद्ध व विशिष्ट रचनाएं हैं।

डॉ. नरेंद्र जी कहते हैं– "व्यक्तिगत अनुभव से रचा गया इतिवृत्त अथवा वर्णन ही संस्मरण है।"

डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान – संस्मरण के बारे में चर्चा करते हुए लिखते हैं 'संस्मरण' नाम से ही संस्मरण की भी विशिष्टता स्पष्ट हो जाती है। संस्मरण में लेखक किसी ऐसी घटनास्थल या व्यक्ति से संबंधित निजी अनुभूति की स्मृति को साकार करता है जो अंदर ही अंदर उसके मन को कुरेदती रहती है, और अभिव्यक्ति के लिए उसके मन–प्राण को बेचैन करती रहती है। वह स्मृति लेखक के मन में बनी रहकर भाव से संवेदना और राग के पुटपाक से आकार ग्रहण करती रहती है। जैसे राख की कंदरा में कोयला अनुकूल स्थिति में सजग हो अभिव्यक्ति में सवाक रूप ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार जिसका कोई सत्य न हो वह स्मृति रूपाकार ग्रहण कर लेती है।

डॉ. रामचंद्र तिवारी – ने संस्मरण को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया है– "संस्मरण किसी स्मर्यमाण स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृति रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है जो महत्, विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चला जाता है। संस्मरण में विषय और विषयी दोनों ही रूपायित होते हैं। इसलिए इसमें स्मरणकर्ता पूर्णत नहीं रह पाता।" वह अपने 'स्व' का पुनः सर्जन करता है।

महादेवी वर्मा जी का कथन है – "स्मृति चित्रों में उनका जीवन आ गया है यह स्वाभाविक भी था। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं।" उसके बाहर तो वे अनंत अंधकार के अंश है। परंतु उनका निकटताजनित विज्ञापन उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता जो आग को बहुत समय सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रखती है।

डॉ. हरवंश लाला शर्मा के शब्दों में – "संस्मरणों में प्रायः अनुभूत स्मृतियां सँजोई जाती हैं बतौर उनमें कल्पना के लिए स्थान कम होता है। संस्मरण परिचित व्यक्तियों से संबद्ध होते हैं और पाठकगण उसके संबंध में और अधिक जानने की इच्छा रखते हैं। संस्मरण में लेखक की दृष्टि प्रधान होती है और वह अपने दृष्टिकोण से घटना तथा पात्रों का विश्लेषण करता चला जाता है।"

डॉ. विश्वंभर नाथ उपाध्याय का कथन है– "संस्मरण और रेखाचित्र में भेदक तत्व सिर्फ भावात्मकता की मात्रा का है। संस्मरणों में भाव लेखक को अनालोचक बनाये रखता है, रेखाचित्र में उन्मुखता अथवा रागात्मक स्पर्श मात्र से ही काम चल जाता है। रेखाचित्रों में चित्रण की प्रधानता होती हैं, संस्मरण में विवरण अधिक होता है। संस्मरणों में प्रसंगों और कथाओं का प्रयोग होता चलता है। घटित का विवरण और उसके वर्ण्य–व्यक्ति की विशिष्टता या उपलब्धि पर प्रकाश–प्रक्षेपण संस्मरण की प्रचलित विधि है, जबकि रेखाचित्र में लँगड़ी शैली के रूप में अभिव्यक्ति कारक नपे–तुले शब्दों का प्रयोग अधिक होता है।"

पं. बनारसी दास चतुर्वेदी के शब्दों में – "रेखाचित्र में किसी वस्तु या व्यक्ति के जीवन का चित्रण होता है, उसके प्रकाश भाग तथा छाया भाग के साथ गुण दोषों का विधिवत् वर्णन करते हुए संस्मरण में मुख्यतः पुरानी बातें याद की जाती है। चरित्र–चित्रण तो दोनों में ही हो जाता है। संस्मरण प्रायः बीती हुई बातों या दिवंगत व्यक्तियों के बारे में लिखा जाता है।"

हिंदी में संस्मरण साहित्य का विकास आधुनिक युग की एक उपलब्धि है। यह मानना इस दृष्टि से सही हैं कि साहित्य की एक स्वतंत्र विधा के रूप में संस्मरण की प्रतिष्ठा इसी युग में हुई है। संस्मरण का एक अनिवार्य तत्व अनुभूति है जिसमें 'स्मृति' का योग महत्वपूर्ण है। स्मृति पर आधारित वर्णन का चित्रण है। हिंदी में गद्य का विकास के पूर्व काव्यग्रंथों में संस्मरण का अभाव नहीं है। चरितकाव्यों की लम्बी परंपरा में संस्मरण की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। कोई भी प्रबंध काव्य ऐसा नहीं मिलेगा। जिसमें यथास्थान विविध पात्र संस्मरणाधारित वस्तु–वर्णन न करते हों। मुक्तक काव्य में भी श्रृंगार और भ्रमण गीत जैसी रचनाओं में संस्मरण का उल्लेखनीय अंश देखा जा सकता है।

भारतेंदु–युग की एक अधूरी किन्तु बहुत ही महत्वपूर्ण रचना उपलब्ध होती है– 'कुछ आप बीती, कुछ जग बीती'। इस रचना की योजना सम्भवतः एक आत्मकथात्मक उपन्यास के रूप में भारतेन्दु जी ने बनायी थी किन्तु इसे पूर्ण करने का समय उन्हें मिल पाया। इसमें प्रारम्भ से ही संस्मरण का साहित्यिक रूप दिखायी पड़ता है। इस युग में एक और अधूरी रचना उपलब्ध होती है– पं. प्रातपानारायण मिश्र द्वारा लिखित 'प्रताप–चरित्र' जो एक आत्मकथा है किन्तु इसमें संस्मरण का अंश सबसे अधिक है। आत्मकथा वस्तुतः संस्मरण का ही एक विशिष्ट रूप है। दोनों में अंतर है तो केवल इतना कि आत्मकथा अपने से सम्बद्ध संस्मरण है, जबकि संस्मरण प्रमुखतः दूसरे से सम्बद्ध होता है।

भारतेन्दु–युग में इस प्रकार की अनेक रचनाएं उपलब्ध है। राजा शिवप्रसाद सितारेंहिंद द्वारा लिखित जीवन चरित 'सवानेह उमरी', तथा पं. अम्बिकादत्त व्यास द्वारा लिखित 'निजवृत्तांत' आदि इस युग की महत्वपूर्ण रचनाएं हैं जिसमें संस्मरण का प्रारम्भिक रूप देखा जा सकता है।

द्विवेदी युग– आत्मकथाओं के क्रम में द्विवेदी–युग मे महात्मा गांधी की आत्मकथा 'सत्य के मेरे प्रयोग' तथा रामप्रसाद बिस्मिल की 'आत्मकथा' जैसी अनेक रचनाओं का प्रकाशन हुआ। इन रचनाओं के अत्यन्त प्रभावपूर्ण संस्मरणात्मक चित्र उपलब्ध होते हैं। जिनका साहित्यिक दृष्टि से भी बड़ा महत्व है। महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' में तो समय–समय पर संस्मरणात्मक निबन्ध प्रकाशित होते ही थे, 'विशाल भारत' और 'हंस' जैसी पत्रिकाओं का भी

संस्मरण साहित्य के विकास में अभूतपूर्व योगदान है। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी संस्मरण साहित्य के विकास में अभूतपूर्व योगदान है। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी संस्मरण तथा रेखाचित्र जैसी विधाओं के विकास में भी उनका योगदान है। 'विशाल भारत' में 'कहीं हम भूल न जायें' शीर्षक एक स्तम्भ ही उन्होंने निश्चित कर दिया था। इस स्तम्भ के अन्तर्गत पं. अम्बा प्रसाद वाजपेयी तथा रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी आदि के द्वारा लिखित संस्मरण उल्लेखनीय है।

संस्मरण विधा की साहित्य में उपयोगिता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। इसे हम इस तरह भी कह सकते हैं। आज संस्मरण विधा पुस्तक के रूप में इतनी संख्या में उपलब्ध है। करीब मुझे 2000 से 2010 तक की 30 पुस्तकें मिल चुकी हैं। उसके पहले की पुस्तकें भी काफी हैं। यह सभी संस्मरण के पुस्तकें सिद्ध कर देती है। जैसे–जैसे साहित्य में इनकी उपयोगिता महसूस की गयी है वैसे–वैसे इनके लेखन में वृद्धि होती चली गयी। प्राचीन काल में लेखक अपनी बातों को अपने तक रखना इसलिए वाजिब समझते थे क्योंकि उन्हें अपनी प्रशंसा करना उचित नहीं लगता था। धीरे–धीरे उन्हें एहसास दिलाया गया कि उनके अनुभवों से दूसरे लाभान्वित होते हैं, तो यह शिक्षा का दान होगा, ज्ञान का दान होगा, प्रशंसा जैसी कोई बात न हुये धीरे–धीरे संस्मरण लेखक अपनी यादों को शब्दों में पिरोने लगे और साहित्य विधा में संस्मरण विधा आयी, धीरे–धीरे वह पत्र–पत्रिकाओं में अपना स्थान बनाने लगी और फिर साहित्य तथा अन्य क्षेत्रों में भी आ गयी। महादेवी वर्मा ने अतीत के चलचित्र पथ के साथी और स्मृति की रेखाएं इत्यादि शीर्षक से संस्मरण की रचना की, बात में श्रीराम शर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' शांतिप्रिय द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी और विनोद शंकर व्यास आदि ने लिखा। संस्मरण का विकास एक माध्यम पत्र–पत्रिकाएं रही लेकिन जहाँ एक ओर इनके अनेक संग्रह उपलब्ध होते हैं, वहीं यह विविध शैलियों में प्राप्त होते हैं। आधुनिक युग के प्रमुख संस्मरण लेखकों में पद्म श्री कमला उपेन्द्रनाथ अश्क तथा गजानंद माधव मुक्तिबोध उल्लेखनीय हैं।

यही कारण है कि संस्मरण समृद्ध और विस्तृत होता चला गया आज यदि इनकी विविध शैलियों को हम देखें तो ये हमें आत्मकथात्मक, यात्रा विवरणात्मक, जीवन चरित्रात्मक, पत्रात्मक, डायरीमूलक, श्रद्धांजलि मूलक, मूल्यांकन परक तथा लेख चित्रात्मक आदि अनेक विधाओं के रूपमें उपलब्ध है यही सब मिलकर आधुनिक युग में अपने स्वतंत्र रूप को ग्रहण कर जाये। अब ये संस्मरण से अपना अलग स्थान ग्रहण कर चुके हैं और स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हो चुके हैं। आज संस्मरण साहित्य के दौर में अपना स्थान बना चुका है। एक समय था कि घुटने के बल चलना आरंभ किया था और आज विकास के दौड़ में अपना अलग स्थान स्थापित कर चुका है। इस प्रकार साहित्य में संस्मरण अपनी जघनता के कारण उपयोगी बन बैठा है। संस्मरण की उपयोगिता से मुंह फेरा नहीं जा सकता क्योंकि यह पूरे जीवन के प्रक्रिया में चलने वाली वह क्रिया है जो हमें अपनी स्मृतियों के माध्यम से संवेदना के स्तर पर दूसरों की क्रियाओं एवं अनेक व्यक्तित्व को जोड़ते हुए चलती है। मानसिक रूप पर जिसे हम जीते हैं उसी को शब्दों में पिरोकर इसे रचकर इसे संस्मरण का रूप धारण करवा देते हैं, जिससे हम रिश्तों को समेट कर केवल अपने तक नहीं रखते हैं बल्कि उन्हें विश्व स्तर पर पहुचाने का कार्य करते हैं। इस प्रकार संस्मरण की उपयोगिता दिन प्रतिदिन बढ़ती गयी है।

ऐतिहासिक काल की जानकारी बौद्धिक लोगों से प्राप्त होती है इसलिए भी संस्मरण की उपयोगिता सुनिश्चित है। संस्मरण को पढ़कर पाठक अच्छी भाषा शैली अपने जीवन में ग्रहण कर सकते हैं। संस्मरण के द्वारा एक ही जगह पर बैठकर अनेकों स्थान की अनेकों चरित्र की पूरी जानकारी इतने सस्ते दाम में किसी और से प्राप्त नहीं किया जा सकता। किन्तु संस्मरण लेखक को नयी चमक और स्फूर्ति मिली स्वतंत्रता के बाद। भारतीय विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय त्रासदी ने जीवन के आदमकद रूप को ही नहीं तोड़ा, साहित्य के परम्परागत ढाँचे को भी तोड़ दिया –कथ्य में भी और कथन–भंगिमा में भी। नयी कविता हो, नयी कहानी हो या नया नाटक हो अब सब उन जीवन स्थितियों का बखान करने में संलग्न हुए जो फ़ैज बेचैन, कुछ भटकी हुई। पश्चिम में फ्रायड, एडलर और जुंग ने अचेतन का जो रहस्य–लोक खोज निकाला था, उसने जीवन के सामाजिक और वैयक्तिक क्रियाकलाप को नए अर्थों में जानने और समझने का पथ प्रशस्त किया। अब अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष मनुष्य के काम के पुरूषार्थ नहीं रह गए, न ही अभिनन्दन पत्र।

श्रीफल, पुष्पमाला, शाल–दुशालों को भी उन्होंने हाशिए पर डाल दिया। अब संस्मरण अविभूत होकर नहीं लिखे जाते, वे संस्मृत के अंतरंग में झाँककर लिखे जाते हैं। इन लेखकों ने देखा कि जीवन वही नहीं है,जो सतह पर दिखाई दे रहा है या जो बैठक खाने में विराजमान है। कृष्णचंदर, मोहन राकेश, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बेचन शर्मा 'उग्र', मंटो या इस्मत चुगताई जैसों ने जब अपने भीतर की बातें बतानी शुरू की तो नैतिकतावादियों को उनके कथ्य पर आपत्ति हुई। काव्यशास्त्रियों को उनकी संरचना पर और समीक्षकों को उनकी भाषा पर।

ये संस्मरण लेखक अपने आप को ढाँकने में नहीं, अपने आप को (और सामने वाले को भी) खोलने में विश्वास करते थे। जब अपने आज को नहीं छिपाना तो सामने वाले को क्या छिपाना। जब बच्चन जी ने लिखा 'जो छुपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता' तो वे एक तरह से इन नए संस्मरण लेखकों द्वारा उपलब्ध सत्य का ही प्रकटीकरण कर रहे थे। स्वतंत्रता के कुछ ही वर्षों में नेताओं के चेहरे पर लगा रंग और रोगन धुल गया, चौराहे पर लगे उनके पोस्टरों को दाद–खाज खुजली के विज्ञापनों ने ढँक दिया और कुर्सी दौड़ में जो धक्कम धक्का शुरू हुआ, उससे स्पष्ट हो गया कि ठीक आदमकद कोई नहीं है; हो, तो भी नहीं है। संस्मरण किसी का धोबी नहीं है। फलतः साहित्य की अन्य विधाओं की तरह संस्मरणों के धोबीघट पर हैयाहो मची और संस्मरण घाट पर मैले कपड़ों की लादियों का ढेर बढ़ने लगा। हिंदी का समकालीन संस्मरण लेखक अब संस्मरणों को न तो निरमा सुपर मानता है, न सर्फ एक्सल। संस्मरणों की वाशिंग मशीन से निकलने वाले कपड़ों की महासफेदी उसका लक्ष्य नहीं है।

वह जानना चाहता है कि कपड़ों में मैल कहाँ से आता है, उनमें गंदगी क्यों लगती है, सफेद कालर ग्रीवा से रगड़ खाकर कैसे मटमैली हो जाती है और साड़ियों के फॉल धूल मिट्टी से ग्रीज, डीजल से काले क्यों पड़ जाते हैं? अब वह वाशिंग मशीन से धुले हुए कपड़ों को निकलकर उस पानी का भी मुआयना करता है जो वॉशटब में बचा रहता है – यह बताने के लिए भी कि धुले धुलाए कपड़े मैल और गंदगी की कितनी मात्रा सोख लेते हैं। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, राजेन्द्र यादव, मनमोहन ठाकुर, मनोहर श्याम जोशी, काशीनाथ सिंह, रवीन्द्रनाथ कालिया जैसे संस्मरण लेखक न कुछ छिपाते हैं, न कुछ ढाँकते हैं। ये संस्मरण लेखक केवल देवताओं, महामानवों, स्थापितों, सिद्धों–प्रसिद्धों की ही याद नहीं करते, उनकी भी करते हैं जो सबेरे–सबेरे कड़कड़ाती ठंड में अखबार बाँट रहे हैं, दिनभर मूंगफली बेच रहे हैं, पान की गुमटी पर बीड़े बाँध रहे हैं, ढाबे में कप–प्लेट धो रहे हैं या गुरूजी की ऐवजी में बच्चों को पढ़ा रहे हैं। इन संस्मरण लेखकों ने संस्मरणीयों की परिधि बढ़ायी है, मानवीय संवेदना का विकास किया है और वे जीवन के उन कोनों तक भी पहुंचे हैं जो हताश, बेचारा और दईमारा है। जीवन के छींटे इनके वर्ण्य पर ही नहीं, इनकी भाषा पर भी पड़े हैं। वे इन संस्मरणों में अपने साथ, अपने संस्कृत के साथ, अपने समय की, अपने समाज की, अपने सहकर्मी की, अपने परिवेश की भी छानबीन करते चलते हैं। इन संस्मरणों में जीवन की अनेक स्थापित मान्यताओं के अधिकार हैं, क्या हम संस्मरणों के पोलवाल्ट के सहारे दूसरों के आंगन की चहारदीवारी फलांग सकते हैं ? इन संस्मरण लेखकों ने संस्मरणों को अब साहित्य की ओबीसी विधा नहीं रहने दिया है। वह अब साहित्य की मुख्य धारा में है।

साहित्य के लोकतंत्र में अब उसका महत्वपूर्ण स्थान है। गद्य के मंत्रिमंडल में अब वह अपना पद मांग रही है। संस्मरण इन दिनों साहित्य की केन्द्रीय विधा के रूप में उभर रहे हैं। कविता या कहानी के पाठक पत्रिकाओं में अब पहिले संस्मरणों की तलाश करते हैं। संस्मरण विधा अब वयस्क हो गयी है। इसके लिए अब नए काव्यशास्त्र की आवश्यकता पड़ने लगी है। पुराने, परम्परागत निकष अब उसके सही कैरेट का अनुमान नहीं लगा पा रहे हैं। अब उसे नए परिधान चाहिए, नए ड्रेस डिजाइनर भी। वह इक्कीसवीं शताब्दी की विधा बनने की दौड़ में सबसे आगे चल रही है। अब जो साहित्यकार स्वयं को चर्चा के केन्द्र में रखना चाहता है, वह संस्मरण लिखता है। बिना संस्मरण लिखे, उसे लगता है कि उसका जीवन निरर्थक हो गया है – व्यर्थ जीवन हाय बहा बहा! हमारा जीवन में संस्मरण हर रिश्ते की अहमियत को भी जान सकने में मदद करता है। इस प्रकार संस्मरण की उपयोगिता मनुष्य जीवन के लिए झुठलाई नहीं जाती। संस्मरण इसलिए भी उपयोगी सिद्ध होते हैं क्योंकि यह मनुष्य के जीते जी लिखे जाते हैं और मरणोपरांत उस काल का

परिचायक बन जाते हैं जिसे पाठक ने अपनी आँखों से देखा तक नहीं है। इस प्रकार संस्मरण हमें हर युग की सैर करा देने में सक्षम सिद्ध होते हैं। भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल से तीनों के बिना संस्मरण लेखन संभव नहीं है। लेखक जब लिखता है वह यह नहीं जानता कि हमारी किस बात से पाठक जीवन में कौन–सा परिवर्तन हो सकेगा लेकिन युगों–युगों तक ये अनुभव आने वाली पीढ़ी का मार्गदर्शन करने में सहायक सिद्ध होंगे। यही इसकी सबसे बहुमूल्य उपयोगिता है। संस्मरण सामान्यतया साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। संस्मरण साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। संस्मरण यदि किसी यात्रा पर आधारित है तो उसे यात्रा विवरण और संस्मरण दोनों के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है। इसी प्रकार किसी पत्र के रूप में, डायरी के पन्ने के रूप में वह सामने आता है तो उसे पत्र या डायरी साहित्य के अन्तर्गत स्थान प्राप्त हो जाएगा। रेखाचित्र के अन्तर्गत तो अनेक संस्मरण मिले ही हुए हैं। इस प्रकार संस्मरण का क्षेत्र अत्यंत विशाल एवं विविध है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. रवीन्द्रनाथ त्यागी – वसंत से पतझर – भारतीय ज्ञानपीठ, 2011
2. कान्तिकुमार जैन – जो कहूँगा सच कहूँगा – वाणी प्रकाशन, 2006
3. विश्वनाथ त्रिपाठी – नंगातलाई का गाँव – राजकमल प्रकाशन, 2006
4. काशीनाथ सिंह – घर का जोगी जोगड़ा – राजकमल प्रकाशन, 2008
5. राजेन्द्र जोशी – नंद बाबा : फकीर से वजीर – सामयिक बुक्स, 2010

शोध पर्यवेक्षक –
डॉ. विवेक शंकर,
सह आचार्य, हिन्दी विभाग,
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज0)

–गजानन्द मीणा, शोधार्थी
राजकीय कला महाविद्यालय कोटा
ग्राम गाडदिया तहसील नैनवां जिला बून्दी–323610 (राज0)
मो.नं. 9511520817, 7690087234
ई–मेल –gajanandbundi85@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान, भिवानी (हरियाणा)

एवं

इण्डो – यूरोपियन लिटरेरी डिस्कॉर्स, यूक्रेन

विषय– रूप जीवा : जीवन विमर्श

अंतरराष्ट्रीय वेबिनार

29 जुलाई 2020 को 11:00am to 01:30 pm

अध्यक्ष :
डॉ. विनोद शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर

बीज वक्तव्य :
डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व विभागाध्यक्ष, गुरूनानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर

मुख्य अतिथि :
माई मनीषा महंत
अध्यक्ष, किन्नर
अधिकार ट्रस्ट (रजि.)

विषय विशेषज्ञ :
राकेश शकर भारती
संस्थापक,
इण्डो–यूरोपियन लिटरेरी डिस्कॉर्स, यूक्रेन

विशिष्ट वक्ता :
प्रो. संजय एल मादार
विभागाध्यक्ष, द.भा.हि.प्र.सभा
धारवाड़, कर्नाटक

मुख्य वक्ता :
डॉ. अशोक मंगलेश
अध्यक्ष, निर्मला स्मृति साहित्यिक
समिति, दादरी (हरियाणा)

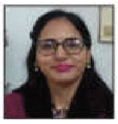

वक्ता :
प्रो शकुन्तला
आई.बी.पीजी कॉलेज
पानीपत (हरियाणा)

वक्ता :
डॉ. अतुला भास्कर
पूर्व अध्यक्ष, एस.एन. कालेज
अमृतसर (पंजाब)

वक्ता :
डॉ. शिवकरण निमल
प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान
राजस्थान सरकार

वक्ता :
अनुपूर्णा श्रीवास्तव
शोधार्थी,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

समय सारणी निम्न प्रकार से है

11:00 से 11:10	स्वागत एवं वेबिनार परिचय	नरेन्द्र सोनी	हिसार (हरियाणा)
11:10 से 11:30	आशीर्वचन/बीज वक्तव्य	डॉ. विनोद तनेजा	अमृतसर (पंजाब)
11:30 से 11:50	विशिष्ट वक्ता	राकेश शंकर भारती	यूक्रेन
11:50 से 12:00	विशिष्ट वक्ता	प्रो. संजय एल. मादार	धारवाड़ (कर्नाटक)
12:00 से 12:10	मुख्य वक्ता	डॉ. अशोक कुमार मंगलेश	दादरी (हरियाणा)
12:10 से 12:20	वक्ता	प्रो. शकुन्तला	पानीपत (हरियाणा)
12:20 से 12:30	वक्ता	डॉ. अतुला भास्कर	अमृतसर (पंजाब)
12:30 से 12:40	वक्ता	डॉ. शिवकरण निमल	राजस्थान
12:40 से 12:50	वक्ता	अनुपमा श्रीवास्तव	दिल्ली
12:50 से 01:10	मुख्य अतिथि सम्बोधन	माई मनीषा महंत	भुना (हरियाणा)
01:10 से 01:20	अध्यक्षीय भाषण	डॉ. विनोद शर्मा	श्रीगंगानगर (राजस्थान)
01:20 से 01:30	धन्यवाद ज्ञापन	डॉ. नरेश सिहाग	भिवानी (हरियाणा)

संयोजक :
डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान
भिवानी (हरियाणा)
मो. 8708822674

नोट :
वेबिनार फेसबुक पर लाईव रहेगा। प्रतिभागी अपनी उपस्थिति वहीं दर्ज करवायें। फीड बैक मेल पर भेजा जाएगा। एक सप्ताह बाद सभी रजि. प्रतिभागियों को उनकी मेल पर सार्टिफिकेट भेज दिया जाएगा।

सह संयोजक :
नरेन्द्र सोनी
शोधार्थी, पीएचडी पत्रकारिता
गुरू जम्भेश्वर विश्व विद्यालय, हिसार।
मो. 9812787018